द्विभाषी राष्ट्रसेवक

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 ❖ अंक : 11 ❖ फरवरी, 2024

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 73 अंक : 11 फरवरी, 2024

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

डॉ. किरण हाजरिका
सम कुलपति, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-68

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : इंटरनेट से साभार

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी		
1.	*संपादकीय*		5
2.	भीष्म साहनी द्वारा रचित 'तमस' उपन्यास में भारत विभाजन की त्रासदी का विवेचन	✍ डॉ. अशोक कुमार	7
3.	असम की चाय जनगोष्ठी : एक सांस्कृतिक अवलोकन	✍ डॉ. नंदिता दत्त	11
4.	भूटिया भाषा-साहित्य चिंतन	✍ डॉ. चुकी भूटिया	16
5.	विज्ञापन का भाषिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य	✍ मनोज मल्लाह ✍ डॉ. अनुशब्द	20
6.	मणिपुरी लोक कथा : समाज का मूल आधार	✍ डॉ. वाइखोम चींखैङनबा	26
7.	मणिपुरी भाषा का योगदान (साहित्य के संदर्भ में)	✍ डॉ. कोंखाम फूल्लोना देवी	32
8.	भठेलि लोकोत्सव	✍ कसीरा जहाँ	36
9.	इक्कीसवीं सदी की प्रमुख हिंदी महिला रचनाकारों की आत्मकथा : एक विहंगम दृष्टि	✍ सुमि शर्मा	41
10.	मंगलेश डबराल की कविताओं में समकालीन संवेदना के विविध आयाम	✍ सूर्जलेखा ब्रह्म	45
11.	भारतीय नेपाली साहित्य और संत-काव्य परंपरा	✍ डॉ. गोमा देवी शर्मा	50
12.	निराला के उपन्यासों में नारी की सामाजिक समस्या	✍ गजेन्द्र नाथ दास	56
13.	राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और संत गंगादास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण	✍ कीर्ति चौधरी ✍ डॉ. दीपक कुमार	63
14.	समाजशास्त्र और साहित्य : एक विचार	✍ पूजा शर्मा ✍ डॉ. वंदना शर्मा	68

অসমীয়া বিভাগ

15. কীৰ্ত্তন-ঘোষাৰ 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত ভক্তিবাদ ঃ এটি বিশ্লেষণ	✍ ড° স্বপ্নালী দাস	74
16. ৰাষ্ট্ৰীয় সংহতি নিৰ্মাণত তুলনামূলক সাহিত্যৰ ভূমিকা	✍ ড° প্ৰভাত ভূঞা	81
17. প্ৰাচীন কামৰূপৰ শাক্ত উপাসনা ঃ নৰকাসুৰৰ পৰা আহোম যুগলৈ এক ধাৰা	✍ ড° গোবিন্দ বৈশ্য	87
18. একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দুটা দশকত অসমীয়া ভাষালৈ অহা পৰিৱৰ্তন ঃ এক সমাজভাষাতাত্বিক আলোচনা	✍ ড° কাকলি গগৈ	94
19. আধুনিক অসমীয়া কবিতাত লোক-সাংস্কৃতিক সমল	✍ ড° উৎপলা দাস	99
20. ৰংমিলিৰ হাঁহি ঃ এক পৰ্যালোচনা	✍ ড° অনু ৰাণী দেৱী	105
21. বিশেষ চাহিদামুক্ত শিশুসকলৰ সমস্যা আৰু বাধামুক্ত বিদ্যালয়ৰ ধাৰণা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ড° শ্বহিদুল আহমেদ ✍ মৃদুস্মিতা তালুকদাৰ	111
22. লীনা গগৈৰ গীতি-সাহিত্য ঃ এটি বিশ্লেষণ	✍ দুলেন হাজৰিকা ✍ ড° ৰন্টু দত্ত	116
23. আন্তোন চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু ঃ এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ	✍ চুইটি বৰা ✍ ড° বিৰিঞ্চি কুমাৰ দাস	124
24. সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষা ঃ এক সমাজ-ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন	✍ ৰাহুল কুলি	129
25. অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ৰাখী ৰাজকুমাৰী ✍ ড° ববিতা বৰুৱা	135
26. মন্বন্তৰ (কবিতা)	✍ বীৰেন্দ্ৰনাথ বৰকটকী	147

❑ ❑ ❑

संपादकीय

वसुधैव कुटुम्बकम्

'वसुधैव कुटुम्बकम्' संस्कृत का एक बड़ा चिर-परिचित वाक्यांश है, जिससे शायद ही विश्व का कोई प्रबुद्ध वर्ग अनभिज्ञ होगा। इस वाक्यांश का प्रयोग प्राय: बड़े-बड़े मंचों पर सम्मानित विभूतियाँ करती आई हैं और इसका प्रयोग आज के समाज में यत्र-तत्र-सर्वत्र करना अत्यंत उपयोगी एवं सम-सामायिक भी है। यदि भारत राष्ट्र को हम एक जीवंत इकाई के रूप में देखते हैं तो यह वाक्यांश उसकी चेतना का केंद्र बिंदु है। यह भारत का मन है, इसलिए इसका उद्घोष हर वैश्विक मंच से बारंबार होना चाहिए। जितना बड़ा लक्ष्य इस महान वाक्यांश का है, उतनी ही बड़ी एक जिम्मेदारी हमारे कंधों पर भी है कि हम इसे गहराई से समझें और अपनी आने वाली पीढ़ियों को इससे भलीभाँति परिचित करवाएँ अन्यथा विश्व कल्याण का यह संदेश मात्र बोलने-कहने वाली बात बनकर रह जाएगा।

वसुधैव कुटुम्बकम्, का उद्‌भव सामदेव की परंपरा के महाउपनिषद् से है और पूरा श्लोक कुछ इस प्रकार है -

अयं बन्धुरयंनेति गणना लघुचेतसाम्
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

जिसका अर्थ है - यह व्यक्ति मेरा है, यह व्यक्ति तेरा है, ऐसा भेद केवल संकीर्ण विचार वाले लोग ही करते हैं, जो श्रेष्ठ हैं और जो सत्य के ज्ञाता हैं, उनके लिए तो संपूर्ण विश्व ही एक परिवार है। यह बात जब कही जा रही थी, तब के समाज की यदि कल्पना करें तो हम पाएँगे कि वह एक ऐसा समय था, जहाँ न संसार के साधन विकसित हुए थे, न कोई सार्वभौमिक सत्ता की संकल्पना थी। राज्यों में निजी कारणों से परस्पर संघर्ष हो रहा था। न्याय के कोई सर्वमान्य वैश्विक मानदंड नहीं थे। उसके बावजूद भारत के ऋषि मन की गहराइयों को टटोल रहे थे और अपनी चेतना को ऊँची उड़ान दे रहे थे। ऐसी ही गहन चिंतन, मनन और ध्यान से उपजा है ये 'वसुधैव कुटुम्बकम्'।

आज के विश्व के हालात पर तनिक ध्यान से देखें तो पाएँगे कि अधिकांश देश अपने पड़ोसी देश से किसी-न-किसी बात पर उलझे हुए हैं। ऐसा लग रहा है कि हर देश के अंदर एक असुरक्षा का भाव है। विश्व भर के देश अपनी सुरक्षा की दृष्टि से भिन्न-भिन्न नामों से गठबंधन कर रहे हैं। आजकल तो यह बड़े स्वाभाविक रूप से कहा ही जा रहा है कि विदेश नीति का उद्देश्य ही निजी हितों की सुरक्षा है। आज विश्व के पास संचार के सबसे उन्नत संसाधन उपलब्ध हैं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग के लिए वैश्विक संगठन हैं, उन्नत तकनीकी उपलब्ध है, जिससे कई मूलभूत समस्याओं का निराकरण संभव है, फिर भी विश्व के अधिकांश हिस्से में अशांति व्याप्त है। हम सब थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर युद्ध की विभीषिका देख रहे हैं। तीसरा विश्व युद्ध और परमाणु युद्ध के खतरे तो मानो तलवार की भाँति संपूर्ण मानव जाति पर लटक रही है। ऐसे समय में यदि कुछ सबसे अधिक प्रासंगिक है तो वो है भारत भूमि से उपजा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश। बस एक भगीरथी प्रयास चाहिए, इसके अर्थ को पूरे विश्व तक पहुँचाने के लिए, परंतु ये किसी एक व्यक्ति के लिए कभी भी संभव नहीं हो सकेगा, इसके लिए राष्ट्र

का सामूहिक प्रयास लगेगा। विश्व तक इस संदेश को पहुँचाने से पहले इसे भारत के जन-जन तक पहुँचाना होगा।

उपर्युक्त श्लोक में ऋषि एक बड़े पते की बात कर रहे हैं कि संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में वही देख पाता है, जो सत्य का ज्ञाता है। यह सत्य क्या है ? क्या आम जनमानस भी इसे समझ सकता है या ये सिर्फ किताबों की बातें हैं। जब तक हम इन प्रश्नों के उत्तर नहीं ढूँढ़ लेते, तब तक इस विषय में हम कोई प्रगति नहीं कर सकते। सत्य का भारत से बहुत पुराना नाता है। भारतीय संस्कृति में तो कई बार सत्य की बात होती रही है। भारत का ध्येय वाक्य 'सत्यमेव जयते' भी तो मूंडुक उपनिषद् से लिया गया है।

मेरी समझ से तो असत्य जान लेना ही सत्य को जान लेना है और विश्व में कोई भी वस्तु एक दूसरे से भिन्न नहीं, यही सार्वभौमिक सत्य है। हमारी अज्ञानता हमारा अहंकार है, वही यह भेद करता है, अन्यथा हमारा कण-कण इस ब्रह्मांड का है। जिन कणों से हम बने, उन्हीं कणों से अन्य जीव भी हैं, उन्हीं कणों से पानी भी है, उन्हीं कणों से अन्य निर्जीव पदार्थ भी हैं। यदि हम अपने अहंकार को पहचान लें तो शायद सत्य का भी अनुभव हमें हो जाएगा। इस सत्य को हमारे ऋषि जान गए थे, इसलिए तो उन्होंने इस महान वाक्यांश की उद्घोषणा के बाद इस पर अपना नाम लिखना भी जरूरी नहीं समझा, न ही इसे कभी अपनी निजी बौद्धिक संपदा मानी।

इस समय की सबसे बड़ी जरूरत है कि सभी बड़े देश अपने अहंकार को त्याग कर एक मंच पर खुले मन से आएँ और संपूर्ण मानव जाति की समस्याएँ जैसे जलवायु परिवर्तन, वैश्विक अशांति, भूख और गरीबी से लड़ने के लिए संकल्प लें, क्योंकि यह उचित समय है, जब हम इन समस्याओं से लड़ने के लिए संसाधनों से लैस हैं, बस जरूरत है तो आपसी सहयोग की, जो निजी स्वार्थों की बलि चढ़कर ही संभव है।

जो हम एक बार यह समझ गए कि संपूर्ण विश्व एक परिवार है तो फिर हमें शांति लाने के लिए किसी नैतिकता की जरूरत नहीं होगी। जिस तरह एक परिवार में छोटे-बड़े सभी सुरक्षित महसूस करते हैं, उसी प्रकार विश्व का हर देश धरती पर सुरक्षित महसूस करेगा। जिस प्रकार एक परिवार में सभी मिलकर किसी समस्या का समाधान निकालते हैं, उसी प्रकार सभी देश अपने संसाधनों को एकत्र कर वैश्विक समस्याओं का समाधान खोज सकेंगे। जिस प्रकार एक परिवार में कोई भूखा नहीं सोता, उसी प्रकार उस दिन का सपना भी साकार हो सकेगा, जब किसी देश का कोई भी नागरिक भूखा नहीं सोएगा। विश्व कल्याण की कामना करते हुए आइए मिलकर कहें - वसुधैव कुटुम्बकम्। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

भीष्म साहनी द्वारा रचिव 'तमस' उपन्यास में भारत विभाजन की त्रासदी का विवेचन

डॉ. अशोक कुमार

सह आचार्य, हिंदी विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय
हिमाचल प्रदेश-176215
8894535331
citycomputerskullu@gmail.com

शोध-सार :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने देश विभाजन की समस्या पर अनेकों रचनाएँ लिखीं, जिसमें हिंदी साहित्य के लेखकों का योगदान भी महत्वपूर्ण है। देश विभाजन की समस्या पर यशपाल द्वारा लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है 'झूठा सच', जो 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' शीर्षक दो भागों में प्रकाशित हुआ है। डॉक्टर राही मासूम रजा द्वारा रचित 'आधा गाँव', कृष्णा सोबती द्वारा रचित 'जिंदगीनामा', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास भी भारत-पाकिस्तान विभाजन की समस्या पर आधारित हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार भीष्म साहनी द्वारा वर्ष 1973 में प्रकाशित तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित 'तमस' में सांप्रदायिकता की विभीषिका, सामाजिक एवं धार्मिक अंधविश्वास, राजनीतिक भ्रष्टाचार, रूढ़िवादी रीति-रिवाज आदि का मर्मस्पर्शी यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। 'तमस' उपन्यास को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है कि सांप्रदायिकता की समस्या भारत में शताब्दियों पुरानी है और आज भी भारतीय समाज इस समस्या से मुक्त नहीं हुआ है। ''श्री साहनी ने तमस में 1947 के मार्च-अप्रैल में हुए भीषण सांप्रदायिक दंगे के 5 दिनों की कहानी को इस रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे कि हम उसकी पूरी सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि से अच्छी तरह अवगत हो जाएँ। 'तमस' ऊपरी दृष्टि से एक विशेष कालखंड में राज्य विशेष में घटित सांप्रदायिक दंगे की कहानी है, किंतु वस्तुत: यह हमारे राष्ट्रीय कल्पवृक्ष की जड़ में अंतर्निहित उस संकीर्ण सांप्रदायिकता के विष की कहानी है, जो आज भी हमारे लिए एक चुनौती बना हुआ है, यह मनुष्य के भीतर निहित उस पशुत्व के तांडव की कहानी है, जो सभ्य समाज के लिए एक कलंक है।''[1]

बीज शब्द :

तमस, विभाजन, दंगा, कट्टरता, तुष्टिकरण, भेदभाव, सद्भावना।

मूल आलेख :

भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत किया है,

लेकिन उनमें सांप्रदायिक तनाव की समस्या प्रमुख है। उपन्यासकार ने 'तमस' उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक सांप्रदायिक हिंदू-मुस्लिम तनाव का चित्रण करते हुए उसके दुष्परिणाम का चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारत जैसे देश में विभाजन से पहले आम जन जीवन में व्याप्त सांप्रदायिक तनाव, अलगाव, धर्म के नाम पर संकीर्ण मानसिकता, धर्म के नाम पर एक दूसरे के प्रति घृणा, सांप्रदायिक दंगों के कारण मानवीय मूल्यों का विघटन, धार्मिक उन्माद, अंग्रेजों की कूटनीति एवं राजनीतिक पार्टियों का निजी स्वार्थ के लिए आम जन जीवन की भावनाओं से खिलवाड़ प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है। सांप्रदायिक दंगों का आरंभ नाथू चमार द्वारा सूअर काटने की घटना से होता है। अंग्रेजों का पिट्ठू मुराद अली, जो नाथू चमार से कहता है कि ''हमारे सलोतरी साहिब को एक मरा हुआ सूअर चाहिए, डॉक्टरी काम के लिए।''[2] मुराद अली ने नाथू से कहा था–जब खाल साफ करने के बाद नल पर हाथ मुँह धो रहा था। इस प्रकार मुराद अली पांच रुपए देकर सूअर मरवाता है और वह मस्जिद की सीढ़ियों पर पाया जाता है। अज्ञानी नाथू को जरा भी आभास नहीं था कि वह सांप्रदायिक आग भड़काने के लिए जिम्मेदार हो जाएगा। सूअर काटने वाले नाथू को यह बात समझ नहीं आती कि वह एक मुसलमान होते हुए सलोतरी उस से सूअर क्यों कटवा रहा है? फिर उसे मस्जिद में क्यों फिंकवा रहा है? इस घटना से बौखलाए हुए मुसलमान प्रतिशोध की आग में गाय मार देते हैं और शहर भर में लूटपाट, हत्या, बलात्कार आदि का नंगा नाच आरंभ होता है, धार्मिक कट्टरता के समर्थक एक-दूसरे का मोहल्ला तबाह करने लगते हैं। अंग्रेजों का प्रतिनिधि रिचर्ड इस बात को भलीभाँति जानता है कि धार्मिक भावनाओं को आहत करने से सांप्रदायिक दंगों का निर्माण होता है। इसलिए दंगा अंग्रेजों की सोची-समझी साजिश होती है। सांप्रदायिकता का प्रश्न सामने

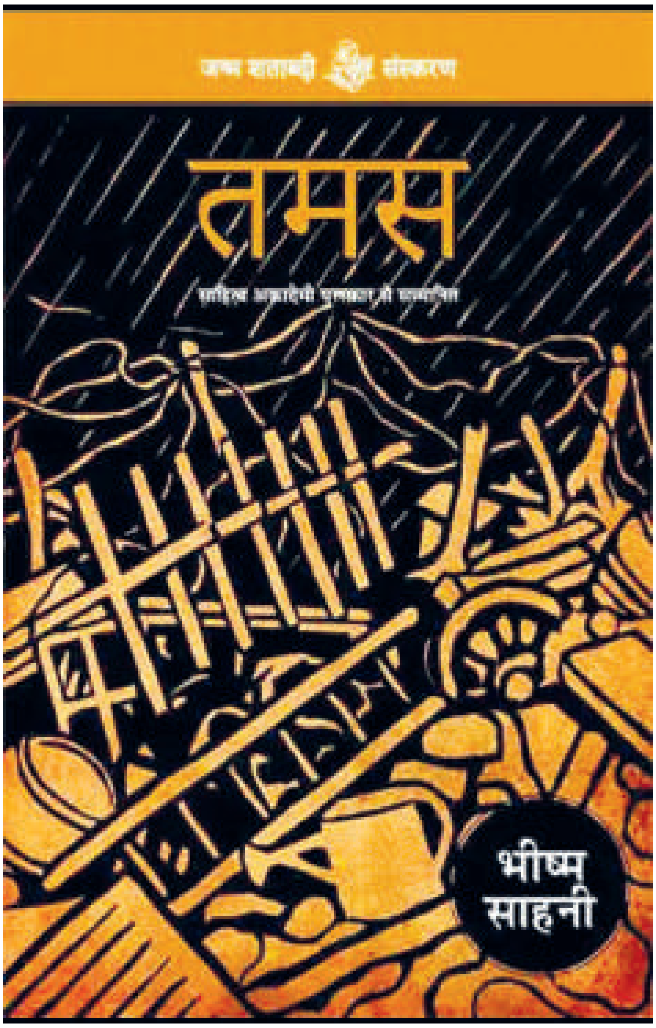

आते ही ''हम एक ऐसे आत्म विरोध और अंतर विरोध में फँस जाते हैं कि कई बार सांप्रदायिकता के हल को भी सांप्रदायिक नजरिए से ही ढूँढ़ने लगते हैं। यही सांप्रदायिकता सफल होती रही है, इसी रास्ते से घुसकर भूत सरसों में अपना डेरा डालता रहा। 'तमस' के पाठ से सांप्रदायिकता पर रुक जाना वैसी ही चूक होगी जैसी चूक मुराद अली को सांप्रदायिकता फैलाने वाला और नाथू को सांप्रदायिकता भी ऐसी 'चेरी और बदमाश बेचारी' है, जो किसी और के इशारे पर काम करती है। किसके इशारे पर? क्या उसी के इशारे पर जिसके हाथ में इस सभ्यता का सबसे सफेद परचम लहराता हुआ दिखाई पड़ता है।''[3] 'तमस' उपन्यास में उपन्यासकार ने अंग्रेजों की कूटनीतिक स्वार्थ भावना

को रेखांकित किया है। डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड के समय-समय पर दिए गए निर्णय से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'फूट डालो और राज करो' की नीति से हिंदू और मुसलमान के बीच में तनातनी बढ़ने लगी है। रिचर्ड की पत्नी लीजा नि:स्वार्थ भाव से मानवता की दृष्टि से पति की चालाकी को पकड़ लेती है और कहती है ''देश के नाम पर लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।''[4]

रिचर्ड लीजा की बातों का उत्तर देते हुए कहता है कि हम उनके धार्मिक झगड़े में दखल नहीं देते, सांप्रदायिक दंगों के कारण, धर्म के नाम पर निरपराध और निरीह व्यक्ति मारे जाते हैं, क्योंकि सभी संप्रदाय धर्म के नाम दूसरे धर्म के व्यक्ति की जान लेने और देने के लिए भी तत्पर रहते हैं। यद्यपि सांप्रदायिक समस्याओं पर हिंदी साहित्य में अनेकों उपन्यास लिखे गए हैं, परंतु 'तमस' इन सब से विशिष्ट है। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि मजहबी जुनून और नफरत के इस वातावरण में संवेदना की एक पतली-सी पंक्ति भी लुप्त हो जाती है। ऐसे तनाव एवं घृणा के माहौल में अधिकतर मुनष्यों में करुणा, मानवीयता, दया, संवेदना आदि सृजनात्मक अभिवृत्ति खत्म हो जाती है और वह इंसान की शक्ल में जानवर बन जाते हैं। यह उपन्यास इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि इस पर दूरदर्शन पर धारावाहिक बना या साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, बल्कि यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि देश विभाजन की भयंकर त्रासदी का जो सूक्ष्म एवं अमानवीयता का चित्रण हुआ है, उसके पीछे कहीं-न-कहीं अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति, धर्मगुरुओं, पूँजीपतियों का निजी स्वार्थ है। भीष्म साहनी मुसलमानों और हिंदुओं की अवसरवादिता, धर्मांधता और अंग्रेजों की नीतियों का पर्दाफाश करते हुए बख्शी पात्र के माध्यम से कहलवाते हैं, ''फिसाद कराने वला भी अंग्रेज, फिसाद रोकने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज।''[5] सांप्रदायिक दंगों के कारण आम व्यक्ति का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है और उसे कुंठाग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इस उपन्यास में लोगों की कुंठित दशा का चित्रण उपन्यासकार ने किया है। सोहनलाल, मिल्खी सिंह, हरनाम सिंह आदि न जाने कितने पात्र ऐसे हैं, जो बेकसूर हैं, परंतु उनहें सांप्रदायिकता का रूप निगल जाता है तथा सांप्रदायिक सौहार्द्र स्थापित करने वाले लोगों को भी अनेक यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं। यद्यपि उपन्यासकार ने समाज के विभिन्न वर्गों के अनुरूप ही पात्रों का चयन किया है, जिसमें कुछ वर्ग विशेष जमींदार, पूँजीपति जो कहीं आदर्शों, सिद्धांतों के आधार पर मानवतावादी दृष्टिकोण की झलक दिखाते हैं। प्रिंसिपल हरबर्ट नम्रतापूर्वक आग्रह करता हुआ रिचर्ड से कहता है, ''शहर की हिफाजत का सवाल राजनीतक नहीं है, यह राजनीतिक पार्टियों के ऊपर का सवाल है, शहर के सभी लोगों का, नागरिकों का सवाल है। इसमें अपनी-अपनी पार्टियों को भूल जाना होगा। सरकार का भी रोल इसमें बहुत बड़ा है। हम सबको मिलकर शहर की स्थिति को संभाल लेना चाहिए।''[6]

'तमस' उपन्यास भारत-पाकिस्तान विभाजन की पूर्वपीठिका पर आधारित है, जिसमें उपन्यासकार ने केवल उन स्मृतियों का चयन किया, जो विभाजन की विभीषिका और सांप्रदायिकता की त्रासदी को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समक्ष थी, जिसमें विभाजन के कारण की अपेक्षा उन घटनाओं के पीछे षड्यंत्रों को दिखाना ही उपन्यासकार का उद्देश्य था। इन सांप्रदायिक दंगों की आग में पूरा शहर और 103 गाँव जल गए थे, दूसरी ओर जिस पर पूरे देश की कानून-व्यवस्था की जिम्मेदारी थी वह अंग्रेज सरकार तक तक सोई हुई थी, जब तक सब कुछ नष्ट नहीं हो गया। यहाँ तक की जिलाधीश रिचर्ड अपनी पत्नी लीजा से कहता है, ''मैं उनसे कहूँगा तुम्हारे धर्म के मामले तुम्हारे निजी मामले हैं, इन्हें तुम्हें खुद सुलझाना चाहिए। सरकार तुम्हारी मदद करने के लिए पूरी तरह से तैयार है।''[7] एक समय था, जब समस्त देशवासियों का लक्ष्य देश को आजाद कराना था, लेकिन आज वैसा लक्ष्य हमारे सामने नहीं है। सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस, आजाद हिंद फौज के कितने ही वीर सपूत देश की आजादी के लिए शहीद हो गए, लेकिन इस आजादी के लिए कोई सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए। उस

समय देश में आर्थिक, सामाजिक आदि व्यवस्थाओं पर चर्चा की जाती थी। पूँजीवादी व्यवस्था को शोषण करने वाली व्यवस्था मानी जाती थी, लेकिन आज पूँजीवादी व्यवस्था को आर्थिक विकास का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता है। ''लेखक ने भारत विभाजन के कारणों और उससे उत्पन्न स्थितियों, संबंधों और संवेदनाओं का प्रभावशाली ढंग से उद्घाटन किया है। वह मूलत: मानवीय सद्भावना में विश्वास रखता है, लेकिन अनेक स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ की साधना के लिए अपनी कुत्सित वृत्ति की तृप्ति के लिए सद्भावना को तोड़ते रहते हैं। अंग्रेजी सरकार मुसलमानों में सद्भावना नहीं चाहती थी और स्वार्थी राजनीतिज्ञ तथा सांप्रदायिक नेता अपने-अपने स्वार्थ और वृत्ति को तृप्त करने के लिए शासकों द्वारा फेंकी गई चिंगारी को धधका रहे थे।''[8] इस प्रकार विभिन्न धर्मों के लोग जो सांप्रदायिक मनोवृत्ति के लोग हैं, वही इस तरह के सांप्रदायिक दंगों के कारण होते हैं। यह पूरे विश्व का दुर्भाग्य है कि सांप्रदायिकता की समस्या अब सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक हो गई है। प्रत्येक समाज में धर्मांध शक्ति इतनी सक्रिय हो रही है कि असहिष्णुता बढ़ती जा रही है।

निष्कर्ष :

दरअसल 'तमस' उपन्यास मानवीय चेतना को झकझोरने वाला उपन्यास है। इतिहास साक्षी है कि 'तमस' उपन्यास जैसी घटना सन 1990 में जम्मू-कश्मीर में घट चुकी है। तुष्टिकरण की राजनीति के कारण आज भारत के विभिन्न प्रांतों में जैसे बांग्लादेश के रोहिंग्याओं को भारत में शरण देना, असम, पश्चिम बंगाल, केरल जैसे राज्यों में देश विरोधी ताकतों का उभरना इस बात का प्रतीक है कि सांप्रदायिकता की आड़ में मानव अस्तित्व खतरे में है। यद्यपि किसी भी देश में सांप्रदायिक दंगों एवं अलगाव फैलाने वाले लोग काफी कम संख्या में होते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति में लोगों को भवनात्मक स्तर पर न जाकर तथ्यों के आधार पर इन समस्याओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। सभी संप्रदायों में कुछ ऐसे असामाजिक तत्व मौजूद होते हैं, जो अपनी निजी स्वार्थ के लिए विघटनकारी प्रयासों में लगे रहते हैं। इसके लिए देश की जनता को मानवीयता की खातिर ऐसे तत्वों को पहचानने एवं उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है ताकि भारतीय जनता के मानस पटल पर सांप्रदायिकता रूपी तमस सदा के लिए हट जाए। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भीष्म साहनी, तमस, आमुख रामचंद्र तिवारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सत्रहवां संस्करण 2017, पृष्ठ 4
2. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 17वां संस्करण 2017, पृष्ठ 17
3. विनोद शाही, (संपादक) तमस, एक पुनर्पाठ, समय का उत्तर पाठ, प्रफुल्ल कोलाख्यान, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ 28
4. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सत्रहवां संस्करण 2017
5. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 17 संस्करण 2017
6. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल, प्रकाशन, नई दिल्ली, 17 संस्करण 2017
7. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल, प्रकाशन, नई दिल्ली, 17 संस्करण 2017
8. विनोद शाही (संपादक) तमस एक पुनर्पाठ, वर्ग बहुल एवं संस्था बहुत बनावट, प्रीति सिंघी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ 222-23

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

असम की चाय जनगोष्ठी : एक सांस्कृतिक अवलोकन

डॉ. नंदिता दत्त

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
नॉर्थ लखिमपुर कॉलेज,
(स्वायत्तशासित),
खेलमाटी-787031 (असम)
8253819725
nanditadutta56@rediffmail.com

असम एक हरा-भरा प्रदेश है। यहाँ की वादियों में खूबसूरती के साथ-साथ अनन्य प्रशांति भी विद्यमान है। सभी जानते हैं कि असम जनजातियों का समन्वय स्थल है, जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी और जनजाति के लोग बड़े ही प्यार से जीवन-यापन करते हैं। चाय जनगोष्ठी के नाम से यह सहज अनुमेय है कि यह चाय खेती से जुड़ी हुई है। भारत और पूरे विश्व में जब 'आसाम टी' की बात होती है तो इसी चाय जनगोष्ठी को समझा जाता है। यूँ तो ये लोग असम के भूमिपुत्र नहीं हैं, परंतु असम इनके लिए यशोदा माँ समान है, जिसने उनका लालन-पालन किया। इनकी कहानी असम में तब से शुरू होती है, जब अंग्रेजों ने असम में चाय की खोज की थी। यहाँ काम करने के लिए भारत के विभिन्न स्थानों से इन्हें अंग्रेज लेकर आए थे। कुछ अपनी मर्जी से; तो कुछ अपने पेट की खातिर यहाँ के चाय बागानों में काम करने आ गए थे। ये वे लोग थे, जो समाज में असमानता व शोषण आदि के शिकार थे और जीविका की तलाश में असम पहुँचे थे। तभी से ये लोग चाय जनगोष्ठी अथवा आदिवासी नाम से असम में पहचाने जाने लगे; आम असमीया भाषा में इन्हें 'बागानिया' कहते हैं। चाय बागान में ही इनकी बस्ती होती है। आज ये लोग असम के अभिन्न अंग हैं। असमीया कला-संस्कृति-साहित्य में इनका सराहनीय योगदान रहा है।

शोध पत्र का उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

क) असम की चाय जनगोष्ठी के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालना।

ख) चाय जनगोष्ठी के सांस्कृतिक योगदान पर प्रकाश डालना।

शोध पत्र की सीमा :

प्रस्तुत शोध पत्र में केवल असम की चाय जनगोष्ठी के सांस्कृतिक जीवन की ही चर्चा की जाएगी। यही इस शोध कार्य की सीमा है।

शोध पत्र की पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र को निम्नलिखित पद्धतियों की सहायता से संपूर्ण किया गया है-

(क) वर्णनात्मक पद्धति

(ख) आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति

(ग) लिप्यांतरण और भावानुवाद पद्धति (असमीया के उद्धरणों और गीतों के वर्णन व विश्लेषण हेतु)

(घ) सर्वेक्षण पद्धति के अंतर्गत प्रश्न समूहों के द्वारा भी तथ्य प्राप्त किया गया है।

मूल विषय :

इस बात से तो हम वाकिफ हो गए हैं कि 'बागानिया' लोग असम के भूमिपुत्र नहीं हैं। अर्थात ये प्रव्रजित हैं, जो भारत के अलग-अलग प्रांत से आए थे। देश के विभिन्न प्रांतों से आने वाले तो फिर ये लोग आखिर हैं कौन ? चाय जनजाति के विद्वान शुकदेव अधिकारी जी लिखते हैं कि 'असम की चाय जनगोष्ठी के लोगों के बीच मूलत: ऑष्ट्रिक और मंगोलीय जनगोष्ठी के लोग पाए जाते हैं।'[1] कुछ विद्वान इन्हें द्रविड़ जाति के वंशज भी मानते हैं। खैर, जो भी हो; असम के भूमि में प्रवेश करने के बाद ये लोग एकजुट होकर रहने लगे और सभी ने मिल-जुलकर इस चाह (चाय) लोक-संस्कृति को आगे बढ़ाया। 'असम में मूलत: कोल, मुंडा, कुर्मी, चाऊताल, पाहारीया, माल' पाहारीया, चाऊरा आदि संप्रदाय के बागानिया लोग रहते हैं; जो कभी पहाड़ों में घुमक्कड़ी जीवन-यापन करते थे। शिकार करना, जंगलों की लकड़ी इकट्ठा करना, लकड़ी बेचना आदि ही उनकी मूल आजीविका थी, परंतु असम के चाय बागानों में आने के बाद उनकी जीवन-शैली में काफी परिवर्तन आया; फिर भी कई-कई जगहों पर आज भी उनमें शिकार की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं।'[2] पहले वे केवल चाय बागानों के आस-पास ही रहते थे; जिसे आम भाषा में 'बस्ती' अथवा 'लाइन' कहा जाता है। फिर समय के परिवर्तन के साथ उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आने लगा और चाय बागानों से दूर भी उन्होंने अपना बसेरा बना लिया। धीरे-धीरे उनकी जनसंख्या बढ़ने लगी और देखते ही देखते वे एक संस्कृतिवान समुदाय के रूप में परिणत हो गए। आज असम के जाने-माने साहित्यकारों की सूची में ये भी शामिल हैं। इनके साहित्यकारों ने अपनी कला-संस्कृति को एक नया आयाम दिया और साथ ही उनके यथार्थ जीवन की मार्मिक छवि भी प्रस्तुत की, जहाँ उनकी आशा-आकांक्षा के साथ-साथ उनका संघर्ष तथा उन पर हुए शोषण आदि की महागाथा भी शामिल है। असम की चाय जनगोष्ठी के कुछ महत्वपूर्ण साहित्यकारों के नाम हैं - चेनीराम कुर्मी, मेघराज कर्मकार, देउराम तासा, नारायण घाटोवार, सुशील

कुर्मी, कामाख्या तासा, डिंबेश्वर तासा, डॉ. शुकदेव अधिकारी, कवि समीर ताँती, कवि अनंत ताँती, कवि कमल कुमार ताँती, मनोमती कुर्मी आदि। असमीया साहित्य को समृद्ध करने में इन साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सांस्कृतिक परिचय :

चूँकि यह पहले भी बताया गया है कि चाय जनगोष्ठी के लोग किसी एक निर्दिष्ट संप्रदाय के लोग नहीं हैं। भारत के विभिन्न प्रांतों से श्रमिक के रूप में आने वाले लोगों का समूह है यह; यहाँ के प्रत्येक संप्रदाय का अपनी जीवन शैली व सामाजिक-सांस्कृतिक विचार है, फिर भी इनमें एक अजीब एकता का स्वर परिलक्षित होता है। एक समय था, जब बागानिया के बेटे को चाय बागान में मजदूरी ही करनी पड़ती थी, लेकिन आज वह पढ़-लिखकर अपने हिसाब की जिंदगी जीने में सक्षम है। आज उनके शिक्षित वर्ग ने अपने लोकाचार व लोक-संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयास किया है, जिसके परिणामस्वरूप आज मैं यह शोध आलेख लिख पाने में समर्थ हो रही हूँ। आइए, उनकी संस्कृति के बारे में कुछ बातें जानने का प्रयास करते हैं।

उत्सव व रीति-रिवाज :

'भारतीय लोक-परंपरा में जन्म-मृत्यु और विवाह- ये तीन सांस्कृतिक धाराएँ विशेष हैं। चाय जनगोष्ठी के लोग भी इसी भारतीय परंपरा में विश्वास करते हैं।'[3] ये कई तरह के त्योहार-पूजा आदि मनाते हैं। 'चाय जनगोष्ठी के लोगों द्वारा मनाए जाने वाले अधिकतर उत्सव लौकिक हैं। यहाँ किसी ब्राह्मण अथवा पुरोहित की आवश्यकता नहीं है। समाज के मुखिया द्वारा ही ये अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। इसी तरह महिलाओं के उत्सव/अनुष्ठान महिलाओं द्वारा ही संपन्न होते हैं। उनके द्वारा असम में मनाए जाने वाले विभिन्न उत्सवों में उनके अज्ञात अनेक आंचलिक लोकाचार समाहित हैं। संस्कृतियों के इस भंडार ने चाय जनगोष्ठी की सांस्कृतिक परंपरा को और अधिक महान बनाया है।'[4] इस श्रमजीवी जनगोष्ठी के लोग बड़े ही आत्मीयता और उत्साह से उत्सव आदि का आयोजन करते हैं। उनके आतिथ्य में उनकी सरलता झलकती है। अत्यंत परिश्रमी होने के कारण जीवन-संग्राम को भलीभाँति जाना है। इनके कुछ उत्सव इस प्रकार हैं -

करम परब :

चाय जनगोष्ठी के सबसे लोकप्रिय उत्सव को करम परब कहा जाता है, जिसमें सभी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इसी अवसर पर मशहूर 'झुमुर' नृत्य किया जाता है; जिसे उनके समाज में जातीय नृत्य का सम्मान प्राप्त है। इसे पूजा से अधिक उत्सव का मान प्रदान किया गया है, क्योंकि यहाँ मांगलिकता की अपेक्षा लौकिकता को प्रधानता दी जाती है और इसीलिए यहाँ सभी धर्म के लोग हिस्सा ले सकते हैं। करम परब का परिसर विशाल है। कहा जाता है कि 'पश्चिम बंगाल के पुरुलीया, मेदिनीपुर, झाड़ग्राम, बाकूड़ार आदि के अलावा खड़गपुर लोकल, समग्र झारखंड प्रदेश, ओडिशा के मयूरगंज तथा मध्य प्रदेश के अधिकतर आदिवासी बहुल इलाकों में प्राचीन काल से बड़े ही धूमधाम से करम परब मनाया जाता है।'[5] ये लोग बड़े ही दिलदार होते हैं।

पहले इनमें शिक्षा का अभाव था, परंतु इनमें लोक-चेतना प्रथमावस्था से ही विद्यमान थी। वे जितने परिश्रमी हैं, उतने ही फुर्तीले और रसिक भी। 'करम मूलत: वृक्ष पूजा है। यह कृषि से जुड़ा हुआ है; चाय जनगोष्ठी के गीत से तात्पर्य श्रम का संगीत है। श्रम के स्थल अर्थात कृषि भूमि को संतुष्ट करने के लिए ये गीत गाए जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि उनके श्रम का उत्पादन दुगुना हो। पुराने जमाने से ही श्रम गीतों का समाज में बहुत महत्व माना गया है। झुमुर नृत्य में गाए जाने वाले झुमुर गीत के माध्यम से उनकी जन-जीवन शैली, संस्कृति, लोक-विश्वास, परंपरा आदि का आभास प्राप्त होता है। यहाँ युवक-युवती साथ में नृत्य-गान करते हुए आनंद लेते हैं। मादल (एक प्रकार का ढोल) के ताल से ताल मिलाकर वे मग्न होकर झूम उठते हैं। नजारा कुछ ऐसा रंगीन हो जाता है कि देखने वाले भी अपने आप झूम उठते हैं। इन गीतों में प्रेम-विरह, खेती-बाड़ी से लेकर रामायण-महाभारत तक की कथा शामिल है। एक सुंदर पद प्रस्तुत है-

'आषाढ़ श्रावण मासे वक 'लि मरे पियासे
कन रसिके कुंवा कुड़ि देल,
साम नगर भेट ना भेल।
श्री नन्द विनंदिया केइसे बांधव हिया।'[6]

टुसु पूजा/ टुसु अथवा पौष परब :

चाय जनगोष्ठी में प्रचलित यह पर्व ऋतुकालीन है। प्रकृति जिस प्रकार अपना रूप बदलकर सरस बनती जाती है, वैसे ये लोग भी विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न उत्सवों का पालन कर जीवंत बने रहते हैं। मकर-संक्रांति में इस उस्तव को मनाया जाता है। यहाँ टुसु नाम की देवी की पूजा की जाती है। इस उत्सव का संबंध कृषि से जुड़ा होता है।

सहराय परब :

यह उत्सव हिंदुओं के दीपावली के समान है। दुर्गा पूजा के बाद आने वाले अमावस की रात को बस्तियों में दीया जलाकर हर्षोल्लास से इस उत्सव को मनाया जाता है। दीये के प्रकाश से जीवन के अंधकार व समस्याओं को दूर करने के लिए ईष्ट देवता से प्रार्थना करते हैं। इस पर्व में घर की औरतों में रंगोली बनाने की प्रथा है। आँगन, भंडार घर, पशुगृह, घर की दीवार-खिड़की आदि पर विशेष प्रकार की रंगोली बनाई जाती हैं, जहाँ सिंदूर का टीका लगाया जाता है।

इसके अलावा ये लोग जन्माष्टमी, 'फागुवा'(होली), बांह परब (बाँस का पर्व), मनसा पूजा, दुर्गा पूजा, वीर पूजा, सूर्य पूजा, क्षेत्र पूजा और अनेक तरह के कृषि उत्सवों का पालन करते हैं।

उपलब्धियाँ :

- चाय जनगोष्ठी अब असमीया जीवन का एक अभिन्न अंग बन गई है। इनका सांस्कृतिक वैभव अतुलनीय है। इनके रंगीन सांस्कृतिक परिवेश ने असम की हरियाली में चार चांद लगा दिया है।
- असम की चाय जनगोष्ठी की आज अपनी एक पहचान है। असमीया साहित्य, संगीत तथा कला आदि के विशाल जगत में इनके साहित्यकारों, कलाकारों, संगीतकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

असम की चाय-जनगोष्ठी के कुछ लोगों ने महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव धर्म में शरण लिया था, वे उनके आदर्शों व परंपराओं को मानते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें अनुकूल देव, इस्लाम और ईसाई धर्म को मानने वाले भी हैं; जो परंपरागत रूप से उसी धर्म के रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। कुल मिलाकर कहें तो असम में आदिवासी के तौर पर आने वाले इस जनगोष्ठी का अब रूपांतरण हो चुका है। कुछ लोग परंपरागत रूप में जीवन-यापन करते हैं तो वहीं कुछ लोगों ने समय के बदलते परिवेश में अपने आप को ढाल लिया है। बहरहाल, यह तो तय है कि चाय जनगोष्ठी अब असम का अभिन्न अंग बन चुकी है। असम की कला-संस्कृति व साहित्य जगत में इनका अपरिसीम योगदान रहा है। रंग-बिरंगे फूलों जैसी इनकी संस्कृति की महक ने असम के सांस्कृतिक जगत को एक सुगंधित वाटिका का रूप दे दिया है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. नाथ, स्वपन ज्योति (सं.), लोक-संस्कृति और विश्वायन, पृष्ठ सं. 117, असमीया विभाग, खागरिजान महाविद्यालय, नगांव, असम, प्रथम संस्करण-2012
2. नाथ, स्वपन ज्योति (सं.), लोक-संस्कृति और विश्वायन, पृष्ठ सं. 118, असमीया विभाग, खागरिजान महाविद्यालय, नगांव, असम, प्रथम संस्करण-2012
3. अधिकारी, डॉ. शुकदेव, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत, लोक परम्परा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ सं. 187, सरस्वती डी.एन. प्रकाशन, गुवाहाटी, असम, प्रथम संस्करण-2015
4. अधिकारी, डॉ. शुकदेव, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत, लोक परम्परा आरु उत्सवर रूपरेखा, पष्ठ सं. 220, सरस्वती डी.एन. प्रकाशन, गुवाहाटी, असम, प्रथम संस्करण-2015
5. अधिकारी, डॉ. शुकदेव, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत, लोक परम्परा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ सं. 220, सरस्वती डी.एन. प्रकाशन, गुवाहाटी, असम, प्रथम संस्करण-2015
6. तासा, डिंबेश्वर, चाह जनगोष्ठीर समाज-संस्कृति, पृष्ठ सं. 9, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण-2012

परिशिष्ठ-1

प्रस्तुत शोध-पत्र को प्रस्तुत करते समय विभाग की आदिवासी छात्रा अनामिका भेंगरा के साथ हुई बातचीत को भी यहाँ हूबहू प्रस्तुत कर रही हूँ-

प्रश्न : आपके पूर्वज कहाँ से आए थे ?

उत्तर : हमारे पूर्वजों के बारे में कहा जाता है कि वे झारखंड, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश आदि से आए हैं ।

प्रश्न : चाय जनगोष्ठी के मूल उत्सव क्या हैं ?

उत्तर : चाय जनगोष्ठी यानी मूल रूप से जिसे आदिवासी कहा जाता है, इन लोगों के मूल उत्सव हैं-'करम' उत्सव, टुसु पुजा, सहराय आदि।

प्रश्न : पूजा-उत्सव आदि के मूल प्रसाद या आहार क्या होता है ?

उत्तर : पूजा-उत्सव आदि में घर में बनाई गई दारू को ही मुख्य प्रसाद के रूप में दिया जाता है और आहार के रूप में भात-माँस भी दिया जाता है।

प्रश्न : आप लोग मुख्य रूप से किस देवता को मानते हैं ?

उत्तर : आदिवासी लोग पहले मुख्य रूप से शक्ति और प्रकृति की पूजा किया करते थे, परंतु देखा जाता है कि आज ये लोग विभिन्न देव-देवियों की भी पूजा-अर्चना करते हैं।

प्रश्न : आपलोगों की मूल भाषा कौन सी है ?

उत्तर : साधारणत: 107 जाति-उपजातियों के लोग अपनी अपनी भाषा में ही जैसे-मुंडा, खारिया, चाउरा, चाउताल, परजा आदि जाति के लोग अपनी भाषा का व्यवहार करते हैं, किंतु मूलरूप से लोग आदिवासियों की भाषा 'सादना' में ही बातचीत करते हैं।

प्रश्न : क्या आपके समाज में वर्णभेद की व्यवस्था है ? आप किस संप्रदाय से हैं ?

उत्तर : आदिवासी संप्रदायों में 107 जाति-उपजातियाँ हैं। पहले यहाँ वर्णभेद व्यवस्था को माना जाता था; जैसे 'मुंडा' संप्रदाय के लोगों की शादी केवल अपनी बिरादरी में होती थी, ठीक वैसी समस्या चाउताल, उड़िया आदि जातियों की भी थी, परंतु अब ये सब धीरे-धीरे कम होता दिखाई पड़ता है।

मैं मुंडा संप्रदाय की हूँ।

प्रश्न : क्या आपके समाज में आज भी जादू-टोना, मंत्र विद्या आदि पर विश्वास करते हैं ?

उत्तर : हाँ। अशिक्षित होने के कारण आज भी ऐसी बहुत सारी जगहें हैं, जहाँ आज भी जादू-टोना, मंत्र आदि पर विश्वास करते हैं।

प्रश्न : आपके समाज में विवाह के कितने नियम प्रचलित हैं ? क्या दहेज प्रथा का चलन है ?

उत्तर : आदिवासी समाज में पहले विवाह की कई प्रथाओं का चलन था, पर आजकल उनमें सुधार हुआ है; दहेज प्रथा का चलन नहीं है।

प्रश्न : आप लोगों के परंपरागत पोशाक को क्या कहा जाता है और उसे विशेष रूप में कब पहना जाता है ?

उत्तर : आदिवासी महिलाओं की पोशाक को 'आदिवासी खादी साड़ी' कहा जाता है और पुरुष 'आदिवासी धोती और कुर्ता पहनते हैं और उनके माथे में बंधी हुई पगड़ी को फेटा कहते हैं। विशेष रूप में इस पोशाक को शादी या त्योहार आदि में पहना जाता है।

प्रश्न : आजकल लड़कियों को भी शिक्षा का संपूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। आपके समाज में इस विषय में स्थिति कैसी है ?

उत्तर : हाँ मिलना तो चाहिए, परंतु कई कई जगहों पर लड़कियाँ शिक्षा से वंचित हो रही हैं; इसका मूल कारण है गरीबी, जिसके कारण उनके पिता-माता जब चाय बागानों में मजदूरी करने जाते हैं लड़कियों को घर संभालना पड़ता हैं और वे शिक्षा से दूर होती जाती हैं।

*अनामिका हिंदी विभाग (न.ल.का.) की पूर्व छात्रा हैं।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विवेचन

भूटिया भाषा-साहित्य चिंतन

डॉ. चुकी भूटिया

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
पिन-737102
9609875813
cbhutia01@cus.ac.in

सारांश :

भूटिया समुदाय की भाषा को डेंजोंगके, ल्होके, सिक्किमिस भूटिया आदि नामों से चिह्नित किया जाता है। 13वीं शताब्दी से यह भाषा व्यवहार में है। सिक्किम के अलावा भारत के कई पहाड़ी क्षेत्रों में डेंजोंगके प्रयोग में आती है। बोलचाल में यह तिब्बती भाषा से भिन्नता रखती है। व्यवहार में इस भाषा के प्रयोग में तिब्बती भाषा के व्याकरण का प्रयोग मिलता है। भूटिया आदिवासी बोन धर्म को मानते थे, लेकिन सिक्किम में नामग्याल राजतंत्र शासन व्यवस्था के पश्चात वे सभी बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए। भूटिया समुदाय सिक्किम में निवास करने वाली प्राचीन समुदायों में एक है, जिनका संबंध तिब्बत प्रांत से है। वे अपने लिए ल्होपो शब्द का प्रयोग करते हैं। आठवीं शताब्दी से इस भाषा के अस्तित्व की जानकारी मिलती है, लेकिन उसका लिखित साक्ष्य सत्रहवीं शताब्दी से देखने को मिलता है। इस भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है, इस दृष्टि से इस भाषा ने बहुत कम समय में सराहनीय प्रगति की है। इस भाषा के विकास में सिक्किम की राजभाषा होने से इसको कई लाभ मिले हैं तो वहीं ग्लोबल से लोकल होने की संवेदना ने भी इस भाषा की स्थिति को बेहतर बनाया है। सिक्किम के केंद्रीय विश्वविद्यालय द्वारा भूटिया भाषा संकाय का खोला जाना इस भाषा की बड़ी उपलब्धि सिद्ध हुई है। पाठ्यक्रम लेखन का दबाव भूटिया भाषी रचनाकारों पर बना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त डेंजोंगके में साहित्य की विभिन्न विधाओं का जन्म हुआ है। आज डेंजोंगके में साहित्य की ऐसी कोई विधा नहीं है, जिसमें इस भाषा में लेखन नहीं हुआ है। यह समुदाय धर्म में गहरी आस्था रखता है, जिससे उनका साहित्य बहुत ज्यादा प्रभावित नजर आता है। इसलिए इनके लेखन में इस समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ उनकी धार्मिक आस्था सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

बीज शब्द :

डेंजोंगके, नामग्यल राजतंत्र शासन व्यवस्था, भूटिया समुदाय, ल्होपो,संस्कृति आदि।

मूल आलेख :

सिक्किम एक बहुजातीय एवं बहुभाषी प्रांत है, सभी बड़े सौहार्द्र भाव से यहाँ निवास करते हैं। अनेक जाति-जनजातीय समूह में भूटिया एक जनजाति है, जो

बहुत पहले से सिक्किम में निवास कर रही है। इनके लिए 'भोटे' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो इनके भोट (तिब्बत) से संबंध को दर्शाता है। भूटिया अपने को 'ल्होपो' कहते हैं। भूटिया जनजाति तेरहवीं शताब्दी में तिब्बत के दक्षिणी भाग 'हा' और छुम्बी से सिक्किम की ओर आई थी। इसकी पुष्टि ऐतिहासिक साक्ष्यों से होती है। तिब्बत के खाम प्रांत के राजकुमार ख्ये बुम्सा को भूटिया जाति का पूर्वज माना जाता है, जिनके विषय में यह प्रख्यात है कि वे असीमित शक्ति के पुँज थे। (Gymatso, 2011) डेंजोंगके का विकास आठवीं शताब्दी के साथ शुरू होता है और जिसने उसके पश्चात निरंतर गति की है, पर उसका लिखित साक्ष्य सत्रहवीं शताब्दी के साथ देखने को मिलता है। भूटिया जाति ने सिक्किम की धरती पर सन 1642 से नामग्याल राजतंत्र शासन व्यवस्था की स्थापना की थी। राजतंत्र शासन व्यवस्था में तिब्बती भाषा को राजभाषा की मान्यता मिली हुई थी। डेंजोंगके केवल भूटिया जन के मध्य बातचीत में प्रयुक्त हुआ करती थी, सरकारी कामकाज, शिक्षा और बौद्ध मठों के प्रभाव से राज्य में तिब्बती भाषा फल फूल रही थी। सन 1975 में जब सिक्किम भारतीय गणराज्य में सम्मिलित हुआ, तब भूटिया भाषी ने अपनी भाषा के विकास में कार्य करना प्रारंभ किया, उसी चेष्टा में सन 1977 में भूटिया, लेप्चा और नेपाली भाषा को सिक्किम की राजभाषा बनने का गौरव प्राप्त हुआ। शिक्षा के साथ भूटिया भाषा का संबंध जुड़ा, बड़े फलक पर पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य हुआ, कई भूटिया भाषी विद्वान सामने आए, जिनके अथक परिश्रम से डेंजोंगके या भूटिया भाषा ने निरंतर अपनी प्रगति की।

भूटिया भाषा और इसके साहित्य के विकास में कई नाम उल्लेखनीय हैं- श्री पेमा रिंजिंग, श्री भाईचुंग छिछूथरपा, श्री सोनम ग्यात्सो, डॉ. न्यिदुप भूटिया आदि। श्री पेमा रिंजिंग पी.जी.टी. भूटिया पद पर कार्यरत थे। कालांतर में वे शिक्षा विभाग में पाठ्यक्रम निर्माण ऑफिसर पद पर पदोन्नत हुए। आरंभिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम को केंद्र में रखकर उन्होंने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया। भूटिया भाषा के व्याकरण निर्माण में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में भूटिया भाषा उन्हीं के निर्मित व्याकरण के नियमों पर व्यवहृत है। उन्होंने उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं, उनकी कहानियों में जीवन संबंधी मौलिक दर्शन मिलता है। भूटिया शब्दकोश निर्माण का कार्य भी इनके द्वारा संपन्न हुआ है।

श्री सोनम ग्यात्सो दोखाम्पा भूटिया साहित्य और संस्कृति के निमित्त एक ऐसा नाम है, जिसने भूटिया संस्कृति और परम्परा को ध्यान में रखकर 'बार्फुंग की दरोडे' उल्लेखनीय कृति का निर्माण किया है। युवा पीढ़ी अपनी सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रहे यह उनकी मुख्य चिंता रही है। इसलिए उन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तकों के साथ गीतों का सृजन किया है। बार्फुंग स्थान विशेष का नाम है, सोनम दोखाम्पा वहीं से संबद्ध हैं, उस क्षेत्र के भूटिया जन द्वारा विवाह संबंधी जिन पारंपरिक संस्कारों का पालन करते हैं, उनका विधिवत् उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। यह पुस्तक आज भूटिया समाज में बहुत लोकप्रिय है, इसमें वर्णित विवाह संस्कार थोड़े बहुत अंतर के साथ समस्त भूटिया समुदाय द्वारा मान्य हैं।

श्री भाईचुंग छिछूथरपा का भूटिया भाषा-साहित्य को समृद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान है। सिक्किम में भूटिया साहित्य की विधाओं में जो विविधता दिखाई पड़ती है, समस्त विधाओं में पहली बार पहल करने का प्रयास श्री भाईचुंग से हुआ है। भूटिया भाषा में 'रिक्छी' शीर्षक से उपन्यास सन 1996 में प्रकाशित हुआ, भूटिया भाषा में

सृजनात्मक कार्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। 'निथिक' शीर्षक से सन 1996 इनका काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसके आलावा 'छिगछेथ न्हाथ्शोग्स' इन्हीं का दूसरा काव्य संग्रह आया, जिसका प्रकाशन 2008 में हुआ। इसी तरह लगातार इनके द्वारा 2014 में 'होंयों फिचुंग' नाम से तीसरा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। यह सिक्किम प्रांत की विभिन्न पक्षियों और उनके जीवन पर केंद्रित रहा है। इसमें लेखक की पर्यावरण चेतना और चिंता भी दिखाई पड़ती है। इनके द्वारा 'नाम्तोक' नाटक विधा की पहली रचना सन 1997 में प्रकाशित हुई, जो भूटिया जाति के विश्वास और आस्था पर केंद्रित है। इसमें ऐसे कई प्रसंग आए हैं, जो भूटिया आदिवासी समुदाय की अवैज्ञानिक धारणाओं को व्यक्त करते हैं। श्री भाईचुंग भूटिया ने महात्मा बुद्ध की जीवनी का भूटिया भाषा में अनुवाद किया है। भूटिया भाषा, उसकी संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए भूटिया पर्व-त्योहारों, संस्कृति, परंपरा पर उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सिक्किम में भूटिया भाषा में 'फ्याके' नामक शीर्षक से एक फिल्म निर्माण का कार्य इनके द्वारा संपन्न हुआ है। वे अब भी भूटिया भाषा साहित्य लेखन में समर्पित हैं। वर्तमान समय में वे सिक्किम विश्वविद्यालय में सह आचार्य के पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. न्यिदुप भूटिया सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। वे अनुवाद का काम करते हैं। उनके द्वारा तिब्बती भाषा में रचित पुस्तक का भूटिया भाषा में 'नाम्थार' नाम से अनुवाद हुआ है, जो उपन्यास विधा के करीब की रचना है। यह एक प्रेम कहानी है। कहानी की नायिका वैराग्य जीवन का चयन करती है। बेहतरीन अनुवाद इसे माना जाता है। यह धार्मिक आस्था और जीवन की नश्वरता पर केंद्रित है, जो मूलतः भूटिया जाति की गहरी आस्था से संबंधित है।

इसके अलावा भूटिया साहित्य में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करने वालों में श्री दोरजी रिन्छेन, श्री कर्मा लोब्जांग, डॉ. न्यिदुप भूटिया, डॉ. कुंजंग नामग्याल, श्री छिवांग दोरजी भूटिया, श्री थुपदेन पाल्जांग, डॉ. जिग्मी वांगछुक भूटिया, श्री गोम्पू दोरजी भूटिया, श्री पिंछो भूटिया, श्री कर्मा हिसे भूटिया, डॉ. हिसे वांगछुक भूटिया आदि युवा रचनाकारों की भी भूमिका उल्लेखनीय है।

श्री दोरजी रिन्छेन ने शब्दकोश निर्माण कार्य के साथ काव्य लेखन किया है। श्री कर्मा लोब्जांग मूलतः कवि हैं, उनकी कविताओं में विषय की विविधता देखी जा सकती है। उनके यहाँ आत्मीय संबंधों और प्रेम के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति हुई है तो कहीं शिक्षा, प्रेम, करुणा, पर्यावरण चिंता, वन जंगल की सुरक्षा, स्वास्थ्य, धर्म, संस्कृति आदि अनेकानेक विषयों को उनकी कविता में स्थान मिला है। उनका वर्ष 2013 में भूटिया लोक कथाओं का संकलन प्रकाशित हुआ है। डॉ. न्यिदुप भूटिया, भूटिया साहित्यकारों में एक बड़ा नाम है। वे सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हैं और काव्यशास्त्र संबंधी लेखन करते हैं। उनके द्वारा तीन नाटक लिखे गए हैं। डॉ. हिसे वांगचुक भूटिया ने कई पुस्तकें लिखी हैं। उनकी पुस्तकें शोधपरक हैं और वे मूलतः सिक्किम में अवस्थित तीर्थ स्थानों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ भूटिया जन मानस में व्याप्त आस्था से जोड़ते हुए उनका महत्व सिद्ध करते हैं। सिक्किम के दक्षिणी जिले में अवस्थित टाशीदिंग मठ पर केंद्रित उनका शोधपरक ग्रंथ पढ़े-लिखे भूटिया समाज में बहुत ही लोकप्रिय है। श्री छिवांग दोरजी भूटिया पी.जी.टी. अध्यापक हैं। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र की पुस्तकें लिखी हैं और सिक्किम की भूटिया आदिवासियों में ज्योतिष के बड़े विद्वान माने जाते हैं। श्री थुपदेन पाल्जंग ने वास्तुशास्त्र से संबंधित पुस्तकें लिखी हैं। भूटिया घर की संरचना, उनमें कमरों की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए, मंदिर गृह कहाँ और कैसे होना चाहिए, मठ को कितना बड़ा और किस दिशा में उसका मुख होना चाहिए- ऐसे सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान उनके पास हैं। वे अपने लेखन के माध्यम से पारंपरिक भूटिया वास्तु के संरक्षण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। डॉ. जिग्मी वांगचुक भूटिया व्याकरण की पुस्तक के साथ भूटिया संवाद लेखन का कार्य करते हैं, जो भूटिया भाषा के प्रचार और प्रसार तथा उसके संरक्षण की चिंता से संबद्ध हैं।

श्री गोम्पू दोरजी भूटिया धार्मिक आस्था और लोक पर केंद्रित लेखन किया करते हैं, परंतु उनकी प्रकाशित रचनाओं की संख्या बहुत कम है। श्री कर्मा हिसे भूटिया द्वारा भूटिया लोक कथाओं पर काम हो रहा है।

डेंजोंगके में साहित्य लेखन की यात्रा बहुत समृद्ध नहीं कहा जा सकता है। विधिवत् तरीके से लेखन कार्य 1977 के बाद प्रारंभ हुआ है। इसके उद्भव काल में रचनाकारों पर पाठ्यक्रम निर्माण का दबाव बना रहा है। एकाध वर्ष पूर्व सिक्किम विश्वविद्यालय में भूटिया, लिंबू और लेप्चा भाषा के विभाग खुले हैं। ऐसे में रचनाकारों पर उस स्तर के पाठ्यक्रम निर्माण की जिम्मेदारी बढ़ी है। भूटिया साहित्य प्रेमी और भूटिया भाषा के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकर लगातर अपने श्रम से भूटिया सहित्य की सेवा में लगे हैं। तिब्बती और अंग्रेजी भाषा से भी अनुवाद का कार्य हो रहा है। काव्य लेखन का कार्य कइयों के द्वारा हुआ है और उनका काव्य विषय धर्म, संस्कृति और लोक से संबद्ध है। साहित्य का फलक जीवन से सीधा जुड़ा हुआ नजर नहीं आता है। लोक-कथाएँ, ज्योतिष शास्त्र, काव्यशास्त्र जैसे विषयों पर भी लेखन के उदाहरण मिलते हैं। पर्यावरण जैसी समसामयिक विषय पर भी कविताएँ देखने को मिलती है, परंतु इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि भूटिया साहित्य में विषयों की विविधता का संबंध उसके धर्म, संस्कार, संस्कृति की सुरक्षा और संवर्धन प्रति चिंता, जीवन मूल्य आदि से संबद्ध है। साहित्य जीवन की आलोचना है, जीवन का प्रतिबिंब है, इसके उदाहरण भूटिया साहित्य में अभी बहुत नहीं मिलते हैं, परंतु जिस गति से इस क्षेत्र में लेखन हो रहा है- बहुत आश्वस्त हुआ जा सकता है कि आगामी समय में उसकी एक समृद्ध रूपरेखा तैयार होगी। हाल के वर्षों में युवा पीढ़ियों में कई रचनाकार उभर रहे हैं। उनकी संख्या में दिनोंदिन बढ़ोतरी हो रही है। उनका भूटिया भाषा और साहित्य में हस्तक्षेप इस बात का द्योतक है कि वे अपनी भाषा-संस्कृति, अपनी जातीय पहचान के प्रति सचेत हैं।

निष्कर्ष : यह मान सकते हैं कि भूटिया भाषा या डेंजोंगके का अध्ययन जैसे ही शिक्षा के उच्च स्तर से जुड़ा है, बहुत-सी कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, लेकिन भाषा प्रयोग के स्तर को देखें तो परिवार में बड़े-बुजुर्ग के अलावा इस भाषा के अध्येता ही इसका इस्तेमाल करते पाए जाते हैं। फिलहाल भाषा का संरक्षण जरूरी हो गया है, क्योंकि शोध से ज्ञात हुआ है कि भारतीय भाषाओं में बहुत-सी भाषाओं पर अस्तित्व का संकट मंडरा रहा है, उनमें भूटिया भाषा भी एक है। राज्य की संपर्क भाषा नेपाली एवं सरकारी संस्थानों एवं शिक्षा की भाषा अंग्रेजी के बीच यह भाषा अपना दायरा बढ़ाने की चेष्टा निरंतर कर रही है। बहरहाल, ऐसे लोगों की संख्या अवश्य कम है, लेकिन राज्य सरकार की भाषा संरक्षण की नीतियाँ एवं गैर सरकारी संस्थानों की कोशिशें इनकी हिम्मत का पोषण कर रही हैं। भाषा और साहित्य की सुरक्षा, संरक्षण की जिम्मेदारी लेते हुए इस भाषा में लगातार सृजनात्मक कार्य हो रहे हैं। अभी भूटिया भाषा साहित्य अपने शैशव अवस्था में है, रचनाओं की गुणवत्ता पर टिप्पणी से ज्यादा इस भाषा में अधिकाधिक प्रयोग एवं लेखन को प्रोत्साहन देने की जरूरत है। लेखन में प्रौढ़ता समय के साथ आती जाएगी। भूटिया साहित्य पर उनके धर्म और आस्था की जकड़ गहरी है, सोशल मीडिया, तकनीक एवं ज्ञान-विज्ञान के आलोक में वे अपने सीमित दायरों से उठकर जीवन को उन्मुक्त दृष्टि से देख सकेंगे, इसकी संभावना व्यक्त की जा सकती है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Subba,J.R.(2016).*History Culture and Customs SIKKIM*.Gyan publishing house.New Delhi.
2. देवी,गणेश. (2023).सिक्किम की भाषाएँ.(सं.).ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड.हैदराबाद.
3. Yliniemi.Juha. *A Descriptive Grammar of Denjongke* (Sikkimese Bhutia)Himalayan Linguistics Archive 10
4. Gyamtso.P.T (2011).The History,Religion,culture and Traditions of Bhutia Communities,Printed at New Delhi.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

प्रसंग

विज्ञापन का भाषिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

मनोज मल्लाह
शोधार्थी, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय
तेजपुर, असम
नपाम (असम)-784028
9547096955

डॉ. अनुशब्द
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय
तेजपुर, असम
नपाम (असम)-784028
मो. 8876049200
anushabda@gmail.com

किसी भी वस्तु या विचार का किसी संचार माध्यम के द्वारा प्रचार-प्रसार करना विज्ञापन कहलाता है। यह उत्पादन से लेकर वितरण तक के बीच की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। उत्पाद और उपभोक्ता के बीच की एक अनिवार्य कड़ी है। डॉ. हरिमोहन विज्ञापन की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि- ''विज्ञापन ऐसा साधन है, जो लिखित या मौखिक शब्दों, चिन्हों, छवियों, ध्वनियों, रंगों में बँधे विचार और संदेश को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचाने की कला से परिपूर्ण रहता है, जिसकी सफलता इस बात में निहित है कि वह अधिक-से-अधिक लोगों को प्रभावित कर सके, अपने पक्ष में उनकी इच्छाओं को मोड़ इच्छित उत्पाद को देखने एवं खरीदने के लिए प्रेरित कर सके।''[1] यानी किसी वस्तु को बेचने हेतु वस्तु की छवि लोगों के मन में किस प्रकार बने यह विज्ञापन तय करता है। कहा जा सकता है कि लोगों की जरूरत, उनकी भावनाओं को देखकर उन्हीं की भाँति वस्तुओं को प्रस्तुत करना, उनके अंदर गहरी लालसा पैदा करना, वस्तु की जरूरत को पैदा करना, लोगों की इच्छाओं को वस्तु की तरफ मोड़ना, विज्ञापन का उद्देश्य है। ''दूसरी ओर साहित्य कर्मियों और भाषा के जानकारों के लिए विज्ञापन भाषा, संस्कृति और संचार से जुड़ा ऐसा विषय है, जो सामाजिक परिवर्तन तथा मनोवैज्ञानिक सच्चाइयों का अनावरण करता है। उनका विश्लेषण विज्ञापन के इसी पक्ष से संबद्ध है।''[2] वर्तमान समय में विज्ञापन के कई माध्यम हैं जैसे- टेलीविजन, रेडियो, अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, पोस्टर, इंटरनेट, मोबाइल, कंप्यूटर इत्यादि। आज विज्ञापन किसी वस्तु के क्रय-विक्रय तथा वस्तु की माँग का पर्याय बन चुका है एवं यह विशुद्ध रूप से उपभोक्तावाद और पूँजीवाद का अंग बन गया है। हालाँकि विज्ञापन केवल वस्तुओं का ही लोगों के मन में स्थान नहीं बनाता है, बल्कि यह उन विचारों का भी लोगों के मन में जगह बनाता है, जो किसी उत्तम कार्य से संबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए सरकार या किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा चलाई गई जनकल्याणकारी एवं जनचेतनापरक योजनाओं को हम देख सकते हैं। जैसे- एचआईवी, टी.बी., धूम्रपान, सर्व शिक्षा अभियान, परिवार नियोजन आदि से जुड़े विज्ञापन एवं जानकारियाँ, जो जनहित में जारी की जाती हैं।

विज्ञापन का उद्देश्य वस्तु एवं विचारों से संबंधित होता है कि किस तरह इससे लोगों के अंदर कामना जगाया जाए या विचारों का उसके मन-मस्तिष्क पर छाप

छोड़ा जाए। विज्ञापन का संबंध वस्तु और विचारों से होने के कारण यह लोगों को एक उपभोक्ता के रूप में देखता है, जो वस्तु या विचारों का उपभोग कर सके। यहाँ विचारों का उपभोग कहने से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसका प्रभाव लोगों के मन-मस्तिष्क पर पड़े ताकि जो भी विचार हैं, उन्हें वह अपने जीवन की जरूरतों या जीवन शैली में उतार सके।

विज्ञापन का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन समय में इसे श्रव्य माध्यम द्वारा अर्थात बोलकर प्रयोग किया जाता था, जो आज भी मुहल्लों, रास्तों तथा गाड़ियों में देखने को मिल जाता है। डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय लिखते हैं कि 'विश्व का पहला विज्ञापन भारत में ही तैयार किया गया था और वह भी संस्कृत भाषा में श्लोक के रूप में, जिसमें आकर्षण है और शालीनता भी। विश्व का प्राचीनतम विज्ञापन मध्य प्रदेश राज्य के मंदसौर जिले में स्थित प्राचीन दशपुर (वर्तमान में मंदसौर) के कुमार गुप्तकालीन मंदिर में अंकित है।'[3] इसके मुद्रित रूप कि बात की जाए तो 15वीं सदी के आसपास इसकी शुरुआत अंग्रेजों द्वारा मानी जाती है। धीरे-धीरे विज्ञापन का विस्तार इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया, वेब मीडिया के द्वारा होने लगा है।

गौरतलब है कि कोई भी विज्ञापन अगर श्रेष्ठ, सफल और प्रभावी बनता है तो उसकी भाषा की वजह से। उसकी भाषा पर ही यह निर्भर करता है कि विज्ञापन किस तरह का होगा या लोगों पर उसका किस तरह का प्रभाव पड़ेगा आदि। इसीलिए विज्ञापन की भाषा विज्ञापन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लोगों के आकर्षण का केंद्र बिंदु इसकी भाषा ही है। विज्ञापन की भाषा कई तरह से कार्य करती है। जैसे-यह बिल्कुल सरल होती है, जिससे लोग आसानी से बातों को समझ सकें, इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है, जो लोगों के मन में लंबे समय तक स्मरणीय बनी रह सके। लोग के मन में किसी वस्तु या विचार के प्रति विश्वास बन जाए। भाषा विज्ञापन को जीवंत रूप प्रदान करती है।

भाषा किसी भी देश की सबसे संवेदनशील इकाई होती है। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा ही होती है। बकौल कुँवर नारायण, 'भाषा संस्कृति की सबसे नाजुक इकाई होती है।' यह केवल संचार एवं संप्रेषण का ही माध्यम नहीं होती है, अपितु यह किसी समाज तथा उसकी संस्कृति की धरोहर के रूप में विद्यमान होती है। किसी व्यक्ति द्वारा यदि किसी मूल भावना को दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना हो तो यह कार्य भाषा के द्वारा ही संभव हो पाता है। यदि दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति की भाषा से परिचित न हो तो वह उसकी भावनाओं को उस तरह नहीं समझ सकता है, जिस तरह वह अपनी परिचित भाषा से समझेगा। भारत जैसे देश में भाषा के स्तर पर राज्यों का विभाजन हुआ है। इसके बावजूद यहाँ की भाषाई संस्कृति ने पूरे भारत को एकता के सूत्र में बाँध रखा है। प्रत्येक प्राणी यहाँ किसी-न-किसी भाषा का इस्तेमाल कर अपनी माटी अपने देश से जुड़ा हुआ है। यही उसकी अस्मिता और अस्तित्व को भी इंगित करता है।

भाषा के इस महत्व को देखते हुए भाषा की रक्षा का दायित्व भी समझना अति आवश्यक बन जाता है, और इस दायित्व के निर्वाहक के रूप में सबसे पहला नाम जिसका आता है, वह है साहित्य का। साहित्य न केवल समाज के लिए न्याय प्रधान होता है बल्कि भाषा के लिए भी सचेतन होता है। साहित्य मानवता, लोक कल्याण आदि को ही अपनी साहित्यिक परिपाटी से नहीं जोड़ता बल्कि वह भाषा की भी गरिमा को लेकर आगे बढ़ता है। वर्तमान में हिंदी भाषा के जिस उत्तम रूप से हम परिचित होते हैं, वह साहित्य के द्वारा ही संभव हो पाया है। हालाँकि इसमें मीडिया की भागीदारी भी अहम है। किसी भी साहित्य की भाषा ही तय करती है कि साहित्य किस कोटि का है।

ध्यातव्य है कि विज्ञापन की भाषा तथा साहित्य की भाषा में काफी अंतर है। बावजूद इसके दोनों का लक्ष्य एक ही है- मानव हृदय को स्पर्श करना, उसके मन-मस्तिष्क में अपनी जगह बनाना। हालाँकि दोनों का प्रयोजन एक-दूसरे के विपरीत है। विज्ञापन जहाँ मानव को उपभोक्ता के रूप में देखता है, वहीं साहित्य मानव को इंसान के रूप में देखता है, प्रेम और संवेदना की प्रतिमूर्ति के रूप में देखता है। साहित्य समाज में मानवता, संवेदना और न्याय का सृजन करता है तो विज्ञापन इन सभी से भिन्न वस्तुओं के प्रति लालसा, इच्छा को मानव मन में जगाता है। साहित्य

संस्कृति का वाहक होता है, किंतु विज्ञापन सिर्फ उपभोक्तावादी तथा बाजारवादी संस्कृति को जन्म देता है। साहित्य और विज्ञापन की भाषा का लक्ष्य एक समान होता है तथा दोनों की भाषाओं में थोड़ी बहुत समानता भी होती है। उदाहरणस्वरूप – विज्ञापन साहित्य की तरह ही नित-नूतन शब्दों और अभिव्यक्ति शैलियों का निर्माण करता रहता है। अपनी भाषा को हृदयस्पर्शी बनाकर उसमें सजीवता लाता रहता है। प्रभावशाली एवं नाटकीय बनाता रहता है। विज्ञापन की भाषा का यही गुण उसे साहित्य की भाषा के समानांतर खड़ा करता है।

विज्ञापन मीडिया का अभिन्न अंग है। यह अपने रूप का विस्तार भाषा और शिल्प के स्तर पर नए-नए प्रयोगों के द्वारा करता है, जिससे उसकी भाषा एवं नाटकीयता का प्रभाव समाज पर पड़ता है। आज वैश्विकरण के दौर में विज्ञापन ने न केवल वस्तुओं या विचारों का प्रचार-प्रसार किया है बल्कि उसने लोगों की भावनाओं को भी प्रभावित किया है। विज्ञापन के द्वारा बाजारवाद का विस्तार तेजी से हुआ है। बाजारवाद अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुसार वस्तुओं को बेचने के लिए व्यक्ति की भावनाओं के साथ खेलता है और उसको भी धीरे-धीरे बाजार का हिस्सा बना लेता है। विज्ञापन ने अपनी भाषा के द्वारा लोगों के हृदय को छुआ है। और, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सबको प्रभावित किया है। विज्ञापन का भी एक निश्चित ढाँचा तय होता है कि वह लोगों को किस तरह प्रभावित कर वस्तुओं का विक्रय करेगा। कुछ कंपनियाँ अपने ब्रांड के निर्माण हेतु लोगों की स्मृति पटल पर विज्ञापन द्वारा प्रभाव जमाती हैं तो कुछ उत्पादों का तेजी से विक्रय करने हेतु ग्राहकों का भरोसा जीतती हैं तो कुछ उत्पादों को पहचान देने हेतु विज्ञापन का प्रयोग करती हैं। सभी विज्ञापनों का एक ही उद्देश्य होता है कि उत्पादों को बाजार में उतार कर अधिक-से-अधिक

विक्रय द्वारा लाभ अर्जित करना। विज्ञापन की भाषा इन्हीं उद्देश्यों को अंजाम तक पहुँचाती है।

कंपनियों द्वारा उत्पादित माल या अन्य व्यापार अपने लिए एक निश्चित दिशा तय करते हैं, जो विज्ञापन के द्वारा पूरा किया जाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि विज्ञापन के कुछ ढाँचें होते हैं, जिसके तहत कंपनियों का विज्ञापन भी तैयार होता है। यह विज्ञापन की संरचना ही तय करती है कि किस प्रकार की भाषा का उपयोग किया जाए। जैसे उपभोक्ता के अंदर विश्वास जगाने हेतु 'घड़ी सरफ' का विज्ञापन कुछ इस प्रकार है – 'पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें'। वहीं बिरला सीमेंट का विज्ञापन है– 'मजबूती और विश्वास का दूसरा नाम बिरला उत्तम सीमेंट' आदि। लोगों में विश्वास पैदा हो, इसलिए भाषा को ऐसे प्रस्तुत किया जाता है कि वह उत्पाद की गुणवता के प्रति आश्वस्त हो जाए।

ध्यान दिया जाए तो पहले वाले विज्ञापन में 'पहले इस्तेमाल' कथन भोक्ता को विश्वाास का पात्र बनाता है तो वहीं दूसरे वाले में भाव को इस तरह रखा गया है, जैसे उपभोक्ता को सब पता है कि यह विश्वास के लायक है। साहित्य इस तरह की तानाशाही नहीं रखता है। वह विश्वास दिलाने हेतु भाषा का इस्तेमाल नहीं करता बल्कि वह भाषा के उत्तम और मर्यादित रूप को शब्दों में उकेरता है एवं तथ्यों को प्रस्तुत करता है। वह पाठक को विश्वाास नहीं दिलाता, अपितु उसे पाठक पर छोड़ देता है।

'लाइफबॉय है जहाँ तंदुरुस्ती है वहाँ लाइफबॉय...'– लाइफबॉय एवं 'कुछ मीठा हो जाय'– डेरी मिल्क चॉकलेट इत्यादि कुछ ऐसे विज्ञापन हैं, जिसने लोगों के मस्तिष्क में घर बना लिया है। इससे बच्चे काफी प्रभावित होते हैं। उनकी जुबान पर ये लाइनें हमेशा चढ़ी रहती हैं। इसकी वजह से बच्चों के अंदर उस वस्तु के प्रति गहरी लालसा पैदा होती है, जिसके चलते बच्चे माता-पिता के सामने हठ कर बैठते हैं। और, मजबूरन माता-पिता को ना चाहते हुए भी बच्चों की जिद के आगे झुकना पड़ता है। विज्ञापन की भाषा ने शब्दों के अर्थ को नए तरीके से बदला है। जैसे–'दाग अच्छे होते हैं'। दाग से हम सब वाकिफ हैं। चाहे वह जीवन से जुड़ा हो या भौतिक रूप से, उसे खराब दृष्टि से ही देखा जाता है, किंतु यहाँ इसका अर्थ अच्छे के रूप में दिखाया गया है। दोनों में ही विरोधाभास की प्रवृति दिखाई देती है। वही 'ठंडा मतलब कोका-कोला' विज्ञापन में ठंडा कहते ही कोका-कोला की ओर इशारा होता है। इसी तरह 'कुछ मीठा हो जाय' में कुछ मीठा कहने से यह विज्ञापन चॉकलेट का बोध कराता है। यूँ कहें कि शब्दों से खेलना तथा भाषा को दूसरी ओर मोड़ना विज्ञापन की श्रेष्ठ कलाओं में से एक है। फिर भी यह साहित्य की भाषा को नहीं छू पाती है।

विज्ञापन की भाषा समाज पर गहरा असर डालती है। आज जितने भी विज्ञापन आ रहे हैं, वह देश की संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित कर रहे हैं। इतनी कि भाषा के साथ विज्ञापन के नाटकीय रूप को लोग अपने भीतर उत्पाद के साथ जोड़ कर देखते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई अभिनेता या अभिनेत्री किसी कपड़े को पहनकर उसका विज्ञापन करते हैं तो लोग भी उस कपड़े को पहनकर अपने को चंद समय के लिए उसी भाँति महसूस करने लगते हैं।

विज्ञापन ने एक उपभोक्तावादी संस्कृति का निर्माण किया है, जिसका उद्देश्य व्यापार से संबंधित होता है, जो लोगों को वस्तुओं का दास बनाता है। परंतु कुछ विज्ञापन ऐसे भी हैं, जिसने समाज को संस्कृति तथा एकता के भाव से जोड़ने का प्रयास किया है। ऐसा ही एक उदाहरण मेघालय के चेरापूंजी शहर का है, जहाँ हमेशा बारिश होती है। नेटफ्लिक्स द्वारा बहुत ही मार्मिक रूप से यह विज्ञापन प्रस्तुत किया गया है. वह कुछ इस प्रकार है–

'चेरापूंजी

यहाँ बारिश में भी बारिश होती है

सर्दी में भी बारिश होती है

गर्मी में भी बारिश होती है

और दिवाली में भी बारिश होती है

चेरापूंजी का दिवाली देखने लायक है, मुश्किल है, लेकिन फन (fun) भी है। (इसके बाद स्थानीय भाषा में गाना)...

बारिश बहुत ट्राई किया, लेकिन एक चीज छीन

नहीं पाए फेमली टाइम।(इसके बाद घर में नृत्य चलता है।)'

भले ही यह विज्ञापन व्यापारिक हो, परंतु यह नए तरीके से चीजों को प्रस्तुत करता है एवं एकता का सूत्रपात भी करता है। विज्ञापन ने जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया है, वह बिल्कुल सरल एवं दिलचस्प है। भाषा को स्थानीय रंग देने हेतु व्याकरण की अशुद्धियों का भी सायास प्रयोग किया गया है। इसे आंचलिकता के उपकरण के रूप में अपनाया गया है। तो वहीं दूसरी ओर 'फाइव स्टार' का विज्ञापन है, जिसमें भाषा ही नहीं उसकी नाटकीयता को भी प्रदर्शित किया गया है। विज्ञापन में एक लड़का चॉकलेट खा रहा होता है, तभी उसके सामने बैठी बूढ़ी औरत की छड़ी गिर जाती है–

'बेटा, मेरी छड़ी उठा दोगे ?

जी, माजी।(लड़का चॉकलेट खाने में मग्न रहता है एवं छड़ी नहीं उठाता। तभी वह बूढ़ी औरत उठकर छड़ी लेने जाती है और ऊपर से छत आकर वहीं गिरती है, जहाँ वह पहले बैठी हुई थी)

थैंक यू बेटा, अच्छा हुआ तूने कुछ नहीं किया
मोस्ट वेलकम माजी
कभी कुछ न करके भी देखो
इट फाइव स्टार, डू नथिंग।'

यहाँ ध्यान दें तो हम भाषा के हिंग्लिश रूप को विशेष रूप से पाते हैं, जिसमें अंग्रेजी और हिंदी का मिश्रण है। भाषा सरल होने के बावजूद इसका पूरा ध्यान एक बूढ़ी औरत की मदद न करने और चॉकलेट पर जाता है। और उस पर विशेष जोर दिया जाता है – 'कुछ न करके भी देखो, इट फाइव स्टार, डू नथिंग।'

भले ही यहाँ किसी व्यक्ति के ऊपर आपदा आने वाली होती है, लेकिन यह आपदा इस तरह की बन जाती है कि वह लड़का पहले से जानता हो और जान बूझकर मदद नहीं करता है। न ही इसमें भाषा की गरिमा का ध्यान रखा और न ही सांस्कृतिक मर्यादा का। साहित्य इसका विशेष ध्यान रखता है। साहित्य में भाषा और नाटकीयता एक अच्छे उद्देश्य की सृष्टि के लिए गढ़े जाते हैं।

विज्ञापन की भाषा साहित्य से बिल्कुल भिन्न है, किंतु 20वीं सदी में विज्ञापनों के कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं, जिनकी भाषा साहित्यिक भाषा के समान ही दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए – 'ऐसी हालत में ताश के खेल में 'ग्रांड कुप' सबसे अजीब खेल है। इस खेल में बड़ी चतुराई और चालाकी से रंग बोलने वाले के 'ट्रंप' ठीक अपने समान ही काम करने पड़ते हैं। ऐसा करने में अपनी चतुर बुद्धि, धैर्य और मन की एकाग्रता हालत में सुमधुर गरम चाय का प्याला अतुलनीय है।'[4] भूमंडलीकरण की स्थिति में विज्ञापनों में ऐसी भाषा का प्रयोग बहुत ही कम देखने को मिलता है। आज जिस भाषा को हम देखते हैं, उसमें अंग्रेजीपन तथा भाषा के अमर्यादित रूप को ही ज्यादातर देख पाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि साहित्यिक भाषा का रूप बिल्कुल क्लिष्ट शब्दों या तत्सम शब्दों द्वारा गढ़ा हुआ रूप होता है। 'यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि साहित्यिक भाषा का अर्थ तत्सम बहुल भाषा नहीं है। साहित्यिक भाषा प्रयोग से आशय शिष्ट संभ्रांत, स्थायी, परिष्कृत और भाषा के मान्य मानक के प्रचलित रूप से लिया जाना चाहिए।'[5]

विज्ञापन की भाषा ने संस्कृति का भी कुछ इस तरह से दोहन किया है, जो भारतीय प्रेम दर्शन के क्षरण को दर्शाती है। आज संगीत का भी सीधे तौर पर विज्ञापन में प्रयोग किया जाने लगा है। उदाहरण के तौर पर 'निरोध' के विज्ञापन को देख सकते हैं–

'मन क्यों बहका रे बहका आधी रात को
बेला महका रे महका आधी रात को
किसने नींदे उड़ाई आधी रात को
जिसने पलके चुराई आधी रात को'

विज्ञापन में इस गाने को पूरी अश्लीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है, जबकि 80 के दशक में अभिनेत्री रेखा पर इसे पूरी शालीनता के साथ फिल्माया गया था। इसमें उस समय की संस्कृति को भी देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति का प्रेम दर्शन एक अलग ही विशेषता के लिए विश्व में ख्यात है। विज्ञापन में इस गाने की तीसरी पंक्ति 'किसने बंशी बजाई आधी रात को' की जगह अलग

पंक्ति को जोड़ दिया गया है। यह पंक्ति सीधे तौर पर कृष्ण प्रेम की ओर ले जाती है, जिस प्रेम की पवित्रता और श्रेष्ठता को सूरदास, जायसी, मीरा जैसे कई साहित्यकारों ने उच्च कोटि का माना है। हालाँकि एक पंक्ति को बदल देने के बावजूद इस गाने का मूल भाव वही बना रहता है, लेकिन विज्ञापन में गीत को कामुक आवाज तथा शैली में प्रस्तुत कर अश्लील बना दिया गया है। एक तरफ भाषा का ऐसा रूप है, जो भारतीय संस्कृति की सादगी को प्रदर्शित करता है तो दूसरी तरफ भाषा की प्रस्तुति का वह रूप है, जो भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को आघात पहुँचाता है।

यदि हम विज्ञापन की भाषा और साहित्य की भाषा के बाहरी आवरण को देखें तो दोनों में सृजनात्मकता का गुण है, लेकिन दोनों ही एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। भले ही दोनों की भाषा को लेकर विरोधाभास उत्पन्न होता हो, लेकिन भाषा के उत्तरदायित्व के प्रति यह जटिल हो जाता है कि विज्ञापन की भाषा साहित्यिक भाषा के समान खड़ी दिखाई देती है। भाषा का एक उत्तरदायित्व समाज के प्रति होता है, जिसे साहित्य पूरा करता है। जिस आकर्षक, चटकीले भाषा के साथ विज्ञापन की भाषा होती है, वह केवल चौंकाने के लिए ही होती है। बाजारवाद के कारण आज विज्ञापन की भाषा में मूल्यहीन, निरर्थक शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से हो रहा है, ठीक आज के फिल्मी गीतों की तरह। विज्ञापन का कोई भी भाषायी दायित्व न समाज के प्रति है और न ही भाषा के प्रति। रेखा सेठी लिखती हैं कि - 'साहित्य और संस्कृति के अध्येयताओं की दृष्टि से संचार क्रांति की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि वह मानवीय अनुभव को बौना बना देती है। विज्ञापन जिस बाजार का एजेंट है उस बाजार में जीवन-मूल्यों का कोई महत्व नहीं।'[6] वास्तव में यही विज्ञापन का मूल बिंदु सिद्ध होता है। इसके बावजूद यह भी नकारा नहीं जा सकता है कि विज्ञापन ने भाषायी स्तर पर अपनी कला का प्रदर्शन भी किया है।

प्रो. मिहिर रंजन पात्र विज्ञापन की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि - 'विज्ञापन का विकास मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृविज्ञान, अर्थनीति, कला, साहित्य आदि विभिन्न विषयों का समाहित रूप है।'[7] कुल मिलाकर आज विज्ञापन ने जीवन के मूल्यों को सिर्फ लाभ की नीति की ओर मोड़ दिया है, जबकि मानव से उत्पादक की अहमियत निर्धारित होती है, उत्पादक से मानव की नहीं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि लेखन कला के सबसे प्रभावी होने का सबसे अधिक प्रयोग कहीं देखने को मिलता है तो वह विज्ञापन एवं साहित्य में ही। यह किसी भी भाषा के चौखटे को बनी-बनाई परिपाटी को लाँघ कर ही संभव है। वास्तव में भाषा अत्यंत संवेदनशील होती है, इसीलिए विज्ञापन हो या साहित्य, भाषा अत्यंत विवेकपूर्ण तरीके से तथा नैतिकता को ध्यान में रखते हुए एक अच्छे उद्देश्य के लिए प्रयुक्त की जानी चाहिए। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. विज्ञापन डॉट कॉम, डॉ. रेखा सेठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, पृ.19.
2. वही, पृ.15.
3. पत्रकारिता : परिवेश और प्रवृत्तियाँ, डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 2014, पृ. 205.
4. सारंग- (स.) आर. एस. शर्मा, अक्टूबर 1954, वर्ष 19, अंक 21, पृ. 5.
5. मीडिया और साहित्य : अंत:संबंध, (सं.) रतनकुमार पांडेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. 90
6. विज्ञापन डॉट कॉम, डॉ. रेखा सेठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, पृ. 216.
7. मीडिया लेखन, रूपचंद गौतम, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 93.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

धरोहर

मणिपुरी लोककथा : समाज का मूलभूत आधार

डॉ. वाइखोम चींखैङानबा

टी.जी.टी (हिंदी)
राष्ट्रीय खेल अकादमी
खुमन लंपाक, इंफाल,
मणिपुर - 795001
9615155725
waikhom.c@gmail.com

परिचय :

मणिपुरी में लोक कथा को फुङ्गावारी की संज्ञा देते हैं। फुङ्गावारी दो शब्दों के मेल से बना है। फुङ्गा का अर्थ है अलाव तापने का स्थान और वारी का अर्थ है कथा। प्राचीन काल में दादा-दादी या बुजुर्ग बच्चों को अलाव तापते समय कथा सुनाया करते थे । मौखिक रूप में चली आ रही इस तरह की कथा को मणिपुर में फुङ्गावारी कहते हैं। मणिपुरी लोक कथाएँ बहुत लंबी नहीं होती हैं, फिर भी गागर में सागर की भाँति महती भूमिका निभाती हैं। मनोरंजन के साथ-साथ लोक कथाएँ बच्चों के मनोबल को उजागर करने में अहम भूमिका निभाती हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन मणिपुरी समाज में जब शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने की औपचारिक पद्धति नहीं थी, तब लोक कथाओं की मदद से बच्चों को नैतिकता, जीवन मूल्य, मानव मूल्य इत्यादि से अवगत कराते थे, लेकिन आज लोक कथा कहने और सुनने की प्रथा खत्म हो गई है, फिर भी इसकी महत्वपूर्ण विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कई लोग लोक कथाओं का संकलन करके पुस्तक के रूप में सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, यह कथन केवल शिष्ट साहित्य के लिए नहीं, बल्कि लोक साहित्य के लिए भी सिद्ध होता है। अगर हम किसी समाज विशेष की लोक कथाओं को ध्यान से देखें तो हम उस समाज की रीति-रिवाज, खानपान, सोच-विचार और रहन-सहन आदि बातों से परिचित हो सकते हैं। इस संदर्भ में देवराज लिखते हैं - ''लोक कथाओं ने समाज-विशेष की सांस्कृतिक परंपरओं और कालक्रम में निर्मित जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखने तथा इस थाती को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अक्षुण्ण रूप में पहुँचाने का महान कार्य भी किया । जिन समाजों का सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास परंपरागत इतिहास ग्रंथों में नहीं है, उनका इतिहास जानने के लिए लोक कथाओं का माध्यम अपनाने की आवश्यकता है।''[1] कहना यह है कि लोक कथाओं में काल-विशेष और समाज-विशेष के छोटे-छोटे, लेकिन विशिष्ट तथ्य देखने को मिलते हैं।

समाज के मूलभूत आधार के रूप में मणिपुरी लोक कथाओं का मूल्यांकन एवं प्रस्तुतिकरण :

मणिपुर में अनेक जाति और जनजातियाँ निवास करती हैं। यहाँ की प्रमुख जाति

मैतै या मीतै है। कबुई, ताङखुल, माओ, पाइते, मरिङ्, अनाल, आइमोल, मार, थादौ, कोम, चीरू, थाङ्गाल आदि मणिपुर की जनजातियाँ हैं। कई लोक कथाओं में चीङमी (पहाड़ी) और तम्मी (मैदानी) को एक ही माँ की संतानें बताई जाती हैं। पहाड़ी बड़ा भाई है और मैदानी छोटा भाई। बड़े भाई में ताकत ज्यादा थी, इसलिए पहाड़ों में चला गया और छोटे भाई में ताकत कम थी, इसलिए मैदान में ही रहने लगा। आज भी मेरा हौ चोङ्बा नामक एक त्योहार मनाया जाता है, जिसमें पहाड़ी और मैदानी के बीच के संबंध को याद करते हैं। चीङ्मी-तम्मी एक हैं, एक ही माँ की संतानें हैं, इस भावना को उजागर करने का प्रयास करता है। इस दिन के शाम को मैतै जाति के घरों के आँगन में एक बाँस में लालटेन लटकाकर खड़ा किया जाता है, ताकि पहाड़ से उस रोशनी को बड़ा भाई देख सके और वह महसूस करे कि उसका छोटा भाई सही सलामत है। इस त्योहार की अंदरूनी भावना बहुत मार्मिक है और एकता को प्रोत्साहन देने वाला त्योहार है।

अविदित नहीं है कि लोक कथाओं में अक्सर काल्पनिक तत्व पाए जाते हैं। सही-गलत, तर्क-वितर्क से लोक कथा एकदम स्वतंत्र है। सदियों से लोक कथाएँ चली आ रही हैं और इसके भिन्न-भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। स्थान-विशेष और कहने वाले अपनी मर्जी से लोक कथाओं को अपनी शैली में सुनाता हैं, लेकिन इसमें निहित मूल तत्व समान होता है। भले ही लोक कथा में अवास्तविक प्रसंग देखने को मिले, इसको सुनाने वाले अपनी क्षमतानुसार श्रोताओं को प्रसंगवश रुलाते हैं, हँसाते हैं, दुखी करते हैं और गुस्सा दिलाते हैं। यह लोक कथा का गुण है। इसके संदर्भ में बी. जयंतकुमार शर्मा कहते हैं- 'लोक कथा मन से बनाई गई कथा है, इसमें सही-गलत ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यह तो एक अलग तरह की कला है। संगीत, नाटक, नृत्य जैसी प्रभावशाली कलाओं से यह कम नहीं है। इसमें भी मन को लुभाने की शक्ति विद्यमान है। इस वजह से सदियों से तपता, शंद्रेम्बी-चाइश्रा, बूढ़ा-बूढ़ी द्वारा पान (एक प्रकार की सब्जी) उगाना, चालाक लोमड़ी, कैबु कैओइबा जैसी लोक कथाएँ आज भी प्रचलित हैं।' [2] इसका तात्पर्य यह है कि लोक कथाओं के विशिष्ट गुणों के कारण समाज में आज भी लोक कथाएँ प्रचलित हैं, लोग इसे बहुत पसंद करते हैं ।

मणिपुर में अनेक प्रकार की लोक कथाएँ प्रचलित हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए लोक कथा विशेषज्ञों ने इसे छह प्रकारों में विभाजित किया है :-

क. पशु पक्षियों की लोक कथा।
ख. मंत्र-तंत्र की लोक कथा।
ग. आमोद-प्रमोद की लोक कथा।
घ. झूठ-मक्कारी की लोक कथा।
ङ ज्ञान संबंधी लोक कथा और
च. संचयी लोक कथा (क्यूमूलेटिव)।

इस तरह हम देख सकते हैं कि इन सभी प्रकार की लोक कथाओं में कहीं-न-कहीं मणिपुरी समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक परिदृश्य विद्यमान रहता है।

मणिपुर में अनेक आमोद-प्रमोद की लोक कथाएँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए तपता, मूर्ख दामाद, एक नाव में तीन दोस्त, बूढ़ा-बूढ़ी द्वारा पान उगाना, बिल्ल्ला और पेबेत (एक पक्षी की प्रजाति) इत्यादि लोक कथाओं का उल्लेख किया जा सकता है। ये लोक कथाएँ मनोरंजन के लिए सुनाई जाती हैं। इससे हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि मणिपुरी समाज के लोग आमोद-प्रमोद और मनोरंजन को पसंद करते हैं। आज मणिपुर में अनेक प्रकार के त्योहार मनाए जाते हैं।

मणिपुरी समाज में सामूहिक एकता बहुत मायने रखती है। मोहल्ले के किसी भी घर में आपातकाल आने पर सब उस घर में आकर मदद करते हैं। उसके दुख में शामिल होते हैं। इस तरह सामूहिक कार्यों में हर किसी को भाग लेना अनिवार्य होता है। इस प्रसंग में सहेली ढिबरी, नोङ्गौबी जैसी लोक कथाओं को देख सकते हैं। सहेली ढिबरी लोक कथा में एक बुढ़िया रात भर चरखा काटती रहती है, उसके घर में एक चोर घुसकर ढिबरी के पीछे छिप जाता है। बुढ़िया डर जाती है और ढिबरी को सहेली के रूप में आवाज देती हुई कथा सुनाने लगती है। कथा क्रम में वह जोर से चिल्लाई- मोहल्ले वालो, चोर... चोर... तब मोहल्ले के सभी लोग आ जाते हैं और चोर पकड़ा जाता है। इससे

हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन मणिपुरी समाज में किसी के भी घर में संकट आने पर लोग सामूहिक रूप से मदद करते थे। आज भी मणिपुर में बिजली के खंभे में पत्थर से घंटी बजाने का प्रचलन है। जब भी लोग इसकी आवाज सुनते हैं तो समझ जाते हैं कि मोहल्ले में कुछ हुआ है, और लोग तुरंत अपने घरों से लिकलते हैं। नोङ्गौबी भी इस तरह की ही लोक कथा है, जो सामूहिकता की भावना और एकता पर बल देती है। इस लोक कथा में भगवान सहित मनुष्य, पशु-पक्षी सब मिलकर तालाब की खुदाई करते हैं, लेकिन नोङ्गौबी (एक पक्षी की प्रजाति) नहीं आई। शेर, बाघ, घोड़ा, हाथी, बैल से लेकर चूहा, कबूतर, तोता सब आ गए। नोङ्गौबी को सबने बार-बार आवाज दी, मगर वह कहती रही – बच्चे रो रहे हैं, बच्चे को खाना खिला रही हूँ, मैं व्यस्त हूँ। इस वजह से भगवान ने नोङ्गौबी को शाप दिया कि यदि वह नदी और तालाब से जल पीती है तो उसके पीछे का भाग भस्म हो जाए। आज यह विश्वास है कि नोङ्गौबी नदी और तालाब से पानी कभी नहीं पीती है। इस लोक कथा की मूल बात यह है कि हमें सामूहिक कार्यों में अनिवार्य रूप से भाग लेना चाहिए।

मणिपुरी लोक कथाओं में सौतेली माँ का कष्ट हर बार बेटी (पहली पत्नी की) को ही सहना पड़ता है, बेटे को नहीं। लोक कथाओं के लिए तो यह रूढ़ी ही बन गई है कि सौतेली माँ हो तो बेटी को ही कष्ट देगी, उससे ढेर सारे काम करवाएगी। इस संदर्भ में शंद्रेम्बी-चाइश्रा और लाङ्मैदोन पक्षी उल्लेखनीय हैं। शंद्रेम्बी-चाइश्रा लोक कथा में शंद्रेम्बी अपनी सौतेली बहन चाइश्रा से बहुत प्यार करती है, लेकिन उसकी माँ उसे बहुत कष्ट देती है। एक दिन राजा शंद्रेम्बी को देख लेता है, तब से राजा को उससे प्यार हो जाता है। इसके बाद दोनों की शादी हो जाती है। शादी होकर चली जाने के बाद भी चाइश्रा और उसकी माँ शंद्रेम्बी को कष्ट देने की ही सोचती रहती हैं। एक दिन शंद्रेम्बी को मायके में बुलाकर गरम पानी उछालकर मार देती है, लेकिन उसकी आत्मा कबूतर बनके उड़ जाती है। इधर चाइश्रा शंद्रेम्बी के वस्त्र और गहने पहनके राजा के पास शंद्रेम्बी बनकर चली जाती है। एक दिन घास काटने वाले आदमी से, जो राजा का सेवक भी है, कबूतर कहती है-

''हा निङ्थौ तूकाओबा
इचा निङ्थौ शिगनी
फीगे ईयोङ्तत्कनी
हा पाङल शजिकलोई
नबुडे निङ्थौदा तम्जरु
नङ्ना अदुम तम्द्रबा
शगोल शमु शिहनगे
कुक्कु कु कु खाङ्मैतत्।''[3]

(भावार्थ – राजा तुम अपनी पत्नी को भूल गए हो। हमारा पुत्र संकट में है। मैंने जो कपड़े बुनने का काम शुरू किया था, अब उसका धागा टूटेग। हाँ, पाङल घास काटने वाले, तुम इस संदेश को राजा तक पहुँचाओ। अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो हाथी-घोड़ा मरवा दूँगी।)

राजा तक इस संदेश को पहुँचाने के बाद राजा खुद उस जंगल में आकर कबूतर से कहता है : –

'चेक्ला चादी नुङ्शिबी
लम्खुनु ओ चेक्नुङ्शि
इसानौगी थवायना ओनबा चेक्
चेक्ला नङ्ना लाक्लबदी
नसानौ ऐगी खुबाम्दा
चेक्ला नङ्बु तोङ्लोराव
से-से नबुक् थन्ना चारोलाव् ।'[4]

(भावार्थ – नादान प्यारी पक्षी। कबूतर पक्षी प्यारी। अगर तुम मेरी रानी की आत्मा हो तो आओ, मेरी हथेली में बैठकर ये दाने खाओ।)

यह ध्यान देने योग्य है कि इस लोक कथा के अनेक प्रसंगों में काव्यात्मक ढंग से गेय पद्धति में अनेक बातें कही गई हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मणिपुरी समाज में सदियों से काव्य का प्रचलन था। लाङ्मैदोन पक्षी लोक कथा भी एक ऐसी लोक कथा है, जिसमें सौतेली माँ के अत्याचार से दम तोड़ कर नोङ्दोन्नु नामक लड़की लाङ्मैदोन पक्षियों के झुंड में शामिल होकर चली जाती है। यह अत्यंत मार्मिक लोक कथा है। जब पिता को पता चलता है और वह उसे वापस बुलाता है तब नोङ्दोन्नु

कहती है – 'पिताजी, क्षमा कीजिए। मैं यहाँ आपके वापस आने का इंतजार कर रही थी। आपने जो कुछ मेरे लिए लाए हैं वो सब माँ को दे दीजिए। अब मुझे सुंदर कपड़े और आभूषण की आवश्यकता नहीं है। अब मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं यहाँ से उड़ जाऊँ।' [5] यहाँ पर पक्षी बनकर खुले आसमान में उड़ जाना इसका संकेत है कि हर कोई असहनीय दुखों को पार करके एक-न-एक दिन स्वतंत्र होने की कामना करता है।

प्रत्येक समाज के खान-पान, काम-धंधा, वेश-भूषा अलग होते हैं। मणिपुरी समाज के भी विशिष्ट खान-पान, वेश-भूषा होते हैं। यहाँ प्रचलित अनेक लोक कथाओं में इसकी छाप देखने को मिलती है। बूढ़ा-बूढ़ी द्वारा पान लगाना, धागे का गोला खाने वाली, सहेली ढिबरी, शंद्रेम्बी-चाइश्रा जैसी लोक कथाओं से मणिपुर में प्रचलित खान-पान, वेश-भूषा, काम-धंधे के बारे में पता लगाया जा सकता है। शंद्रेम्बी-चाइश्रा लोक कथा में शंद्रेम्बी अपने मायके आते समय गहने, फनेक मपान नाइबा (कमर के नीचे का एक प्रकार का वस्त्र), इन्नफि (कमर के ऊपर का एक प्रकार का वस्त्र) पहनकर आती है। आज भी मणिपुरी महिलाएँ ये पहनती हैं। बूढ़ा-बूढ़ी द्वारा पान उगाना, धागे का गोला खाने वाली तथा सहेली ढिबरी लोक कथाओं से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन मणिपुरी समाज में चरखा काटने और ऊन बुनने का प्रचलन था। यह भी कह सकते हैं कि श्रम को बहुत प्रधानता दी जाती थी। इसलिए तो सहेली ढिबरी लोक कथा में आधी रात तक बुढ़िया चरखा काटती हुई दिखाई गई है। इतना ही नहीं, बूढ़ा-बूढ़ी द्वारा पान (एक प्रकार की सब्जी) उगाना लोक कथा में वृद्ध होने के बाद भी बूढ़ा-बूढ़ी पान उगा कर उससे गुजारा करते हैं। इस लोक कथा में हेन्ताक (खाद्य पदार्थ), खरूङ् (बड़ा घड़ा) आदि का जिक्र भी किया गया है। इससे स्पष्ट है कि मणिपुरी समाज में इस तरह की चीजों का प्रयोग होता था। हेन्ताक का उपयोग करके बंदरों द्वारा खिलाए गए विष वाले पान की जलन का उपचार करना इसका प्रमाण है कि मणिपुरी समाज के लोगों को औषधि के रूप में सेवन करने लायक पदर्थों का ज्ञान था। बंदरों को सबक सिखाने के लिए बूढ़ा मरने का नाटक करता है, तब बुढ़िया इस तरह रोती है – पान खाके मर गए कुम, कद्दू खाके वापस आओ... इससे यह पता चलता है कि मणिपुर में कद्दू को बहुत उपयोगी सब्जी के रूप में खाते हैं। आज भी किसी सामूहिक भोज में उबाले हुए कद्दू का एक टुकड़ा अवश्य परोसा जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक कथाओं से समाज में प्रचलित खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज इत्यादि की जानकारी मिल सकती है।

कहते हैं प्राचीन काल में लोग बहुत सीधे होते थे, उनके मन बहुत साफ थे। हो सकता है, ज्यादातर लोगों के मन साफ हों, लेकिन बुराई तो हर समय विद्यमान रहती है। चोरी, डकैती, मक्कारी आदि का वर्णन लोक कथाओं में देखा जा सकता है। बुद्धिमान चोर, सहेली ढिबरी, न्याय करने वाली कैची, बुद्धिमान और मूर्ख चोर इत्यादि लोक कथाओं में चोरी के अनेक प्रसंग देखने को मिलते हैं। भले ही यहाँ पर बताए गए चोरी करने के तरीके में सीधेपन तथा हँसी-मजाक जैसी हरकत मिलती हों, बात तो चोरी की ही है। ये लोक कथाएँ हमें सीख देती हैं कि समाज में ऐसे कई लोग हैं, जो मेहनत करना नहीं चाहते हैं। बुद्धिमान चोर लोक कथा के जरिए हम यह कह सकते हैं कि मानव समाज में ईमानदार व्यक्ति ढूँढ़ना बहुत मुश्किल है। इस लोक कथा में चोर को फाँसी की सजा सुनाई जाती है, लेकिन चोर इतना बुद्धिमान है कि वह राजा से कहता है– 'आपके पास जितना सोना है सब जमीन में गाड़कर ढक दीजिए, उसी से सोने का पौधा उगेगा, लेकिन उसे उगाने वाला ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जिसने जीवन में किसी भी चीज की चोरी नहीं की हो।' [6] राजा ने ऐसा व्यक्ति ढूँढ़ा, लेकिन नहीं मिला। राजा स्वयं भी कहने लगा कि वह राजकोष से सोना चुराता है। इस वजह से चोर को माफ कर देने का फैसला लिया जाता है। भले ही यह लोक कथा काल्पनिक हो, इसमें छुपी मूल बातें आज के संदर्भ में बहुत प्रासंगिक हैं। यह एक बड़े विजन की लोक कथा है। आज हमारे देश में छोटे-से-छोटे कर्मचारी से लेकर बड़े अधिकारी तक, आम आदमी से लेकर नेता तक, सब चोर होते हैं, भ्रष्टाचार में संलिप्त हैं। इस बात को यह लोक कथा भलीभाँति दिखाती है।

दुनिया में राक्षस और राक्षसी से संबंधित अनेक लोक कथाएँ प्रचलित हैं। तिङ्कम-लाइकम, राक्षसी की बेटी, बदला, दो दोस्त आदि राक्षस और राक्षसी से संबंधित

मणिपुरी लोक कथाएँ हैं। इस तरह की लोक कथाओं में राक्षस या राक्षसी की जान किसी तोते में या किसी वस्तु में होती है। इतना ही नहीं, शरीर का हर भाग अलग-अलग वस्तुओं के सुरक्षित रहने में कायम रहने की लोक कथा हमने सुनी है। जैसे, घड़े और धनुष-बाण को नष्ट करने पर राक्षस के सिर और कमर भस्म होना। इसमें तिलिस्म और ऐय्यारी अक्सर देखने को मिलते हैं। भले ही ये लोक कथाएँ मनोरंजन के लिए, बच्चों को सुनाने के लिए हों, लेकिन यह विचारणीय है कि प्राचीन समाज में वाकई ऐसे इंसान रहे हों, जो राक्षस की तरह खूँखार होते थे और आम मनुष्य को बहुत कष्ट देते थे। इस प्रसंग में बी. जयंतकुमार शर्मा कहते हैं- 'मणिपुर में अनेक राक्षस और राक्षसी की लोक कथाएँ प्रचलित हैं। राक्षसों द्वारा गाँव को नष्ट करना, सबको मार डालना और गाँव ही लुप्त हो जाना अक्सर सुना करते हैं। इसमें हम विचार कर सकते हैं कि असल में राक्षस रहे हों या बाहरी आक्रमणों के कारण गाँव अस्त-व्यस्त होते रहे हों। यह भी हो सकता है कि जलवायु के खराब होने से या महामारी से गाँव के सभी लोग मर गए हों।' [7]

मणिपुर में प्रचलित गुड़िया से संबंधित लोक कथाओं में गुड़िया, गुड़िया का वरदान उल्लेखनीय हैं। इस तरह की लोक कथाओं में बचपन से गुड़िया को सहेली की तरह प्यार करने वाली लड़की की शादी करने वाली होती है। लड़की के सपने में गुड़िया रोती हुई आती है और वह उसे केले के पेड़ के पास दफनाने के लिए कहती है। दूसरी लोक कथाओं में गुड़िया लड़की को वरदान देती है कि वह पशु पक्षियों की भाषा समझ सके। इस तरह बड़े दुख के साथ लड़की गुड़िया को छोड़ कर चली जाती है। यह जीवन की सच्चाई है कि एक-न-एक दिन लड़की को शादी होने के बाद माँ-बाप, भाई-बहन, रिश्ते-नाते सबको छोड़ कर जाना पड़ता है। जब जुदाई का क्षण आता है, तब वह माँ-बाप, भाई-बहन के अलावा घर के सभी निर्जीव वस्तु से भी प्रेम होने लगता है। इस भावना को इन लोक कथाओं में गुड़िया का सहारा लेकर व्यक्त किया गया है। यहाँ पर गुड़िया एक प्रतीक है । वह निर्जीव होकर भी बात करती है, लड़की के साथ गहरा संबंध स्थापित करती है। गुड़िया नामक लोक कथा में लड़की के सपने में गुड़िया कहती है- 'तम्फा, तुम्हारी शादी होने वाली है, लेकिन मैं तो साथ नहीं आ सकती। तुमने मुझे इतना प्यार दिया, मैं बहुत खुश हूँ। मैं तुझे पशु-पक्षियों की भाषा समझ पाने की शक्ति वरदानस्वरूप दे रही हूँ। जाने से पहले तुम मुझे केले के पेड़ के पास दफना देना।' [8] आज भी मणिपुर में जो लड़कियाँ गुड़िया से बहुत लगाव रखती हैं, वह इन लोक कथाओं में कही गई बातों में विश्वास करती हैं। भले ही लोक कथाओं में बताई गई बातें अवैज्ञानिक हों, उसे अंधविश्वास कहें, मगर जो छाप दिल में लग जाती है, उसे बदलना अक्सर मुश्किल होता है।

हमारे पास ज्ञान हो, कौशल हो तो हम जीवन की गति को पकड़ते हुए सफलता को प्राप्त कर सकते हैं। जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव का सामना आसानी से कर सकते हैं। आज हम जीवन को सही मायने में जीने के लिए औपचारिक रूप से ज्ञान अर्जन कर रहे हैं। ज्ञान-अर्जन की औपचारिक पद्धति नहीं होने से पहले लोग अनौपचारिक रूप से भी ज्ञान हासिल करते थे। प्राचीन काल में बच्चों को लोक कथा सुनाकर भी उनका मनोबल विकसित करते थे। तीन शिक्षाएँ, गाय चराने वाला बालक, बुद्धिमान चोर, चंद्रकङ्नान्, सहेली ढिबरी, राजा और मंत्री के पुत्र आदि ऐसी मणिपुरी लोक कथाएँ हैं, जो बच्चों को शिक्षा देती हैं। पंचतत्र में भी पहले कथा सुनाई जाती है, अंत में मूल बात को शिक्षा के रूप में बताते हैं।

इसी तरह इन लोक कथाओं को बच्चे मनोरम होकर सुनने के बाद मूल तत्व को ग्रहण करते हैं। यह जीवन में बहुत काम आता है। तीन शिक्षाएँ लोक कथा में गुरु अपने शिष्य से कहता है - 'शिष्य, पहली शिक्षा यह है कि घी बहुत सारवान वस्तु है। दूसरी शिक्षा यह है कि राजा को रात में नहीं सोना चाहिए और तीसरी शिक्षा यह है कि स्त्री उच्छृंखल हो जाए तो उसे दंड देना चाहिए।'[9] इस लोक कथा के अंत में भी ये शिक्षाएँ उपयोगी सिद्ध होती हैं। इतना ही नहीं, अनेक लोक कथाओं में झूठ बोलने और मक्कारी का अंत क्या होता है, यह दिखाया गया है। गाय चराने वाला बालक लोक कथा में बालक बाघ आने का बार-बार नाटक करता है, और सबका मजाक उड़ाता है। लेकिन जब असल में बाघ आता है तो उसकी पुकार को ढोंग समझकर कोई उसे बचाने नहीं आता है। इस तरह के साधारण, मगर महत्वपूर्ण प्रसंगों से बच्चे को सीख मिलती है कि झूठ बोलने का नतीजा क्या होता है। इस लोक कथा को आधार बनाकर आज मणिपुर में जब कोई झूठ बोलता है तो कहते हैं - 'गाय चराने वाला बालक, बाघ तुम्हें खा जाएगा।'

उपसंहार :

सदियों से मणिपुरी लोक कथाएँ चली आ रही हैं। ये कब से चली आ रही हैं, इसकी कोई निश्चित समय सीमा हम नहीं बता सकते। फिर भी यह कहा जा सकता है कि मणिपुरी लोक कथा और मणिपुरी समाज का अटूट संबंध है। सामाजिक परिदृश्य को प्रस्तुत करने में लोक कथाएँ महती भूमिका निभाती हैं। ये लोक कथाएँ मणिपुरी समाज की अमूल्य संपत्ति हैं, समाज का मूलभूत आधार हैं। मणिपुरी समाज की आशाएँ-आकांक्षाएँ, सुख-दुख इन लोक कथाओं में निहित हैं। मणिपुर की सामासिक संस्कृति की झलक भी इन लोक कथाओं में दोखने को मिलती है। दूसरे के सुख-दुख में यह समाज हमेशा सहभागी रहता है, ऐसा इन लोक कथाओं से पता चलता है। मणिपुरी लोक कथाओं के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ एक तरफ ये लोक कथाएँ हमारे हृदय का विस्तार करती हैं, वहीं दूसरी ओर अनेक स्थल पर हमें बौद्धिक भी बनाती हैं। ❑

संदर्भ :

1. देवराज, मणिपुरी लोककथा संसार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्कण- 1999 ई. पृष्ठ (भूमिका से)
2. बी. जयंतकुमार शर्मा (सं), फुङ्गावारी शिङ्बुल, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण- 2013 ई. पृष्ठ (भूमिका से)
3. वही, पृष्ठ 39
4. वही, पृष्ठ 40
5. प्रो. अरुण चतुर्वेदी (प्रधान सं), प्रो. हजारीमयुम सुवदनी देवी (सं), मणिपुरी लोक साहित्य, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण- 2012 ई. पृष्ठ 63
6. प्रो. अरुण चतुर्वेदी (प्रधान सं), प्रो. हजारीमयुम सुवदनी देवी (सं), मणिपुरी लोक साहित्य, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण- 2012 ई. पृष्ठ 4
7. बी. जयंतकुमार शर्मा (सं), फुङ्गावारी शिङ्बुल, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण- 2013 ई. पृष्ठ (भूमिका से)
8. क्षेत्रिमयुम सुवदनी (सं), भारत की फुङ्गावारी खरा, लिन्थोइङम्बी पब्लिकेशन, इंफाल, प्रथम संस्करण- 2006 ई. पृष्ठ 52
9. देवराज, मणिपुरी लोककथा संसार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्कण-1999 ई. पृष्ठ 19

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

मणिपुरी भाषा का योगदान
(साहित्य के संदर्भ में)

डॉ. कोंखाम फूल्लोना देवी

एसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.एम. कॉलेज ऑफ आर्ट्स, इंफाल
डी.एम.यू. इंफाल, मणिपुर
8837314614
kphullona123@gmail.com

सारांश :

प्राचीन काल से मणिपुर में मुख्य रूप से सात राजवंश रहते हैं, उनमें-चेङ्लै, निङथौजा, लुवाङ, खुमन, मोइरङ, खाङानबा, अङोम आदि हैं । वे अपने-अपने वंशों के राज्य किया करते थे। इन वंशों में निङथौजा वंश बहुत शक्तिशाली था। सब राजवंश इसी राजवंश के अधिकार में रहते थे। बाद में सब राजवंश निङथौजा शलाई में आ मिले। बाद में ये राजवंशों को मीतै जाति के नाम से जाने जाते हैं। मणिपुरी भाषा या मीतैलोन उनकी की संपर्क भाषा है।

मणिपुरी भाषा का प्रचीन एवं मध्यकालीन साहित्य प्राचीन लिपि 'मीतै मयेक' में ही लिखी जाती थी। रा जा गरीबनिवाज (1709-1748) के समय में हिंदू धर्म के प्रभाव से इस लिपि का प्रयोग बंद हो गया और लेखन का माध्यम बंगला लिपि हो गई। इसीलिए आधुनिक युग में आकर संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि शब्दावली मणिपुरी भाषा में आने लगे और मणिपुरी भाषा बंगला लिपि में प्रयुक्त हुआ।

मणिपुरी भाषा प्रेमी और विद्वानों के प्रयास से मणिपुरी भाषा को आठवीं अनुसूची में 20 अगस्त, सन 1992 ई. को स्थान मिला। स्कूल और कॉलेजों में 'मीतै मयेक' में मणिपुरी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई।

प्राचीन काल में प्राप्त मणिपुरी साहित्य ग्रंथ धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि विषयों से संबंधित हैं। मध्यकाल में आकर मणिपुरी विद्वानों ने भारत के अन्य राज्यों से शिक्षा-दीक्षा पाकर अन्य भाषा-भाषी साहित्यकारों के साथ संपर्क में रखकर मणिपुरी साहित्य की खूब सेवा की। साथ ही अन्य भाषाओं के धार्मिक ग्रंथों जैसे 'रामायण' और 'महाभारत' का रूपांतरण किया। क्षेमा सिंह मोइराम्बा और उनके पाँच साथियों ने रामायण के सात खंडों का रूपांतरण गरीबनिवाज (1709-1748) के समय में किया था। कालाचाँद शास्त्री ने महाभारत का रूपांतरण भी किया था। आगे चलकर अशांबम मिनकेतन, कालाचाँद शास्त्री, द्विजमणि देव शर्मा, निंथौखोङ्जम खेलचन्द्र, आदि भाषा वैज्ञानिक एवं विद्वानों ने भाषा संबंधी अनेक ग्रंथ लिखकर मणिपुरी भाषा का विकास किया। इसके आलावा हिंदी सेवी डॉ. इबोहल सिंह काङजम, डॉ. एस. तोम्बा आदि ने हिंदी और मणिपुरी दोनों भाषाओं की सेवा की।

बीज शब्द : मणिपुरी , भाषा, योगदान, साहित्य, प्रयास।

मणिपुरी भाषा का योगदान :

मणिपुरी भाषा या मितैलोन सिर्फ मीतै लोगों के लिए नहीं, यह मणिपुर में रहने वाले सभी जातियों की संपर्क भाषा है। यह भाषा प्रचीन काल से एक-दूसरे के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग होती आई है। इस भाषा की अपनी अलग लिपि है, जिसे 'मीतै मयेक' कहते हैं। पंडितों की मान्यता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी से मणिपुर में साहित्य निर्माण का प्रारंभ हो चुका था।

मणिपुरी साहित्य का प्राचीन काल प्रथम शताब्दी ई. से 1730 ई. तक माना जाता है। इस काल के अंतर्गत प्राप्त काव्य ग्रंथों में 'तुतेंलोन', 'हिजन-हिराओ', 'पान्थोइबी खोंकुन' प्रसिद्ध हैं। गद्य ग्रंथों में 'पोइरैतोन खुन्थोक' और 'लैथक-लैखारोन' हैं।

मध्यकाल (1730 ई. से 1890 ई. तक) में मणिपुरी भाषा एवं साहित्य में बंगला भाषा का प्रभाव पड़ा। बंगला भाषा की कई किताबों का अनुवाद किया गया। मणिपुर में लेखन कार्य भी बंगला लिपि में शुरू हुआ। तत्कालीन महाराजा, शासक, प्रजा आदि हिंदू धर्म से प्रभावित हुए। मणिपुरी विद्वानों ने संस्कृत भाषा का अध्ययन भी किया। उन्होंने बंगला की 'कृतिवासी रामायण' और गंगादास सेन के 'महाभारत' का रूपांतरण किया।

आधुनिक युग (1890 ई. से अब तक) में मणिपुरी भाषा के साथ अंग्रेजी, हिंदी, बंगाली तथा अन्य भाषाएँ संपर्क में आईं। मणिपुरी भाषा के इतिहास अध्ययन करने का प्रयास पाश्चात्य विद्वानों ने भी किया था। इनमें डॉ. जी.ए. ग्रियर्सन का 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' तथा टी.सी. हडसन का 'द मैतैज' ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।

मणिपुरी भाषा के व्याकरण की रचना भी मणिपुर के विद्वानों ने की। उनमें कालाचाँद शास्त्री का 'व्याकरण कौमुदी', द्विजमणि देव शर्मा का 'मणिपुरी व्याकरण' बहुत लाभकारी हैं। मणिपुर के हिंदी सेवी और विद्वानों ने भी मणिपुरी और हिंदी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया। उनमे डॉ. इबोहल सिंह काङजम का 'हिन्दी मणिपुरी क्रिया संरचना' और एस. तोम्बा सिंह का 'व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन' उल्लेखनीय हैं।

मणिपुर के नवजागरण कालीन कवियों ने प्रकृति सौंदर्य, मातृभूमि प्रेम, राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम से संबद्ध कविताओं की रचना की। मणिपुरी भाषा एवं साहित्य में योगदान देने वाले कवियों में चिङाखम मयूरध्वज का नाम ले सकते हैं। उनकी काव्य पुस्तक शैरेङ् अनौबा में मातृभूमि प्रेम और प्रकृति प्रेम का चित्रण हुआ है। हिजम अङाङहल ने भी 'शीडेल इन्दु' (खंड काव्य), 'खम्ब- थोइबी शैरेङ्' (महाकाव्य), 'शैरेङ्खरा' (स्फुट कविताएँ) आदि काव्य पुस्तकों की रचना की। उनका 'खम्ब थोइबी शैरेङ्' लोक कथा पर आधारित महाकाव्य है। उन्हें 'महाकवि' की उपाधि भी प्राप्त है। कवि ख्वाईराक्पम चाओबा ने भी 'थाइनगी लैराङ्', 'पीथादोई' कविताओं की रचना की। 'पीथादोई' कविता में 'खम्ब-थोइबी' लोक कथा का खलनायक पात्र 'नोङ्बान' की आत्मा द्वारा बने 'चिड़िया पीथादोई' की कल्पना कवि ने की है। नोङ्बान द्वारा थोइबी (थादोई) के प्रति प्रेम का चित्रण इस कविता में रोमानी ढंग से किया गया है। हवाइबम नवद्वीप चंद्र ने भी लोकज्ञान पर आधारित गीती काव्य 'तोनुलाइजिङ्लेम्बी' की रचना करके मणिपुरी गीती शैली के काव्य का आदर्श माना। उन्होंने बंगला कवि माइकल मधूसुधन दत्त के खंड काव्य 'मेघनाद वध' को 'मेघनाद तुबा' नाम से अनूदित किया। प्रसिद्ध कवि रविन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि के चुने गीतों का भी उन्होंने मणिपुरी भाषा में अनुवाद करके दोनों भाषाओं की साहित्य का सेवा की। नवजागरण कालीन प्रसिद्ध कवि डॉक्टर कमल ने 'लैपरेङ्' काव्य पुस्तक की रचना करके मणिपुरी जनता में प्रकृति प्रेम, निज भाषा प्रेम, मातृभूमि प्रेम तथा विश्व प्रेम जागृत करने का प्रयास किया। अशांबम मिनकेतन ने अपनी कविताओं में छंदोबद्ध और विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया। उनकी काव्य पुस्तक 'अशैबगी नित्याइपोद' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। अराम्बम दरेन्द्रजीत सिंह ने 'कंश वध' जैसा खंड काव्य की रचना करके पाठकों में पौराणिक और सांस्कृतिक चेतना जागरूक करना चाहते हैं। राजकुमार शीतलजीत वैष्णव धर्म से अत्यंत प्रभावित थे। इसलिए

उनकी काव्य चेतना उदात्त हृदय और मानवादर्श चरित्र से संबंधित है।

नवजागरण कालीन कवियों ने कविता के अतिरिक्त गद्य की अन्य विधाओं में भी कलम उठाई। डॉ. कमल के 'माधवी' उपन्यास को मणिपुर का पहला उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में लेखक ने प्रेम के लिए स्वार्थ त्याग करके मानव सेवा और मानवतावाद के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने 'बजेन्द्रगी लुहोङ्बा' कहानी में भी तत्कालीन समाज में पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी को स्वयं अपना जीवन साथी चुनने की इच्छा को प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने 'देवयानी' नाटक की रचना की। महाकवि हिजम अङाङ्हल ने 'जहेरा' उपन्यास की रचना की। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज में फैले जाति भेद-भाव तथा छुआछूत की समस्या को सुधारने का प्रयास किया। 'जहेरा' उपन्यास की नायिका का नाम है। वह एक मुस्लिम युवती है। वह एक मणिपुरी हिंदू युवक से प्रेम करती है। दोनों के प्रेम में जाति भेद के कारण अनेक रुकावटें आती हैं। लेखक ने 'इबेम्मा', 'पोकतबी', आदि नाटकों की रचना करके तत्कालीन समाज में युवा पीढ़ी के चरित्र को सुधारने का प्रयास किया। ख्वाईराक्पम चाओबा का 'लवंगलता' उपन्यास ऐतिहासिक रोमांस पर आधारित है। उन्होंने अनेक निबंधों की रचना भी की है। उनमें 'कान्त्र वा', 'फिदम', 'वाखल', आदि उल्लेखनीय हैं। आशाङ्बम मीनकेतन सिंह ने भी निबंध, नाटक, आलोचना व्याकरण, आत्मकथा आदि गद्य विधाओं की रचना की। उनके 'मैतै उपन्यास' मणिपुरी की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक मानी जाती है। अराम्बम दरेन्द्रजीत सिंह ने भी नाटक के क्षेत्र में बड़ा योगदान दिया। वे 'अरियान थिएटर' के संस्थापक सदस्य भी थे। उनके नाटकों में 'मोइराङ् थोइबी', 'भाग्यचन्द्र', 'कौरव पराजय' आदि उल्लेखनीय हैं। उन्होंने चाओबा के 'लवंगलता' उपन्यास की समीक्षा की थी।

राजकुमार शीतलजीत ने भी काव्य के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी की रचना भी की। उनके उपन्यास 'थादोकपा', 'इमा', 'रोहिणी', 'नुङशी-वाखैबा' आदि में सामाजिक चेतना प्रस्तुत की गई है। उन्होंने हिंदी, बंगला, असमीया, संस्कृत, अंग्रेजी, आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनका 'इंग्लिश-मणिपुरी डिक्शनरी' ग्रंथ बहुत चर्चित है।

नवजागरण कालीन कवियों के काव्य राष्ट्रभूमि प्रेम, जाति रक्षा तथा मानवतावाद से ओत-प्रोत हैं। तत्कालीन गद्य विधाएँ सामाजिक समस्या, समाज परिष्कार तथा मानवीय आदर्श चरित्रों से संबंधित हैं। एम.के. बिनोदिनी ने 'नुङ्गाइरकता चन्द्रमुखी' जैसी कहानी संग्रह की रचना करके मनोवैज्ञानिक आधार शुरू किया। बि.एम. मैस्नाम ने भी 'इमासी नुराबी' जैसे ऐतिहासिक रोमांस उपन्यास को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। कैसाम प्रियोकुमार की कहानी 'नोङ्दी तारकखिद्रे', नी देवी की 'शोल्लबा मरी'

कहानी संग्रह आदि में सामाजिक और परिवारिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। मणिपुर के अनेक हिंदी सेवियों ने भी अनुवाद के माध्यम से मणिपुरी और हिंदी दोनों भाषाओं की सेवा की है। एलाङ्बम दिनमणि ने मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का मणिपुरी में अनुवाद किया। डॉ. इबोहल सिंह काङ्जम ने भी डॉ. कमल के 'माधवी' उपन्यास का अनुवाद हिंदी में किया था।

डॉ. सुबदनी ने भी डॉ. कमल के 'लैपरेङ्' काव्य संग्रह का हिंदी अनुवाद किया। डॉ. लनचेनबा मीतै ने भी अपने काव्य संग्रह 'नङ्बू होन्देदा' का हिंदी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त निशान सिंह, मेघचन्द्र हैराङ्खोङ्जम, ब्रजेश्वर शर्मा, सोरोकखाइबम सुशिला, डॉ. आर.के. मोबी आदि हिंदी सेवियों ने भी अनुवाद के माध्यम से दोनों भाषाओं में बड़ा योगदान देकर साहित्य की सेवा की। मणिपुर में मणिपुरी भाषा के अतिरिक्त अन्य बोलियाँ भी हैं। उनमें कबुई, पाइते, थादौ, मिजो, मार, मरिङ्, तांखुल आदि प्रमुख हैं। उन बोलियों में भी साहित्यिक योगदान दिया गया है।

निष्कर्ष :

मणिपुरी भाषा एवं साहित्य का विकासात्मक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मणिपुर के विद्वानों, पंडितों, भाषा सेवियों आदि ने प्राचीन काल से ही अपने राज्य की भाषा, संस्कृति तथा धर्म, राजनीति व क्रिया कर्म की रक्षा करने का प्रयास किया। मध्यकालीन एवं आधुनिक कवियों ने भी अपने काव्यों के माध्यम से जनता में राष्ट्रभूमि प्रेम, जाति रक्षा तथा मानवतावादी विचारधारा जागृत किया। साथ ही तत्कालीन लेखकों ने भी गद्य विधाओं के माध्यम से पाठकों में अपने युग की सामाजिक समस्या, समाज सुधार तथा परिष्कार जैसे मानवीय आदर्श चरित्रों को उजागर किया।

आगे चलकर आज के लेखक भी समय-समय पर आने वाली समस्याओं को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने का अथक प्रयास कर रहे हैं। साहित्य के संदर्भ में मध्यकाल से लेकर आज तक मणिपुर के हिंदी सेवियों ने मौलिक, अनुवादित या रूपांतरित करके मणिपुरी एवं हिंदी दोनों भाषाओं की सेवा की है, जो अत्यंत सराहनीय है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. अरिबा मणिपुरी साहित्य, एन. खेलचन्द्र सिंह, लेखक द्वारा प्रकाशित
2. ए. हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर, आर.के. झलजीत, द्वितीय संस्करण 1987
3. वही, भाग दो, प्रथम संस्करण-1998, लेखक द्वारा प्रकाशित
4. मणिपुरी कविता मेरी दृष्टि में, डॉ. देवराज, पहला संस्करण- 2006, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -110002
5. नवजागरण कालीन मणिपुरी कविताएँ, संपादन-देवराज, अनुवाद -सिद्धनाथ प्रसाद, संस्करण-प्रथम, 1995, सुजाता प्रकाशन, मेरठ - 250001
6. हिंदी-मणिपुरी क्रिया संरचना, डॉ. इबोहल सिंह काङ्जम, प्रथम संस्करण -1989, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली -30
7. व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन, ए. तोम्बा सिंह, प्रथम संस्करण -1984, ज्ञान भारती, रूपनगर, दिल्ली -7

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

संस्कृति

भठेलि लोकोत्सव

कसीरा जहाँ

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
राधा गोविंद बरुवा महाविद्यालय
फटाशील आमबाड़ी, गुवाहाटी-25
9707197734
rubijahan81@gmail.com

शोध सार :

'उत्सव' शब्द के साथ 'लोक' उपसर्ग जुड़ने पर 'लोकोत्सव' शब्द बना है। 'उत्सव' यानी त्योहार और 'लोक' यानी जनजीवन। अर्थात लोकोत्सव का अर्थ हुआ जनजीवन में मनाया जाने वाला त्योहार। परंपरागत रूप में कृषिजीवी समाज व्यवस्था आचार-व्यवहार, पूजा-पर्व, रीति-नीति, गीत इत्यादि मुख्य उपादानों को लेकर समय-सापेक्ष जनजीवन जिन अनुष्ठानों का पालन करती है, उसे ही उत्सव कहा जाता है। मनुष्य उत्सव प्रेमी है, अत: वह जीवन के प्रत्येक स्तर पर या पड़ाव पर होने वाले परिवर्तन को उत्सव का रूप देता हैं। इन उत्सवों के पालन से जनजीवन को शारीरिक एवं मानसिक विराम तथा आनंद ही नहीं प्राप्त होता, बल्कि सामाजिक सुख का भी एहसास होता है। ये लोकोत्सव मानव जीवन में आशा एवं उत्साह का संचार करते हैं।

'भठेलि' एक लोकोत्सव है, जो असम के कामरूप जिले में ब्रह्मपुत्र नद के तट पर गुवाहाटी महानगरी से लगभग 24 किलोमीटर की दूरी पर स्थित 'हाजो' नामक स्थान से मात्र 3 किलोमीटर पर अवस्थित 'रामदिया' नामक स्थान में मनाया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थान है, जिसके कारण यह पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बिंदु भी है। 'रामदिया' नामक स्थान विभिन्न धर्म, वर्ण, संप्रदाय के लोगों से भरा एक छोटा गाँव है। इस गाँव को हिंदू धर्मावलंबी तथा मुसलमान धर्मावलंबी का समन्वय स्थली भी कहा जाता है। 'भठेलि' लोकोत्सव का धार्मिक तथा सामाजिक महत्व है। यह मात्र उत्सव ही नहीं, बल्कि समन्वय का प्रतीक है।

बीज शब्द :

लोक, लोकोत्सव, भठेलि, जनजीवन, लोक-संस्कृति आदि।

प्रस्तावना :

'भठेलि' शब्द की उत्पत्ति को लेकर काफी मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार 'भठेलि' शब्द 'भाठि' शब्द से बना है तो कुछ विद्वानों ने भठेलि शब्द की व्युत्पत्ति 'भटियालि' शब्द से माना है। वहीं कुछ विद्वानों ने भठेलि शब्द 'भूईथली' शब्द से उत्पन्न हुआ मानते हैं। डॉ. बाणीकांत काकति ने भठेलि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'भस्तली' या 'भस्तलिका' शब्द से माना है, जो रूपांतरित होकर असमीया

भाषा में भठेलि के रूप में व्यवहृत होता है। वहीं, डॉ. प्रमोदचंद्र भट्टाचार्य ने भी 'भठेलि' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'भस्तलिका' से माना है।

उतर कामरूप की विभिन्न जगहों पर भठेलि उत्सव का पालन किया जाता है, परंतु वहाँ पालन किए जाने वाले भठेलि उत्सव के नियमों में काफी अंतर दिखाई पड़ता है। उतर कामरूप की ओर भठेलि उत्सव में दो बाँसों को लिया जाता है। एक लंबा और एक छोटा बाँस। दोनों बाँसों को वर-वधू के प्रतीक के रूप में लिया जाता है। वर को शिव का प्रतीक माना जाता है। इस प्रक्रिया को 'पारा' या 'पाउरा' कहा जाता है, किंतु रामदिया के भठेलि लोकोत्सव में 'पारा' या 'पाउरा' की व्यवस्था नहीं है। यही मूल अंतर है। वास्तव में रामदिया का भठेलि उत्सव तो धार्मिक परिप्रेक्ष्य में लोक परंपरागत उत्सव है। यह श्रीश्री माधवदेव के विदाई समय, तिथि या तारीख को भठेलि उत्सव का मूल माना जाता है। इसी कारणवश उत्तर कामरूप के अन्य स्थानों के भठेलि उत्सव तथा रामदिया के भठेलि उत्सव में काफी अंतर पाया जाता है।

प्रासंगिकता :

असम विभिन्न जाति तथा जनजातियों से भरा प्रदेश है। सभी जाति तथा जनजातियों के अपने लोक गीत, लोकोत्सव, लोक कथाएँ तथा लोक मान्यताएँ हैं, जो यहाँ की धरोहर हैं। किसी स्थान विशेष की लोक-संस्कृति ही वहाँ के जातीय स्मृति का संवाहक होती है। अत: इनका लिखित रूप में संरक्षित करना आवश्यक है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अवतरण एवं ग्रंथ-सूची आधुनिक भाषा संस्था (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

'भठेलि' लोकोत्सव के विषय में जानने से पहले इसके इतिहास के बारे में जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि 1600वीं सदी के अंतिम दशक में कोच नरपति (राजा) रघुदेव के आदेशानुसार बरपेटा से श्रीश्री माधवदेव भक्तों सहित हाजो नामक स्थान में आए। बरपेटा में रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म का प्रचार करना प्रारंभ किया। उसी समय नव-वैष्णव धर्म के विरोधी उनके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे और उन लोगों ने श्रीश्री माधवदेव के विरुद्ध राजा के कानभर दिए। फलत: राजा रघुदेव ने उन्हें दंड के तौर पर रामदिया जाने का आदेश दिया। राजा के आदेशानुसार माधवदेव श्रीराम आता सहित एक भक्त दल के साथ जलमार्ग (ब्रह्मपुत्र) से नाव में सवार होकर रामदिया पहुँचे। उनके रामदिया आने के प्रसंग का इस प्रकार उल्लेख है –

''हाजोर नामे रामदिया बालात चै-गृह रल''

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो नामक रामदिया की बालुई सतह पर गृह बनाकर रहने लगे।)

चै गृह (नदी के किनारे बनाया जाने वाला विशेष प्रकार का घर) बनाकर रहने के दौरान पुन: धर्म प्रचार में निमग्न हो गए। रामदिया में अनगिनत भक्त समाज को पाकर बरपेटा के षड्यंत्र की बात को भूल ही गए। श्रीश्री माधवदेव ने रामदिया में धर्म प्रचार के साथ सत्र की स्थापना भी की थी, जिसका उल्लेख 'चरित पुथि' में है।

''हाजो समीपत ग्राम नामे रामदिया।
तहिते रहिला पाछे सत्रक करिया।''

(मजूमदार : पृष्ठ संख्या-84, 2018)

(अर्थात हाजो के समीप का गाँव, जिसका नाम रामदिया है। वहाँ रहे और बाद में सत्र की स्थापना की।)

श्रीश्री माधवदेव रामदिया में 6 महीने तक रहे, जिसका उल्लेख विभिन्न ग्रंथो में पाया जाता है।

कहा जाता है कि माधवदेव रामदिया नामक स्थान में छह महीने तक रहे। यहाँ रहने के दौरान उन्होंने नव-वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही सत्रों की स्थापना भी की। रामदिया में रहने के दौरान श्रीश्री माधवदेव ने कई बरगीत और घोषा की रचना की। श्रीमंत शंकरदेव के रुक्मिणी हरण नाट, माधवदेव के अर्जुन-भंजन (दधि मथन), भोजन-बेहार आदि नाट भावना (नृत्य नाटिका जो नामघर में मंचित किया जाता है) को मंचित किया था। बाद में लक्ष्मीनारायण आईधा, जो वेहार (वर्तमान में कोचबिहार) के राजा ने माधवदेव से वेहार यानी कोचबिहार जाने के लिए बहुत ही अनुरोध किया। लक्ष्मीनारायण आईधाम की

भक्ति तथा कातर अनुरोध की रक्षा करने हेतु माधवदेव को वेहार जाना पड़ा। दैत्यारि ठाकुर कृत महापुरुष श्री शंकरदेव और श्री माधवदेव चरित में इसका उल्लेख मिलता है।

''किनो महाभाग्य मिलि आछे वेहरार।
मिलिला दुर्भाग्य कामरूपी लोकर।''

(मजूमदार : पृष्ठ-21, 2001)

(अर्थात वेहार का महाभाग्य है, जो श्री माधवदेव वहाँ जाने के प्रस्तुत हुए हैं और कामरूप निवासियों का दुर्भाग्य है, जो उन्हें छोड़कर जा रहे हैं।)

इस संवाद से उनके भक्तों में एक विषाद की भवाना छा गई। चारों ओर से असंख्य भक्तों का समागम हुआ। यह समय रामदिया तथा वहाँ के निवासियों के लिए एक करुण दिन था, लेकिन उनके पास कोई समाधान नहीं था। वह दिन वैशाख महीने की 6 तारीख थी और उनके भक्त उनसे न जाने की विनती कर रहे थे। भक्तों की इस वेदना को भलीभाँति समझ रहे थे, परंतु उनका जाना तय था। अत: भक्तों को आशीर्वाद देकर श्रीश्री माधवदेव वहाँ से विदा हुए। वे जलमार्ग से नाव में बैठकर वेहार राज्य के लिए रवाना हुए थे, जिसका उल्लेख दैत्यारि ठाकुर के श्री शंकरदेव और श्री माधवदेव चरित में मिलता है। श्रीश्री माधवदेव को विदा करने के लिए भक्तों की बड़ी भीड़ खोल (वाद्ययंत्र), ताल (वाद्ययंत्र) आदि वाद्ययंत्रों के साथ भठेलि खोला तक आई थी। उसी स्थान से श्रीश्री माधवदेव को विदाई दी गई। कुछ लोगों का मानना है कि श्रीश्री माधवदेव का रामदिया से चले जाने की स्मृतिस्वरूप ही रामदिया के भठेलि का जन्म हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 16वीं सदी या वैष्णव युग में भठेलि उत्सव का जन्म हुआ है। वैशाख की 6 तारीख को मनाए जाने के कारण इसे सातबिहू भी कहा जाता है। श्रीश्री माधवदेव के रामदिया छोड़ वेहार नामक स्थान जाने के बाद ही रामदिया के भठेलि में धर्मीय प्रभाव दिख पड़ा।

रामदिया का भठेलि उत्सव तीन दिवसीय है। यह वैशाख की 5 तारीख से प्रारंभ होता है। वैशाख की 5 तारीख को सत्र (एक विशेष संस्थागत केंद्र है, जो एक शरण धर्म की परंपरा का प्रसार करता है) समूहों में नाम-प्रसंग (ईश्वर का नाम स्मरण) आरंभ होता है। साथ ही पूरे वर्ष का हिसाब-किताब भी किया जाता है। इन सत्र समूहों में दीया जलाने के लिए प्रत्येक घर से तेल लेने की यहाँ परंपरागत प्रथा है। वर्तमान में भठेलि उत्सव का उद्घाटन किया जाता है, जो पहले नहीं था। उस दिन धूला यानी धूलापारा (स्थान का नाम) के सत्र वाला यानी रामदिया लाया जाता है। वहाँ दूसरे दिन से तीन दिवसीय एक मेला भी लगता है। अत: विभिन्न स्थानों के व्यापारी भी अगले दिन ही वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। वैशाख की 6 तारीख को मूल उत्सव की शुरुआत होती है। उस दिन भिन्न-भिन्न स्थानों से भठेलि उत्सव देखने हेतु लोग आते हैं। पूरा रामदिया दर्शनार्थियों से भर जाता है। चारों ओर लोकारण्य ही लोकरण्य। रामदिया उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के खेल के मैदान में ही इस उत्सव का पालन किया जाता है। मेला भी इसी जगह लगता है। उस दिन प्रत्येक घर के सामने एक वेदी या ढाप बनाई जाती है। मिट्टी से सने उस वेदी के किनारे ही कोमल केले के पत्ते के ऊपर शराई (काँस धातु से निर्मित विशेष बर्तन, जो धार्मिक कार्यों में व्यवहृत किया जाता है) रखा जाता है। उस शराई में चावल या मननी (ईश्वर के नाम पर अर्पित पैसा) रखा जाता हैं। उस दिन घर के सभी सदस्य गोसाईं (ईश्वर) की प्रार्थना या भक्ति कर आशीष लेते हैं। उसी दिन दोपहर 12 बजे विभिन्न सत्रों (शंकरी, दामोदरी और चैतन्य पंथी) से कुल 15 गोसाईं (ईश्वर) को धुला यानी धुलापारा से बाला यानी रामदिया में ढोल-खोल (वाद्ययंत्रों) बजाकर आदर सम्मान के साथ लाया जाता है। गोसाईं के आगे छोटे-छोटे बच्चे हाथों में दंड (लकड़ी से निर्मित डंडा) जिसके ऊपर पीतल की टोपी होती हैं) लेकर आदर, सम्मान तथा भक्ति

सहित गंतव्य स्थान तक पहुंचते हैं। आरंभिक अवस्था में कुछ दस सत्रों को लाया जाता था, इसके पश्चात इसकी संख्या 12 हुई और वर्तमान में 15 सत्रों को लाया जाता है। गोसाईं के आगे-पीछे गायन-बायन (गायन-बायन धार्मिक नृत्य है, जो सातरस में शंकरदेव के शिष्यों या भक्तों द्वारा सत्रों में गाया बजाया जाता है, जिसमें गाने वाले को गायन और बजाने वाले को बायन कहा जाता है) तथा आयती (साधवी महिलाएँ) होती हैं। गाँव के बीच से गुजरते समय गाँववासी गोसाईं (ईश्वर) का आशीर्वाद लेते हैं तथा निर्माली ग्रहण करते हैं। पूरा वातावरण मनोरम तथा भक्तिमय हो जाता है। भठेलि खोला (उत्सव स्थली) में पूर्व से पश्चिम दिशा में पक्का मंडप बना दिया गया है, जहाँ 15 सत्रों से लाए गए गोसाईं को रखा जाता है। परंतु पहले वेदी बनाकर चार कोमल बाँस को रंगीन कपड़ो से बाँधकर मिट्टी की वेदी के चारों ओर बाँधा जाता है, और उसके ऊपर 15 सत्रों से लाए गए गोसाईं को रखा जाता है।

'बाला' या भठेलि खोला (उत्सव स्थली) में लाए जाने वाले सत्रों में-धूला सत्र, बगरीबारी सत्र, शिशुर सत्र, राम लक्ष्मण सत्र, बासुदेव सत्र, विष्णुपुर सत्र, नरनारायण सत्र, लेंगटा गोपीनाथ सत्र, हाथभंगा सत्र, मेघनारायण सत्र, बासुदेव बालि सत्र, लाडुवा गोपाल सत्र, वंशी गोपाल सत्र और चैतन्य सत्र, गोपीबल्लभ सत्र शामिल हैं।

उस समय अनगिनत दर्शक और भक्त गोसाईं (ईश्वर) की आराधना कर नववर्ष के लिए आशीष लेते हैं। गोसाईं की एक झलक पाने को और उनकी भक्ति करने के लिए लोगों में होड़ लग जाती है। भक्ति निवेदन के समय प्रत्येक भक्त जन अपने सामर्थ्य अनुसार रुपए-पैसे तथा माला आदि भेंट करते हैं। उल्लेखनीय विषय यह है कि भक्तों को निर्माली के रूप में गुलाल या अबीर दिया जाता है। यह प्रथा भी अपने आप में विरल है। उसी दिन संध्या होने से पूर्व ही सारे सत्रों को वापस ले जाया जाता है। गोसाईं को सत्रों में वापस ले जाते समय साथ जाने वाले लोग वहाँ के स्थानीय लोगों के घरों के बगीचे से आठीया केले (केले की एक प्रजाति है, जो आकार में मोटा होती है) के थोक (गुच्छा) भी काटकर ले जाते हैं। गोसाईं को सत्रों में प्रवेश करवाने से कुछ क्षण पूर्व वहाँ मौजूद लोग परस्पर एक-दूसरे की ओर केले फेंकते हैं। यह प्रथा भी बहुत ही निराली है। गोसाईं को सत्र में प्रवेश कराने से पूर्व वहाँ मौजूद लोग एक कपड़ा खींचकर दो दलों मे विभक्त हो परस्पर एक-दूसरे के साथ तर्क-वितर्क करते हैं। इसके पीछे लोक विश्वास यह है कि गोसाईं और गोसाईंन (अर्थात उनकी पत्नी) में तर्क-वितर्क होता है। कारण यह माना जाता है कि गोसाईं-गोसाईंनी को बिना बताए घूमने आते हैं, जो गोसाईंनी को पसंद नहीं आता। सात वैशाख अर्थात वैशाख की सात तारीख को भठेलि उत्सव का अंतिम दिन माना जाता है, जिसे भंगा भठेलि (टूटा हुआ भठेलि) कहा जाता है। उस दिन भठेलि खोला (उत्सव स्थली) को छोड़कर अन्य अनुष्ठान का आयोजन नहीं किया जाता है। उस दिन गाँव के कुछ सत्र विग्रह को पूरे गाँव में घुमाया जाता है। इसे गोसाईं फुरनी (ईश्वर का घूमना) कहा जाता है। लोक विश्वास है कि ऐसा करने पर गाँव में आने वाली बाधा या अमंगल का नाश होता है।

भठेलि उत्सव के दो दिन अर्थात 6 और 7 वैशाख को मेला लगता है। रामदिया में रहने वाले लोगों को छोड़कर निकटवर्ती स्थानों में रहने वाले लोग भी मेला देखने आते हैं। रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग होने वाली उपयोगी वस्तुओं से लेकर कपड़े, गहने, मिठाई, बच्चों के खिलौने साथ ही किताबें भी पाई जाती हैं। इस मेले से ही लोग अपनी आवश्यकतानुसार चीजों को खरीदते हैं।

विभिन्न धर्मों का मिलन सेतु, विभिन्न लोगों का समागम और भातृत्वबोध ही इस लोक उत्सव का मूलमंत्र है। 'भठेलि' लोकोत्सव मात्र लोकोत्सव की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि कई दृष्टियों से विशेष महत्व रखता है। भठेलि लोकोत्सव के महत्व को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रखने का प्रयास किया गया हैं-

। धार्मिक महत्व :

धार्मिक दृष्टि से यह लोकोत्सव बहुत ही महत्व रखता है। इस तरह एक ही मंच पर 15 जगहों के गोसाईं (ईश्वर) की एक साथ पूजा-अर्चना करने का उदाहरण बहुत ही विरल है।

। सामाजिक महत्व :

इस लोकोत्सव के जरिए यहाँ के स्थानीय लोगों के साथ-साथ यहाँ व्यवसाय करने वाले लोगों के बीच भातृत्वभाव बढ़ता है, जो जीवन को सुचारू रूप से

चलाने में मदद करता है। समाज को एकता का महत्व सिखाता है।

आर्थिक महत्व :

अर्थनैतिक दृष्टि से भठेलि लोकोत्सव बहुत महत्व रखता है। इस लोकोत्सव के जरिए लोग अपनी-अपनी लघु मात्रा में उत्पादित सामग्री को भठेलि मेले में बेचकर अर्थनैतिक दृष्टि से सबल बन पाते हैं। यह लोकोत्सव इस अंचल की महिलाओं को स्वावलंबी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही कारण है कि महिला समाज इस लोकोत्सव का व्याकुलता से प्रतीक्षा करता है। क्षुद्र व्यवसाय करने वाले शिल्पियों के लिए भठेलि मेला बहुत बड़ा बाजार है, जहाँ वे अपनी उत्पादित सामग्री को बेचकर आर्थिक रूप से लाभान्वित होते हैं। कुछ शिल्प जो विलुप्त प्राय: होते चले जा रहे हैं, वे शिल्प इस भठेलि मेले में देखने को मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप, कमार शिल्प, कुंभार शिल्प, वस्त्र शिल्प, जूट शिल्प, काँस-पीतल की सामग्री आदि।

नैतिक महत्व :

नैतिक दृष्टि से भी इस लोकोत्सव का विशेष महत्व है। यह लोकोत्सव धार्मिक चेतना केंद्रित है, इसीलिए समाज में धार्मिक जागरण पैदा करने में एक विशेष महत्व रखता है। लोगों में यह विश्वास अभी भी है कि इस उत्सव का अच्छी तरह से पालन करना समाज के लिए मंगलदायक है।

आनंदबोध :

भठेलि लोकोत्सव लोगों में आनंद का बोध भी कराता है। भठेलि उत्सव के तीनों दिन सभी के हृदय को उमंग, उल्लास तथा पवित्रता से भर देता है। नए साल को उत्साह तथा सुचारू रूप से चलाने की ऊर्जा भी प्रदान करता हैं। हम यह कह सकते हैं कि यह लोकोत्सव एक ईंधन का ही काम करता है।

निष्कर्ष :

रामदिया का भठेलि उत्सव मात्र उत्सव ही नहीं है, बल्कि यह समन्वय का प्रतीक है। रामदिया में निवास करने वाले हिंदू-मुसलमान दोनों ही धर्मावलंबियों के पूर्ण सहयोग से यह भठेलि उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव में हर धर्म, हर वर्ण के लोग भाग ले सकते हैं। इसमे आमंत्रण की औपचारिकता नहीं होती। इस उत्सव के आकर्षण के दो केंद्र बिंदु हैं। पहला- विभिन्न सत्रों से लाए गए गोसाईं, जिसकी भक्ति तथा आराधना कर भक्त रससिक्त हो जाते हैं तथा दूसरा है-यहाँ आयोजित किया जाने वाला भठेलि मेला, जिसमें लोग अपने मनपसंद की वस्तुओं को खरीद सकते हैं। रामदिया निवासी भी उस पावन, पवित्र, त्योहार के अवसर पर हजार-हजार लोगों के चरणधूल पाकर धन्य महसूस करता है। भठेलि उत्सव के संचालन का पूरा दायित्व रामदिया पुस्तकालय तथा सामूहिक सांस्कृतिक केंद्र वहन करते हैं। ❑

संदर्भ-सहायक ग्रंथ :

1. डेका श्री परमानंद (सं), भठेलि, 2001
2. स्मृति ग्रंथ, विनंदी चंद्र महाविद्यालया, रामदिया, 2018
3. स्मृति ग्रंथ, विनंदी चंद्र महाविद्यालया, रामदिया, 2018
4. शर्मा सत्येंद्रनाथ, असोमीया साहित्यर समीक्षात्मक ईतिवृत, 2006
5. बरा देवजित(स.), उत्तर-पूर्व भारतर जनगोष्ठिय उत्सव-अनुष्ठान, 2015
6. पाठक मुकुट, रामदिया अंचलर लोक संस्कृतिर अध्ययन, 2016
7. डेका परमानंद, भठेलि (रामदियापुथिभराल आरू समूहिक सांस्कृतिक केंद्रर मुखपत्र), 2001
8. गोगोई लोकेश्वर, असमर लोक-संस्कृति, 2011
9. दास दिलीप कुमार, लोक संस्कृतिर संफूरा,
10. काकति बाणीकांत, पुरनी कमरुपुरर धर्मर धारा, 1955
11. काकति बाणीकांत, पुरनी असमीया साहित्य, 1940
12. भट्टाचार्य प्रमोद चंद्र, असमर लोकउत्सव, 1969
13. राजगुरु सर्बेश्वर, मेडीएविल आसामीज सोसाइटी, 1967
14. हरिचन्द्र भराली, विविधा, पुथि प्रकाशन, कामाख्या गेट, गुवाहाटी-781009

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

इक्कीसवीं सदी की प्रमुख हिंदी महिला रचनाकारों की आत्मकथा : एक विहंगम दृष्टि

सुमि शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलोंग-793022
8876133001
sumisarmah1993@gmail.com

प्राचीन काल से ही कथा साहित्य का विकास पद्य के रूप में होते हुए आधुनिक काल में उसने गद्य का रूप लिया। किसी भी साहित्य का आधार यानी नींव उसकी इतिहास-परंपरा ही होती है, जो परिवर्तन के शाश्वत नियम से बंधी हुई होती है। समाज में बदलती परिस्थितियों के कारण लेखक की लेखनी में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्राचीन काल में वर्णित राजा-महाराजाओं की वीरता, प्रशस्ति गीत, साहस, कल्पना, भगवद् प्रीति की उत्कट परंपरा, प्रेमगाथा, प्रकृति-प्रेम जैसे अनेक विषयों के स्थान पर मनुष्य के व्यक्तिगत सुख, दुख, अनुभव, यथार्थता, अस्मिता जैसे अनेक मानवीय पहलुओं को कथाकारों ने अपने विषय में महत्व दिया, जिससे गद्य की अन्य विधाएँ जैसे- आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र और रिपोर्ताज आदि अस्तित्व में आईं। वर्तमान समय में 'आत्मकथा' एक लोकप्रिय एवं सशक्त लघु गद्य विधा के रूप में दिखाई देती है। प्राचीनकाल या मध्यकाल में आत्मकथा की समृद्ध लेखन परंपरा नहीं मिलती, क्योंकि भारतीय परंपराओं में 'स्व' के ऊपर बात कहना या लिखना अहंकार माना जाता था। आत्मकथा आधुनिक युग की उपज है।

'आत्मकथा' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'आत्म' यानी 'स्वयं' और 'कथा' यानी 'बात'। अर्थात जहाँ खुद की बात कही या लिखी गई हो, उसे आत्मकथा कहते हैं। मनुष्य स्वयं के व्यक्तित्व को अनुभवी दस्तावेज में एकाग्रचित्त होकर क्रमानुसार घटनाओं को ईमानदारी, निरपेक्षता से जीवन के हर पहलू को पाठक के सामने रखते हैं, उसे ही 'आत्मकथा' कहते हैं। संस्कृत में आत्मकथा के लिए 'आत्मवृत्त कथनम्' और 'आत्मचरितम' शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा अंग्रेजी में 'ऑटोबायोग्राफी' शब्द प्रचलित है। आत्मकथा कथात्मक शैली में लिखी जाती है। 'आत्मकथा' को परिभाषित करते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि 'आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथ की रचना नहीं करता। कोई स्वप्न सृष्टि नहीं रचता, वरन् अपने गत जीवन खट्टे-मीठे, उजले-अंधेरे, प्रसन्न-विषण्ण, साधारण-असाधाण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेना है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करना है।'[1]

आत्मकथा में एक व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है; क्योंकि लेखक अपनी सत्यता की नींव पर खरे उतरते हुए जीवन की हर घटना तथा अपने गुण-दोषों को समाज के सामने रखता है। एक श्रेष्ठ आत्मकथा में प्रभावोत्पादकता, रोचकता, यथार्थता, संक्षिप्तता, सत्यता, स्पष्टता, आत्मलोचन, आत्मविश्लेषण, सुविचार, सरलता, सहजता, निरपेक्ष, बोधगम्य, वैधता, विश्वसनीयता, ईमानदारी, तटस्थता, एकाग्रता, साहस, आत्मविश्वास जैसे अनेक गुण अनिवार्यत: निहित हैं। आत्मकथा में लेखक सकारात्मक एवं नकारात्मक-दोनों पहलुओं को पाठक के सामने रखता है। समाज हमेशा ऐसे महान व्यक्तियों के आत्मचरित को पढ़ना चाहता है, जिन्होंने अनेक संघर्षों एवं कठिनाइयों का सामना करते हुए लक्ष्य को प्राप्त किया हो। ऐसी आत्मकथाओं से समाज को एक नई दिशा मिलती है। यह उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु एक उत्तम प्रेरणास्रोत है।

आत्मकथा जीवन का वर्णनात्मक वर्णन प्रस्तुत करती है, जिसमें संवाद, भावनाएँ, पात्र वास्तविक जीवन से संबंधित होते हैं, जिनका प्रभाव लेखक पर पड़ा हुआ होता है। आत्मकथा में सबसे महत्वपूर्ण चरित्र तथा पात्र स्वयं लेखक ही होता है, जो स्वयं का ही आकलन प्रस्तुत करता है। आत्मकथा काल्पनिक पात्रों या कहानियों पर आधारित न होकर यथार्थ तथा वास्तविक जीवन पर आधारित होती हैं, जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना परिचय, संवेदनाओं, भावनाओं, संबंधों का प्रस्तुतिकरण करता है, जिसका संबंध उसके स्वयं के जीवन से होता है।

प्रारंभिक दौर में हिंदी साहित्य के कथा साहित्य में महिला लेखिकाओं का योगदान नहीं के बराबर था। इसका प्रमुख कारण है- स्त्री शिक्षा का अभाव, घरेलू उत्तरदायित्व, सामाजिक-पारिवारिक दबाव आदि। स्वतत्रंता के बाद स्त्री शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा, जिससे स्त्री अस्मिता, स्त्री जागरूकता जैसे प्रश्न समाज-शिक्षा व्यवस्था में उठने लगे। शिक्षित स्त्री खुद कलम चलाने लगी। एक स्त्री का संघर्ष, शोषण, कुंठा आदि विषयों को महिला आत्मकथाकारों ने अपनी लेखन शैली में अधिक मनोग्राही बनाया। ईमानदारी, तटस्थता से परिपुष्ट होकर खुद के गुण-अवगुणों को सबके सामने प्रस्तुत करके महिला लेखिकाओं ने अदम्य साहस का परिचय दिया। भारतीय समाज व्यवस्था में नारी के त्याग, अन्याय, विषमता आदि मुद्दों पर जागरूकता का संदेश देने में ये आत्मकथाएँ एक उपयोगी माध्यम बनी हैं। महिला आत्मकथा पितृ सत्तात्मक समाज के सामने अपने समान अधिकार के लिए आवाज उठाने वाला एक सामाजिक आंदोलन है। स्त्री हो या पुरुष दोनों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। अपनी इसी अभिव्यक्ति को संप्रेषित करने की कला को महिला लेखिकाओं ने आत्मकथा का नाम दिया। महिलाओं ने 'स्व' की अस्मिता खोजने के प्रयास से आत्मकथा लेखन में रुचि ली। स्त्री-लेखन के संबंध में बच्चन सिंह का कहना है कि 'स्त्री लेखन की अपनी दुनिया है, जो पुरुष-लेखन की दुनिया के समानांतर चलती रहती है- इतनी समानांतर भी नहीं कि कहीं उसका स्पर्श भी न करे, उसे काटे भी नहीं। स्त्री से सर्वथा अलग न पुरुष की दुनिया हो सकती है और न पुरुष से सर्वथा अलग स्त्री की दुनिया। फिर भी ऐतिहासिक, राजनैतिक, प्राणीशास्त्रीय कारणों से उनमें अलगाव दिखाई देता है। इसी अंतर या पार्थक्य से स्त्री-लेखन की पहचान बनती है।' [2]

कई महिलाओं ने समाज में संघर्ष कर अपने को समाज में प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार से संघर्षपूर्ण जीवन जीने वाली कई महिलाओं ने इसे प्रेरणा स्रोत के रूप में, जागृति के लिए आत्मकथा के रूप में लिखा, जिससे समाज में अत्याचारों, रीति-रिवाजों, आडंबरों से ग्रसित महिलाओं में जागरूकता की एक नई लहर का उदय हो सके। वह अपनी क्षमता, सोच आदि को एक नई दिशा प्रदान कर सके।

19वीं. सदी से पहले भारतीय भाषाओं में कोई संपूर्ण आत्मकथा नहीं मिलती। लेकिन पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा पाकर पूँजीवाद के प्रभाव से आधुनिक काल में प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में आत्मकथा लेखन की परंपरा तेजी से बढ़ निकली। साहित्य की विधा आत्मकथा को समृद्ध करने में स्त्री आत्मकथाओं और दलित-आत्मकथाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आत्मकथा लेखन के स्वर्णिम युग स्वातंत्र्योत्तर काल को ही माना जा सकता है। इस काल में साहित्यकारों के आत्मकथा लेखन में नवीन रूपों का संयोजन होने लगा। इस संदर्भ में इक्कीसवीं सदी की महिला लेखिकाओं की अग्रणी भूमिका रही है, जिसमें दलित महिला आत्मकथाकारों के भोगे हुए यथार्थ की परिपक्क अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरणस्वरूप -अनीता राकेश की 'संतरे और संतरे'(2002), कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा'(2010), ममता कालिया की 'कितनी शहरों में कितनी बार'(2010), कृष्णा अग्निहोत्री की 'और...और...औरत'(2011), सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द'(2011), मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' (2011), मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2014), निर्मला जैन की 'जमाने में हम' (2015), सुषम वेदी की 'आरोह-अवरोह' (2017), रमणिका गुप्ता की 'आपहुदरी' (2019), सुनीता जैन की 'शब्दकाया' (2019) आदि हैं।

इक्कीसवीं सदी की स्त्री लेखिकाओं में प्रमुख मैत्रेयी पुष्पा द्वारा विरचित आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' नाम से 2002 ई. में प्रकाशित हुई। यह आत्मकथा माँ-बेटी के जीवन-संघर्ष की कथा है। इस आत्मकथा में लेखिका की माता कस्तूरी जो अपनी मेहनत से अपनी जीवन-वृत्ति को खुद के भरोसे चलाने में कामयाब होती है। लेखिका ने स्वयं अपने जीवन की कहानी को बचपन से लेकर संतान प्राप्ति तक की समस्त घटनाओं को नारी संवेदना से जोड़कर वास्तविक रूप में चित्रित किया है। इस आत्मकथा में अनमेल विवाह की समस्या, लिंगभेद की समस्या, माँ-बेटी के पारस्परिक मतभेद की समस्या, तत्कालीन परिवेश के अंग्रेजीराज तथा जमींदारी प्रथा जैसी भयानक समस्या दिखाई पड़ती हैं। इस आत्मकथा में जीवन और आत्मकथा दोनों का यथार्थ रूप मिलता है। लिंगभेद की समस्या स्त्री-जीवन के लिए एक चुनौती भरा एहसास है, जिसके परिप्रेक्ष्य में स्वयं लेखिका कहती है, 'मनुष्य के रूप में अगर सबसे कठिन, चुनौती भरी जिंदगी को पाया है तो स्त्री ने। या कुदरत को ही उससे बैर था ? या कि सृष्टि के कर्ता-धर्ता की ही कोई साजिश....मादा बनाने के बाद, मादा होने की सजा का नाम औरत धर दिया। क्योंकि साथ में दिमाग-दिल और विवेक भी दे दिया।' [3]

सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने वाली रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' 2005 ई. में प्रकाशित हुई। विद्रोही स्वभाव से ओत-प्रोत रमणिका गुप्ता ने अपने जीवन में अपराजेय संघर्ष की सच्ची घटना को प्रस्तुत किया है। इस आत्मकथा में राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ भोगे हुए यथार्थ की भी सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें सामंती शोषण, नारी जीवन की समस्या, पितृ सत्तामक समाज का कट्टरपन, कोयला खदानों में काम करने वाले मजदूरों का दैहिक तथा आर्थिक शोषण, विधानसभा में होने वाले तर्क-वितर्क की समस्या जैसी अनेक समस्याओं का उल्लेख मिलता है। आत्मकथाकार लेखिका प्रारंभ में मजदूरों की समस्या को दर्शाते हुए कहती है - 'मैं अपना दु:ख-सुख मजदूरों के दु:ख-सुख में महसूस करती थी इसलिए उनकी तकलीफ को देखकर मेरा गुस्सा बढ़ता था। मैं गुस्से में रोने लगती हूँ और फिर संघर्ष शुरू कर देती हूँ और कड़े-से-कड़े मुकाबले के लिए पूरी तरह तैयार हो जाती हूँ। मुकाबले होते भी थे बहुत तगड़े।' [4]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' 2007 ई. में प्रकाशित हुआ। यह आत्मकथा पितृ सत्तात्मक संस्कृति को चुनौती देने वाली एक उत्कृष्ट आत्मकथा है। इसमें लेखिका ने स्त्री के भोगे हुए यथार्थ को दिखाते हुए उस समय के बंगाल की आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को भी दिखाने का प्रयास किया है। इस आत्मकथा में परिवार, प्रेम, विवाह, परंपरा, एक स्त्री की शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक समस्या (अकेलापन, तनाव, कुंठा, संघर्ष आदि) के साथ-साथ राजनीतिक समस्या (भारत पर चीनी

आक्रमण की समस्या), कलकत्ता की तत्कालीन परिवेश-परिस्थिति के विविध पहलुओं को उजागर किया है। लेखिका एक अकेली नारी की मानसिक संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए कहती है, 'मेरा तो इहलोक-परलोक में कोई नहीं। हमेशा-हमेशा से अकेली हूँ। नि:संग रही हूँ। किसी को मुझसे प्यार नहीं, किसी को मुझ पर ममता नहीं, किसी ने क्षण भर को नहीं सोचा कि मेरी यह अकेली जिंदगी कैसे चलेगी? स्नेह? प्यारविहीन....थार का रेगिस्तान जैसा मेरा जीवन रहा है, जहाँ केवल अकेले चलती रही हूँ।' [5]

चंद्रकिरण सौनरेक्सा द्वारा विरचित 'पिंजरे की मैना' का प्रकाशन 2008 ई. में हुआ था। लेखिका ने इस आत्मकथा के जरिए स्त्री जीवन के कटु सत्य को एक-एक करके यथार्थ से परिचय कराया। इस आत्मकथा की मुख्य समस्या यह है कि सामंती व्यवहार, दांपत्य जीवन की समस्या, प्रतिभा विकास में अनेक बाधक तत्वों की समस्या, पति द्वारा बार-बार प्रताड़ित अपमानित होने की समस्या, स्त्री अधिकार की समस्या, ससुराल की समस्या, पितृ सत्ता की समस्या आदि दिखाई पड़ती है। लेखिका ने अपने जीवन के हर संघर्ष को पार करते हुए भी अपने प्रतिभा को विलुप्त न होने दिया। उनका कहना है कि 'घर में तो सब कुछ इसी तरह चलता रहता था, पर मेरी सृजनात्मक प्रक्रिया हर चट्टान से टकराती हुई, निर्बंध चलती रहती थी। उसकी ऊर्जा का तेज कभी कम नहीं हुआ। कम-से-कम समय में बिना किसी अतिरिक्त सुविधा के मेरी लेखनी, कोई कागज पर, कहानियों को आकार देती थी।' [6]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में नारी जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ तत्कालीन समस्याओं के विविध आयामों को भी दिखाया गया है। स्त्री महिला लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में पितृ सत्तात्मक समाज में एक नारी की सत्ता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अस्मिता, अधिकार, जीवन के अहम मूल्यों को समान रूप में पाने की अभिलाषा व्यक्त की है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन गद्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित है। इस युग में पुरुष आत्मकथा के साथ-साथ महिला आत्मकथाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वातंत्र्योत्तर काल से ही आत्मकथा लेखन शैली में एक नवीन रूप का संयोजन हुआ है। एक आत्मकथाकार अपने जीवन के सभी दस्तावेजों को अर्थात जीवन की सकरात्मक-नकरात्मक दोनों पहलुओं को क्रमानुसार ईमानदारी से पाठक के समक्ष रखता है, जिनके माध्यम से पाठकवर्ग लाभान्वित होता है। आत्मकथाकारों के यथार्थ संघर्ष के फलस्वरूप पाठकवर्ग में प्रोत्साहन एवं प्रेरणा की एक नई उमंग दिखने लगती है। प्रस्तुत अध्ययन में स्त्री आत्मकथा के माध्यम से भारतीय साहित्य एवं समाज-व्यवस्था में स्त्री की अस्मिता, मर्यादा तथा मूल्यों के विविध पक्ष को दर्शाया गया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. नगेंद्र, डॉ. आस्था के चरण, पृ.सं. 202
2. सिंह, बच्चन. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.सं. 493
3. पुष्पा, मैत्रेयी. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ.सं. 309
4. गुप्ता, रमणिका. हादसे, पृ.सं. 132
5. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या, पृ. सं. 264
6. सौनरेक्सा, चंद्रकिरण. पिंजरे की मैना, पृ.सं. 219

सहायक ग्रंथ :

1. खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2008
2. पुष्पा, मैत्रेयी. कस्तुरी कुण्डल बसै, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स, 2011
3. सौनरेक्सा,चंद्रकिरण, पिंजरे की मैना, नई दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन, 2008
4. गुप्ता, रमणिका, हादसे, दिल्ली, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2005

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आकलन

मंगलेश डबराल की कविताओं में समकालीन संवेदना के विविध आयाम

सूर्जलेखा ब्रह्म

शोधार्थी, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
6003427091
sbrahma7576@gmail.com

शोध सार :

समकालीन कविता तेजी से बदलते सामाजिक परिवेश के यथार्थ को प्रतिबिंबित करती है। समकालीन कविता में कवि अपने समसामयिक समय को पहचानते हुए अपनी भावनाओं को कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं, जो कल्पना की सीमाओं के इर्द-गिर्द नहीं घूमती, बल्कि अपने युग की समस्याओं से जूझती है और उन पर सवाल उठाती है। कवि मंगलेश डबराल का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब देश और समाज की जनता निराशा से भरी हुई थी। इसी बीच कवियों ने आम जनता को ध्यान में रखते हुए अपनी अभिव्यक्ति को कविता का रूप दिया, जिसे आज 'समकालीन कविता' के नाम से जाना जाता है। कवि मंगलेश डबराल की कविताओं में अपने समय की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। उनकी कविताएँ किसी वर्ग या समाज विशेष पर आधारित न होकर संपूर्ण समाज में घटित हो रही स्थितियों का आकलन करती हैं। उनकी कविताओं में सदियों से चली आ रही भ्रष्ट नीतियों के खिलाफ आवाज उठाने और समाज को जागरूक करने का हर संभव प्रयास हुआ है।

बीज शब्द :

समकालीन कविता, यथार्थ, भ्रष्टाचार, स्त्री, पुरुष समाज, शोषण, शोषित आदि।

मूल आलेख :

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि मंगलेश डबराल का जन्म गढ़वाल जिले के काफलपानी नामक गाँव में हुआ था। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, वृक्षों, वनों तथा प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण स्थान पर जन्म लेने के कारण कवि का 'प्रकृति प्रेमी' होना स्वाभाविक है। विशेषत: उन्हें कवि के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त हुई। कवि के अलावा वे एक सफल पत्रकार और अनुवादक भी थे। उनकी कविताओं से हमें पता चलता है कि वे अपने समय के प्रति कितने सजग थे। वे अपने समय की माँग के अनुरूप कविताएँ प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। उनकी कविताओं में हम उनके समय और काल के सभी आयाम देख सकते हैं। एक रोता हुआ बच्चा, एक

चीखती हुई औरत, न्याय पर अन्याय की जीत, दिनदहाड़े लूटा जा रहा आम आदमी, ये सभी समसामयिक विषय उनकी कविताओं में दिखाई देते हैं। आधुनिकीकरण के इस युग में समाज का व्यापक विस्तार हुआ है, लेकिन आम आदमी वहीं का वहीं रह गया है। समकालीन कविता की ये विशेषताएँ हम कवि मंगलेश की कविताओं में देख सकते हैं। समकालीन कविता में कवि मंगलेश का स्थान बताते हुए विजय कुमार लिखते हैं, 'समकालीन कविता की अपनी कुछ रूढ़ियाँ हैं, जो मंगलेश के कवि स्वभाव में प्रकट हुई हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मंगलेश की पूरी काव्य प्रकृति संवेदनशील चित्र देने और यथार्थ में एक प्रभाव को प्रस्तुत कर देने तक सीमित है।' [1] उसी प्रकार प्रयाग शुक्ल मंगलेश डबराल की कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'उनकी कविता में रोजमर्रा की जिंदगी के संघर्ष की अनेक अनुगूँजें हैं, जो विचलित करती हैं। हमारे समय की तिक्तता और मानवीय संवेदनावों के प्रति घनघोर उदासीनता के माहौल से उपजा है, उनकी कविता का दु:ख। यह दु:ख मूल्यवान है, क्योंकि इसमें बहुत कुछ बचाने की चेष्टा है।' [2]

किसी भी रचनाकार का कर्म केवल वास्तविक धरातल पर ही नहीं बल्कि संपूर्ण प्रक्रियाओं पर होना चाहिए। मात्र कल्पना के आधार पर ध्यान न देकर भाषा पर भी रचनाकारों का संपूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक कवि या लेखक को हमेशा ऐसी चीजों से बचना चाहिए, जहाँ केवल कल्पना का भाव हो। एक लेखक की सार्थकता इसी में है कि वह अपने समय एवं समाज से हमें परिचित करा पा रहा है, जिस मामले में मंगलेश डबराल अछूते नहीं रहे।

सामाजिक चेतना हो या राजनीतिक – उनका कवि कर्म कहीं भी अछूता नहीं रहा। समाज में व्याप्त यथार्थता को ज्यों-के-त्यों अपनी कविताओं में उन्होंने उतार दिया। सन 1981 में प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' में उनकी एक अविरल चिंता व्यक्त होती है, जहाँ उन्हें पुरानी स्मृतियों की याद आती हैं। वह खुला आसमाँ जहाँ पहाड़ और लालटेन दोनों ही मौजूद थे। इस संग्रह की कविताओं में मंगलेश थके और हारे हुए तो प्रतीत होते हैं, मगर सभी समस्याओं एवं मान्यताओं से

मुठभेड़ कर बदलाव लाने की आशा भी रखते हैं। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता के आरंभ में ही वह लिखते हैं –

''जंगल में औरते हैं
लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश
जंगल में बच्चे हैं असमय दफनाए जाते हुए
जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं डरते खाँसते
अंत में गायब हो जाते हुए
जंगल में लगातार कुल्हाड़ियाँ चल रही हैं
जंगल में सोया है रक्त।'' [3]

कवि ने शोषित एवं शोषक वर्ग का चित्रण मार्मिक

ढंग से किया है। वह चाहते हैं कि देश की उन्नति के लिए शोषण के प्रति जोर-शोर से विरोध किया जाए। हर वर्ष कई किसान शोषण का शिकार होकर आत्महत्या कर लेते हैं। किसान एक वक्तत की रोटी के लिए जमींदार के पैरों तले दबा रहता है। खेत, पशु, स्त्रियों के गहने गिरवी रखे जाते हैं, मगर अंतत: उसे अपने हक का मूल्य तक ठीक से नहीं मिल पाता, वह लाचार और बेबस है, अपने भूख और पेट के आगे। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता में कवि ने 'लालटेन' के माध्यम से इन्हीं वर्जनाओं को तोड़कर आगे आने को कहा है। जैसे-

'दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर
एक तेज आँख की तरह
टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई
देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत
बिलखती स्त्रियों के उतारे गए गहने
देखो भूख से बाढ़ से महामारी से मरे हुए
सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों पर।' [4]

उन्होंने पूँजीपति वर्ग का भी विरोध किया है। पूँजीपति वर्ग सदैव गरीबों का शोषण करता आया है। अमीर और अमीर होते जा रहे हैं और गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। आज सत्ता किसी को भी कहीं भी, किसी भी मोड़ पर ले जा सकती है, आज हम सब इस सत्ता के सेवक बन गए हैं। मंगलेश डबराल ऐसी ताकत और व्यवस्था के प्रति करारा व्यंग्य करते हुए 'ताकत की दुनिया' कविता में लिखते हैं -

'ताकत की दुनिया में जाकर मैं क्या करूंगा
मैं सैकड़ों हजारों जूते चप्पल लेकर क्या करूंगा
सबकुछ छीनकर किसी को क्यों भेजूँगा पाताल' [5]

पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों को हमेशा से नीचे रखा गया है। वह बस घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहती है। अपने अस्तित्व की तलाश कर रही स्त्री न तो घर से बाहर निकल पाती है और न ही समस्या से पूरी तरह वाकिफ होती है। स्त्रियाँ हमेशा से ही छल और कपट के चक्र में फँसी रही हैं। कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी वह पारिवारिक संरचना को नहीं भूलती। डबराल ने अपनी कविताओं में स्त्रियों की इन यातनापूर्ण स्थितियों का चित्रण किया है। एक महिला परिवार से लेकर बच्चों तक सभी कठिनाइयों से खुद को बचाने की कोशिश करती है, लेकिन पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री मन को पोषित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया है। वह हमेशा उसे बेड़ियों और जंजीरों से बाँधे रखने की कोशिश करता रहा है। कवि ने अपनी कविता 'एक स्त्री' के माध्यम से स्त्रियों के दर्द और पीड़ा को समाहित कर उनमें चेतना जगाने का प्रयास किया है।

'एक आँख से हँसती एक आँख से रोती हुई
वह फिर से आ पहुँचती है पुरुष के सामने
जैसे उसका कुछ न छिना गया हो
जैसे वह उसी तरह करती आ रही हो प्रेम।' [6]

इसी कविता में आगे लिखते हैं -

'सारा दिन काम करने के बाद
एक स्त्री याद करती है
अगले दिन के काम
एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है
उसके पैरों के निशानों पर
अपने पैर रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठती निगाह।' [7]

आज आधुनिक परिवेश ने लोगों में कई बदलाव ला दिए हैं। जैसे-जैसे आधुनिकता बढ़ती गई, मानव जीवन का मूल्य कम होता गया। भ्रष्टाचार और बुराई के बीच मनुष्य और अधिक विकसित होने लगा। परिवार में प्रेम संबंध टूटने लगे हैं। मोबाइल फोन और इंटरनेट जैसी सुविधाओं ने इंसानों पर कब्जा कर लिया, हर कोई अपने आप में व्यस्त रहने लगा, टेलीग्राम के माध्यम से संदेश भेजे जाने लगे, लोग एक ही घर में रहते हुए भी एक-दूसरे से अलग रहने लगे, मानो अजनबीपन का शिकार हो गया हो, पारंपरिक मान्यताओं की बलि चढ़ा दी गई। देखा जाए तो मनुष्य का ईश्वर पर से विश्वास काफी हद तक टूटने लगा। जन्मदाता माता-पिता, प्रेम और विवाह जैसे सार्थक एवं पवित्र बंधन को मात्र समझौता एवं आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानने से बोझ महसूस करने लगे। इन वर्तमान स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए कवि अपने काव्य

संग्रह 'अपने घर का रास्ता' में कहते हैं –

'बहुत बड़े इस शहर में
हमें भी मिली छोटी सी एक जगह
थोड़ी सी हवा एक बिस्तर
मुसीबतें याद रखने के लिए
एक डायरी
सुबह उठकर सामने से आते
आदमी से पूछा अच्छा तो आप भी है
इस शहर में' [8]

अमेरिका में रहते हुए कवि को यह एहसास हुआ कि वहाँ भारत से भी ज्यादा हिंसा और नफरत है, जिसे किसी के सामने व्यक्त नहीं किया जा सकता। अमेरिका में उन्होंने अनेक संसाधन देखे, विकास को सातवें आसमान पर छूते देखा, लेकिन उन्हें एहसास हुआ कि किसी को किसी से कोई सहानुभूति नहीं है। हर कोई अपने में मस्त है, इंसानियत जैसे शब्द उन्हें शोभा नहीं देते। आज अस्तित्व शब्द इतना आगे बढ़ चुका है कि इंसान को सिर्फ अपने अस्तित्व की ही चिंता है। मानव मूल्य की इन्हीं चिंताओं से ग्रस्त होकर कवि 'कागज की कविता' के माध्यम से अपनी अभिव्यक्तियों को व्यक्त करते हैं –

'अब हम लगभग निशब्द हैं
हम नहीं जानते कि क्या करें
हमारे पास कोई रास्ता नहीं बचा
कागजों को फाड़ते रहने के सिवा' [9]

संगीत भावनाओं की एक अभिव्यक्ति है। कवि के घर पर ही संगीत का माहौल होने के कारण संगीत में उनकी काफी रुचि रही है। अपने पिता, दादा से उन्हें संगीत का संस्कार मिला था, जिसे आगे बरकरार कर उन्होंने 'आवाज भी एक जगह है' नामक कविता संग्रह का प्रकाशन किया। इसमें संगीत के बहाने हमारी समाज व्यवस्था, जात-पात पर करारा प्रश्न किया गया है। इस संग्रह के द्वारा कवि हमें अपने समय से परिचित कराते हुए यह बताते हैं कि एक कलाकार का केवल कलाकार होना ही काफी नहीं है। कहा जाता है कि संगीत के पंडित 'केशव अनुरागी' ढोल के भीतर समाये रहते हैं, ढोल उनके लिए समुद्र के समान विशाल है, जिसे सीखने की प्रक्रिया कभी खत्म नहीं होती। ढोल के सैकड़ों ताल और शब्दों को वह किसी सीमा में बाँध नहीं सकते, मगर उनकी पीड़ा यह थी कि वह अछूत थे, जिसे कवि 'केशव अनुरागी' शीर्षक कविता के बहाने दर्शाते हैं–

'मैं हूँ अछूत, कौन कहे मुझे कलाकार
मुझे ही करना होगा
आजीवन पायलागन महराज जय हो सरकार।' [10]

इस प्रकार सामाजिकता के यथार्थ चित्रण के साथ-साथ कवि मंगलेश डबराल का राजनीतिक चित्रण भी अत्यंत प्रभावशाली है। भारत की राजनीति और राजनेताओं से कवि मंगलेश अच्छी तरह से वाकिफ थे, फिर भला उनकी कविताओं में राजनीतिक विषय कैसे चूक जाते। वे जानते हैं कि किस प्रकार निर्धन जनता को फँसाकर उसका शिकार किया जाता है। राजनीति के क्षेत्र में फैले अन्याय, अत्याचार, भ्रष्ट सत्ता एवं सत्ताधिकारियों के विरोध में वे खड़े रहे हैं। वे ऐसे कवियों पर व्यंग्य करते हैं, जो राजनेताओं की चाटुकारिता करते हुए उन्हें सलाम करते हैं। इसी प्रकार आज राजनीति का स्वरूप बदल चुका है, वास्तव में नेता आज संपत्ति संचयन में अधिक व्यस्त हैं। हमारी जनता भी हर बार किसी के बुने हुए जाल में फँस जाती है। एक अच्छे, सच्चे मार्गदर्शक के बजाय वह हमेशा गलत रास्ता चुनने को मजबूर हो जाते हैं। इन सबके प्रति निडर होकर कवि लिखते हैं –

'हमारे शासक हर वक्त देश की आय बढ़ाना चाहते हैं
और इसके लिए वे देश की भी परवाह नहीं करते हैं' [11]

इसी तरह 'सफल कवि' कविता में कहते हैं –

'गुजर गयी कई पीढ़ियाँ
सफल कवियों की इस शहर में
फिलहाल देखिये सामने के फोटों में
एक सफल नेता को विनम्र हाथ जोड़ रहा है
एक सफल कवि' [12]

इन सभी के बावजूद वह सफल कवि और नागरिक की तरह स्वच्छ समाज की कल्पना कर निराशा में आशा भरते हैं। वह सभी को उम्मीदों को कायम रखते हुए आगे बढ़ने और न्याय के प्रति सचेत होने को कहते हैं। वे लिखते हैं –

'उठो और चल दो
हम जानते हैं
धुआँ खून और चीख बहुत पहले से मौजूद है
इन सबकी छाप है हमारे विचारों पर
अपने विचारों से ज्यादा दूर नहीं गए हैं हम' [13]

अत: हम कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल का संपूर्ण साहित्य उनके जीवनानुभवों का यथार्थ प्रतिबिंब है। उनका साहित्य वस्तुजगत के साथ-साथ कला की दृष्टि से भी समृद्ध है। प्रकृति प्रेमी कवि मंगलेश डबराल ने जो अनुभव किया, उसी को साहित्य जगत में ज्यों-के-त्यों हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समकालीन कविता ने जीवन के टूटते-बिखरते मूल्यों को तराशने का प्रयास किया है। जीवन के तमाम संघर्षों को पिरोने का काम समकालीन कविताओं में किया गया है, जिसे मंगलेश डबराल ने अपनी कविताओं में व्यक्त भी किया है। मंगलेश डबराल ने एक सफल नागरिक और कवि के सभी कर्तव्यों का पालन करते हुए समाज में पनप रहे हर पहलू पर प्रकाश डाला है। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की वास्तविक तस्वीर व्यक्त करते नजर आते हैं। लेखक चाहे किसी भी कालखंड का हो, उसका स्वभाव और संघर्ष उसकी रचनाओं में झलकता है, यही कारण है कि कवि मंगलेश डबराल के साहित्य में उनके जीवन की यादें, संघर्ष, आम जनता के सुख-दुख का वर्णन मिलता है। समकालीन कवियों में मंगलेश डबराल एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने समकालीन कवियों की संवेदनाओं को आत्मसात कर, उनके साथ कदम मिलाकर चलते हुए और समय के प्रति सजगता को अपने अंदर जीकर समकालीन कविता में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। ❑

संदर्भ सूची :

1. साठोत्तरी हिंदी कविता की परिवर्तित दिशाएँ, विजय कुमार, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, 1986, पृष्ठ- 260
2. भूमंडलीकरण और समकालीन हिंदी कविता, डॉ. श्यामबाबू शर्मा, विकास प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-185
3. पहाड़ पर लालटेन, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ- 64
4. वही, पृष्ठ- 65
5. नये युग में शत्रु, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013, पृष्ठ- 36
6. पहाड़ पर लालटेन, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ- 18, 19
7. वही, पृ. 21.
8. घर का रास्ता, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017, पृष्ठ- 76, 77
9. हम जो देखते हैं, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015, पृष्ठ- 32
10. आवाज भी एक जगह है, मंगलेश डबराल, वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ- 29
11. वही, पृष्ठ- 24, 25
12. घर का रास्ता, मंगलेश डबराल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017, पृष्ठ- 50
13. वही, पृष्ठ- 61

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

समन्वय

भारतीय नेपाली साहित्य और संत-काव्य परंपरा

डॉ. गोमा देवी शर्मा

सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय-784028
8638505492
gomaadhikaris@gmail.com

शोध सार :

भारत भूमि में सुदीर्घ काल से नेपाली साहित्य का सृजन होता आ रहा है। समय के साथ देश की बदलती सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्यों ने अन्य भारतीय साहित्य की तरह इसे भी प्रभावित किया है। युगीन परिवर्तन के अनुरूप इसमें विभिन्न विचारधाराओं एवं प्रवृत्तियों का समावेश देखा जाता है। इसकी विभिन्न रचना प्रवृत्तियों में हम भक्तिमूलक रचनाओं को भी पाते हैं। हिंदी साहित्य की भाँति इसमें भी सगुण-निर्गुण भक्ति साहित्य की पुष्ट परंपरा विद्यमान है, जो शोध का विषय है। भारतीय नेपाली साहित्य की सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत कृष्ण भक्ति एवं राम भक्ति तथा निर्गुण भक्ति धारा में हम जोसमनी संत परंपरा को पाते हैं। इस संप्रदाय के पोषक संत ज्ञानदिलदास हैं। उन्होंने इस संप्रदाय के माध्यम से निर्गुण-निराकार परब्रह्म की उपासना पद्धति को आलोकित किया है। उन्होंने अपनी काव्य पंक्तियों में धर्म के नाम पर किए जाने वाले वाह्याचार, आडंबर, सामाजिक वर्गभेद, लिंगभेद, जातिवाद जैसी धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया है। निर्गुणोपासना, सहज साधना पर बल, ज्ञान को महत्व देना, नारी-पुरुष को बराबर मान्यता प्रदान करना आदि जोसमनी संत काव्य परंपरा की अन्य विशेषताएँ हैं।

बीज-शब्द :

निर्गुण भक्ति साहित्य, संत-काव्य परंपरा, जोसमनी काव्य-धारा, निर्गुणोपासना, भेदभाव, आडंबर, ज्योतिस्मरणी, परब्रह्म, परम तत्व, वाह्याचार, संप्रदाय, झोली, तुम्बा, चिमटा, बाना।

प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य में निर्गुण भक्ति साहित्य या संत साहित्य की जो एक लंबी परंपरा रही है, उसकी एक कड़ी भारतीय नेपाली निर्गुण भक्ति साहित्य के साथ जुड़ती है। निर्गुण उपासना भक्ति की वह पद्धति है, जिसमें निर्गुण निराकार परब्रह्म भक्त का साध्य होता है। हिंदी साहित्य में यह पंद्रहवीं शताब्दी में ज्ञानमार्गी संत कवि कबीर की वाणियों से उद्भासित हुई, पर इसके बीज आठवीं शताब्दी में सिद्ध संतों एवं कालांतर में नाथ संतों की वाणियों में प्राप्त होता है। इसमें शंकराचार्य का

अद्वैत मत, आत्मा और परमात्मा की अखंडता, उपनिषद में प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत और माया संबंधी विचारधारा, सूफी मत का प्रेम जैसे सिद्धांतों का गहरा प्रभाव रहा है। सगुण उपासना का खंडन, धार्मिक वाह्याचार का विरोध, सहज रूप से परम तत्व की साधना, सहज प्रेम से ईश्वर की प्राप्ति संत मत के मूल तत्व हैं। रामानंद, कबीरदास, रैदास, नानकदेव, दादूदयाल, मलूकदास, मलिक मुहम्मद जायसी आदि हिंदी के प्रमुख निर्गुण कवि हैं और संत ज्ञानदिलदास भारतीय नेपाली साहित्य के निर्गुण भक्त कवि हैं।

विषय प्रतिपादन :

समग्र नेपाली साहित्य में संत काव्य-धारा में जोसमनी संतों का नाम उल्लेखनीय है। इस परंपरा का प्रमुख प्रसार केंद्र दार्जीलिंग, सिक्किम तथा भारत के अन्य नेपाली भाषी बहुल क्षेत्रों में देखा जाता है। निर्गुणोपासना पर बल देकर धार्मिक मतभेदों को दूर करने एवं धार्मिक एकता की स्थापना में इसकी क्रांतिकारी भूमिका रही है।

जोसमनी संप्रदाय के नामकरण को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इतिहासविद डॉ. दयाराम संभव एवं आलोचक जनकलाल शर्मा जैसे विद्वान यह संभावना व्यक्त करते हैं कि इस संप्रदाय के संस्थापक का नाम जोसमनी था। अत: प्रवर्तक के नाम पर यह संप्रदाय आगे बढ़ा। यहाँ महत्वपूर्ण यह बात है कि जोसमनी संतों की सूची में जोसमनी नामक संत का नाम प्राप्त नहीं होता तो इसे पुष्ट आधार के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। डॉ. मथुरादत्त पांडे इसे 'ज्योतिर्मनी' शब्द से घिस-पिटकर कालांतर में जोसमनी बनने की संभावना व्यक्त करते हैं।

इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि जोसमनी संप्रदाय का साध्य परम तत्व है। यह मानव मन में ज्ञान की अंतर्ज्योति जलाकर काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे सांसारिक विकारों को दूर करने का आग्रह करता है। जोसमनी संतों ने ज्योति स्वरूप परब्रह्म के स्मरण एवं साधना पर बल दिया है। इस संप्रदाय की साधना पद्धति, सिद्धांत, मान्यता, आचरण आदि के गहन अध्ययन करने पर तथ्य सामने आता है कि इसे आरंभ में ज्योति स्वरूप परब्रह्म को स्मरण करने वाला ज्योतिस्मरणी कहा जाता था। कालांतर में उच्चारण की सुविधा के कारण यह शब्द घिस-पिटकर जोसमनी बन गया है। संत शशिधर को इस संप्रदाय का आदि संस्थापक माना जाता है। घिर्जेदिलदास, धरनीदास, मंगलदास, कमलदास, अखड़दिलदास, सीतारामदास, ज्ञानदिलदास, रविदिलदास, ब्रह्मदिलदास, गोविंददास आदि इस संप्रदाय के अन्य प्रमुख संत हैं। इनमें से ज्ञानदिलदास सबसे समर्थ संत के रूप में सामने आते हैं।

जोसमनी संत संप्रदाय ने सामाजिक भेद-भाव के निवारण में महती भूमिका निभाई। इसने सबसे पहले नारी को संतमत में दीक्षा लेने का अधिकार प्रदान किया गया। इस परंपरा में दीक्षित पुरुष संत के नाम के साथ दिलदास और नारी संत के नाम के साथ दिलमाई जोड़ने की परंपरा बनी।

जोसमनी संत संप्रदाय में कोई भी आस्थावान व्यक्ति दीक्षा लेने के लिए स्वतंत्र था। प्रवेश लेने वाले व्यक्ति को गुरु द्वारा विधिवत दीक्षा दी जाती थी। दीक्षितों की तीन श्रेणियाँ होती थीं- शब्दी, गुरुमुखी और गुरु पंचा। जो गुरु से सिर्फ शाब्दिक दीक्षा प्राप्त करते उन्हें शब्दी शिष्य कहा जाता। ऐसे शिष्य संप्रदाय के साधारण सदस्य मात्र कहलाते थे। गुरु में आस्था रखते हुए वे अपना गृहस्थ जीवन बिताने के लिए स्वतंत्र होते थे।

गुरु के सान्निध्य एवं निर्देश के अनुसार शिक्षा पाने वाले शिष्यों को गुरुमुखी शिष्य कहा जाता था। ऐसे शिष्य संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद गुरु से कुंडलिनी जागरण, सहस्त्रदल कमल और अष्टचक्र आदि की शिक्षा ग्रहण करता। ये गुरु परंपरा के अनुसार विशेष बाना धारण करते। बाना के अंतर्गत संप्रदाय का मूल मंत्र, अजपा गायत्री मंत्रजाप के लिए माला और वस्त्र तीन चीजें अनिवार्य मानी जातीं।

गुरु पंचा जोसमनी संप्रदाय में दीक्षित शिष्यों का अंतिम और महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता, जिसमें शिष्य गुरु से पाँच वस्तुएँ प्राप्त करता। गुरु पंचा प्राप्त करने वाले पर शिष्यों को साधना में पारंगत एवं सिद्ध मान लिया जाता था। इसके अंतर्गत उसे गुरु से पाँच वस्तुएँ प्राप्त होतीं -

बाना, झोली, तुम्बा, चिमटा तथा तार। गुरु से इन पाँच वस्तुओं को प्राप्त कर लेने के बाद शिष्य माया मोह के बंधन से मुक्त माना जाता। बाना –पहनने के लिए गेरु या पीत वस्त्र, झोली –भिक्षा पात्र, जिसमें भिक्षाटन में मिली वस्तु रखी जाती और इसे कामधेनु कहा जाता। भिक्षाटन से प्राप्त खाद्य से संतों को मात्र एक जून पेट भरने की अनुमति थी। इससे अधिक संग्रह निषेध था।

तुम्बा चिंडा या लौकी के फल से तैयार किया गया एक जल पात्र है। आगे चलकर बार–बार बदलने की झंझट से मुक्त रहने के लिए धातु के कमंडल प्रयोग में लाए जाने लगे। गुरु प्रदत्त चिमटा रात्रि निवास के समय धूनी (अलाव) के पास गाड़ दिया जाता, जिसकी उपस्थिति में साधक को कोई भी परेशानी नहीं होगी, ऐसी मान्यता थी। तार वाद्य यंत्र के रूप में प्रयोग किया जाता। साधुजन इसे बजा–बजाकर निर्गुण भजन गाते। यह यंत्र लौकी के फल के सहारे बनी एकतारे के समान होती।

जोसमनी संत संप्रदाय के सबसे समर्थ संत ज्ञानदिलदास माने जाते हैं। उन्होंने दार्जीलिंग में धर्मांतरण कार्य में व्यस्त अंग्रेज पादरी टर्नबुल को शास्त्रार्थ में हराकर ईसाइयों के धर्मग्रंथ बाइबिल को जलाया। संतमत का ईसाई मत पर विजय के प्रतीक स्वरूप उन्होंने बाइबिल की राख से कंठी बनाकर अपने शिष्यों को गले में धारण करने दिया। यहाँ से गले में कंठी धारण करने वाले खागी संत और न करने वाले त्यागी संत कहलाए, अर्थात जोसमनी संप्रदाय दो खेमों में बँट गया।

कालांतर में खागियों और त्यागियों की आचार पद्धति में भी थोड़ी भिन्नता आई। खागी खाग (राख) की माला (कंठी)पहनते थे, जबकि त्यागी तुलसी की माला। त्यागियों में मांस–मदिरा वर्जित था, खागियों में नहीं। खागी श्वेत वस्त्र धारण करते, जबकि त्यागी पीत वस्त्र। संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद त्यागियों के लिए शब्दी, गुरुमुखी और गुरु पंचा का पालन अनिवार्य था, जबकि खागियों के लिए इस नियम के परिपालन में शिथिलता थी।

जोसमनी संत परंपरा के उदय काल में नेपाली भाषी समाज धर्मांतरण, धार्मिक शोषण, सामाजिक भेदभाव एवं अन्य प्रकार की सामाजिक विषमताओं से त्रस्त था। नारी सामाजिक अधिकारों से वंचित थी। जोसमनी संतों ने नारी को संत मत में दीक्षा देकर सामाजिक क्रांति लाने का प्रयास किया। उन्होंने ईसाई पादरियों को शास्त्रार्थ में हराकर भोली जनता को धर्मांतरण से बचाने से साथ ही धर्म के नाम पर विघटित हो रहे समाज को बचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई। जोसमनी संप्रदाय ने भक्ति का सहज मार्ग का प्रचार करते हुए हर वर्ग के नारी और पुरुष दोनों को भक्ति का अधिकारी घोषित किया। धर्म की मूल एवं व्यावहारिक बातों का प्रचार करके लोगों को धर्मानुशासन और धर्म के मूल संदेश की ओर आकर्षित किया। धार्मिक आदर्शों के नवीन परिमार्जित रूप की पुनर्स्थापना को लोक जीवन से जोड़ने का पुनीत कार्य किया। धार्मिक पाखंड, जातिभेद, लिंगभेद, वर्गभेद जैसी सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन करके सामाजिक एकता की स्थापना करना इस संप्रदाय का मुख्य उद्देश्य रहा है।

संत ज्ञानदिलदास का परिचय :

ज्ञानदिलदास का जन्म सन 1821 में नेपाल के फिक्कल नामक स्थान में हुआ था। उनका वास्तविक नाम श्रीकृष्ण लामिछाने था। उन्होंने वेदादि धर्म–शास्त्र का गंभीर अध्ययन

किया था। जोसमनी संत परंपरा में दीक्षित होने के बाद वे पूर्ण रूप से संतमत के प्रचार-प्रसार में संलग्न हो गए। संत मत के प्रचार के विरोध में तत्कालीन नेपाल के शासक जंगबहादुर राणा ने उन्हें छह महीने की कारावास की सजा दी। रिहाई के बाद अपने मत का प्रचार करते हुए वे दार्जीलिंग आए। उस समय दार्जीलिंग में ईसाई मिशनरी धर्मांतरण कार्य में सक्रिय थी। ज्ञानदिलदास ने तत्कालीन ईसाई पादरी ए. टर्नबुल को शास्त्रार्थ में पराजित करके उनके धर्मग्रंथ बाइबिल को जला दिया। ईसाई मत पर संतमत के विजय प्रतीक स्वरूप उन्होंने बाइबिल की राख से कंठी बनाकर अपने शिष्यों के गले में धारण करने दिया और उन्हें अपने धर्म की रक्षा एवं सदाचार का उपदेश दिया। उनकी मृत्यु सन 1883 में पश्चिम सिक्किम स्थित गेलिंग गाँव में हुई। आज इस स्थान को गेलिंग धाम या तीर्थस्थल के रूप में जाना जाता है। ज्ञानदिलदास की दो रचनाएँ प्राप्त हैं – उदयलहरी (1877) और झ्याउरे, टुङ ना भजन (1878-79)।

उदयलहरी की रचना दार्जीलिंग में हुई थी। इसमें कुल 109 पद्य हैं। यह झ्याउरे छंद में रचित है। झ्याउरे एक लोक छंद है। इसमें पद लालित्य, माधुर्य भाव, गेयता तथा कल्पना का सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है। इसमें कवि ने परब्रह्म की उपासना, परमपद प्राप्ति, योग साधना, आत्म शुद्धिकरण और परमार्थ हेतु कार्य करने का उपदेश दिया है। गुरु महिमा का वर्णन, मूर्तिपूजा एवं पशुबलि का खंडन, दीनों के प्रति दया भावना आदि उनकी अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ हैं।

झ्याउरे भजन में 24 पद्य संकलित हैं और टुङना भजन में 18 पंक्तियाँ हैं। टुङना तामाङ(एक विशेष समुदाय) समुदाय में प्रचलित लोक छंद है। गीतात्मक, लालित्य से युक्त, सरल भाषा तथा रहस्य बोध इसकी विशेषता है। इसमें ग्रामीण बोली की सहजता पाई जाती है। मझेरी डॉटकॉम में प्रकाशित पारसमणि शम का लेख संत कवि ज्ञानदिलदास से एक उदाहरण प्रस्तुत है –

वंशी बज्यो तिरिरि अनहदको छन् छन्
कमल फुल्यो रन्वन् भमराको भन्भन्
राम जी! जोगी घुम्यो फन् फन् नि।

(भावार्थ – इन पंक्तियों में योग साधना को सरल सहज शैली में समझाने का प्रयास किया है। बाँसुरी बज रही है। अनहद नाद सुनाई दे रहा है। कमल फुल खिलने लगा है। भँवरे पराग में मँडरा रहे हैं। हे राम जी! योगीजन आनंद से झूम रहे हैं। कुंडलिनी अनाहद चक्र को पार करते हुए सहस्रार चक्र तक जाग्रत हो गई है। इससे साधक ब्रह्मलीन हो गया है। वह असीम आनंदानुभूति का अनुभव कर रहा है।)

संत ज्ञानदिलदास रचित ये भजन आज भी गेलिंग धाम के आस-पास, नयाँ बजार, सोरेङ, च्याखुङआदि स्थान में निवास करने वाली सिक्किम की जनता में प्रचलित हैं। सरल एवं ठेठ नेपाली भाषा में सामाजिक विद्रुपता, अंधविश्वास तथा कुरीति के प्रति व्यंग्य तथा गंभीर दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति इन भजनों की मूल विशेषता है। नितांत मौलिक एवं सुबोध होने के साथ-साथ अभिव्यंजना पूर्ण शैली के कारण ज्ञानदिल दास की रचनाएँ अत्यंत ही प्रभावकारी हैं।

संतकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

1. मूर्ति पूजा का खंडन एवं निर्गुण उपासना : जोसमनी संतों ने मूर्ति पूजा के स्थान पर निर्गुण निराकार परब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। उदयलहरी में संत ज्ञानदिलदास कहते हैं –

देवीमाई पत्थर जो पूजी मान्छन्
सतलोक धाममा ती कहाँ जान्छन्। पृ.18

संतकाव्य की मूल भावना निर्गुण ईश्वर की उपासना है। ईश्वर की प्राप्ति शब्द अर्थात ज्ञान के माध्यम से होती है। इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है। शील युक्त चरित्र एवं शुद्ध हृदय से ही ईश्वरोपासना की जा सकती है। शील एवं साधना से फैले सतगुण से तमोगुण नष्ट होता है और निर्गुण ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

2. गुरु की महत्ता : सभी संतों ने ब्रह्म साधना के लिए सतगुरु का पथ प्रदर्शन अनिवार्य माना है। सतगुरु शिष्यों को मुक्ति के रहस्य से परिचय कराकर उनके हृदय में परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम भावना उत्पन्न करते हैं। गुरु

ही शिष्य के हृदय से काम, क्रोध के भाव को जलाकर परंपद का दर्शन कराते हैं। सम्मेलन कविता उदयलहरी से एक उदाहरण प्रस्तुत है –

श्रीगुरु भन्याका गुनका भारी
काम क्रोध सबै दिया जारी।
श्रीगुरु मूर्ति चंद्रमा सेवक नयन चकोर
आठ पहर निरखत रहो गुरु मूर्ति की ओर।

(सकसं. पृ.6)

(भावार्थ – श्री गुरु गुण के खजाने हैं। उन्होंने काम, क्रोध सब जला दिया है। श्री गुरु की मूर्ति चंद्रमा है और सेवक के नयन चकोर हैं, इसीलिए सेवकों के चकोर रूपी नयनों को आठों पहर चंद्रमा रूपी गुरु मूर्ति की ओर निहारते रहना चाहिए।)

3. मिथ्याडंबर तथा वाह्याचार का विरोध : सभी संतों ने धार्मिक रूढ़ियों, मिथ्याडंबरों तथा अंधविश्वासों का विरोध किया है। ज्ञानदिलदास ने धर्म के नाम पर इन्हें पाप बताया है। उन्होंने गरीबों का शोषण करने वाले, धर्म के नाम पर मिथ्याचार करने वाले एवं उपासना के नाम पर पशु बलि देने वालों को नर्क का अधिकारी बताया है।

4. सहज साधना पर बल : संतों ने परंपद प्राप्ति के लिए सहज साधना पर बल दिया है। इसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता नहीं है। घर बैठ–बैठे या गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों का पालन करते हुए तीनों लोकों का सुख प्राप्त किया जा सकता है।

5. लोक कल्याण की भावना : जोसमनी संतों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है। उन्होंने अनेक प्रकार की सामाजिक अनियमितताओं का विरोध किया है। उन्होंने नारी को भी भक्ति की अधिकारिणी बताकर उन्हें अपने संप्रदाय में शरण दी। इन संतों ने धर्म के नाम पर होने वाले पाखंड एवं व्यावहारिक जीवन में आने वाली समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यानाकार्षित करने की चेष्टा की।

7. भाषा : संत कवियों ने काशी प्रचलित हिंदी, संस्कृत, ब्रज भाषा युक्त नेपाली भाषा को न अपनाकर शुद्ध, जन साधारण के द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली नेपाली भाषा को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। संत होने के कारण घुमक्कड़ होना इनका स्वभाव था। अत: अपनी बात एवं सिद्धांत के प्रचार के लिए उन्होंने नेपाली जन भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

8. अलंकार : जोसमनी संत साहित्य का उद्देश्य पांडित्य प्रदर्शन न होकर तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करते हुए समरस समाज की स्थापना उद्देश्य रहा है, इसलिए इन कवियों ने जन बोधगम्य नेपाली भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसी कारण संत साहित्य में अलंकारों की न्यूनता पाई जाती है, फिर भी यदा–कदा उपमा, अनुप्रास, रूपक आदि का प्रयोग स्वाभाविक ढंग से हुआ है।

9. छंद : नेपाली संत–काव्य में छंदों का वैविध्य नहीं है। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए इन संतों ने जन प्रचलित झ्याउरे और टुङ्ना जैसे नेपाली लोक छंदों को अपनाया। संत ज्ञानदिलदास रचित उदयलहरी झ्याउरे छंद में रचित है। झ्याउरे एक नेपाली गेय लोक छंद है, जिसमें मात्रा एवं वर्ण विन्यास का झमेला नहीं होता, फिर भी सामान्यत: सोलह और अट्ठारह मात्राएँ पाई जाती हैं और आठ या नौ में यति होती है। उदयलहरी से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

111 1ऽऽ 111 11ऽ 1 = 16
1. तम रज मारी सतगुन जगाउ ।।
11ऽ ऽ1ऽ 1ऽ1 1ऽऽ = 18
2. सिलको बानले तमोगुन ठेली।।

उपरोक्त प्रथम काव्य पंक्ति में सोलह मात्राएँ हैं और आठ में यति है। दूसरी पंक्ति में अट्ठारह मात्राएँ हैं और नौ में यति है।

निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ :

हिंदी संत काव्य धारा में जो स्थान कबीर का है, वही स्थान समग्र नेपाली साहित्य में संत ज्ञानदिलदास का है। नेपाली साहित्य में निर्गुण भक्ति परंपरा अपेक्षाकृत व्यापक न होते हुए भी समाज और साहित्य में यह अपना विशिष्ट स्थान रखती है। धार्मिक आडंबर एवं विभिन्न सामाजिक

कुरीतियों से ग्रस्त समाज को निर्गुण संतों ने दिशा देने का प्रयास किया। इन संतों के द्वारा सृजित काव्य रचनाओं में तत्कालीन जनप्रचलित नेपाली भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसके कारण इस सामाजिक आंदोलन को जनसाधारण के साथ जुड़ने में सफलता मिली। संस्कृत का गहन ज्ञान होने के बावजूद भी इन संतों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जनप्रचलित भाषा को अपनाया। इसने धार्मिक मतैक्य का खंडन एवं एकेश्वरवाद का प्रचार करके तत्कालीन धार्मिक संप्रदायों में पनपते भेदभाव एवं सामाजिक बँटवारे को दूर करने का प्रयास किया। इसने सबसे पहले नारी वर्ग के लिए भक्ति मार्ग का द्वार खोलकर सामाजिक क्रांति की उद्घोषणा की। इतना ही नहीं, विदेशी मिशनरियों को शास्त्रार्थ में पछाड़कर सनातन धर्म के मूल आदर्श की रक्षा करते हुए धार्मिक विघटन से समाज को बचाने का महत प्रयास भी किया। कुल मिलाकर जोसमनी संत काव्य परंपरा ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा, सिद्धांत और साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का स्तुत्य प्रयास किया है, इसका धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व है। ❑

आधार ग्रंथ :

1. सवाई पच्चीसा – पं. विश्वराज हरिहर शर्मा, गोर्खा पुस्तकालय, वाराणसी, 1994
2. नेपाली एवं हिंदी भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन – मथूरादत्त पाण्डेय, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, 1974
3. नेपाली साहित्यको परिक्रमा – ठाकुर पराजुली, साझा प्रकाशन, नेपाल, दोस्रो स. वि.सं., 2046
4. नेपाली साहित्यको परिचयात्मक इतिहास – डॉ. घनश्याम नेपाल नेपाली साहित्य प्रचार समिति, सिलगढ़ी, 1981
5. भारतीय नेपाली साहित्यको इतिहास – असीत राई, श्यामब्रदर्श प्रकाशन, दार्जीलिंग, 2004
6. भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास – डॉ. गोमा देवी शर्मा, गोर्खा ज्योति प्रकाशन, 2018
7. भारतीय नेपाली साहित्य र साहित्यकार – डॉ. ईश्वर बराल, निर्माण प्रकाशन, सिक्किम, 1998
8. संत ज्ञानदिलदास अध्ययन ग्रंथ – अन्वेषण प्रकाशन – वीरभद्र कार्कीढोली, प्र. जयकुमार राई, सिक्किम, 2015

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

अध्ययन

निराला के उपन्यासों में नारी की सामाजिक समस्या

(‘अप्सरा’, ‘अलका’ और ‘प्रभावती’ उपन्यासों के संदर्भ में)

गजेन्द्र नाथ दास

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-1
9954823258
gajendranathdas@gmail.com

शोध सार :

हिंदी साहित्य के उपन्यासकार सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ के उपन्यास मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं। इन संवेदनाओं में आप नारी को अधिक महत्व देते हुए दिखाई देते हैं। नारी की विभिन्न सामाजिक समस्याओं-विशेषकर विवाह की समस्या, विधवा जीवन की समस्या, दुष्कर्म की समस्या, अपहरण की समस्या तथा इनसे नारी की मुक्ति का स्वर आपके उपन्यासों का मुख्य विषय है। आपके सारे उपन्यासों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन उपन्यासों की विषय-वस्तु तथा उद्देश्य तद्युगीन होते हुए भी आज भी प्रासंगिक हैं और मूल्यांकन की अपेक्षा रखते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं समस्याओं का विवेचन किया गया है।

बीज शब्द :

नारी जीवन, समस्या, शोषण, विधवा, समाधान, सुझाव, प्रयास, नारी हिंसा।

भूमिका :

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ हिंदी साहित्य के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आप कवि के साथ ही उपन्यासकार, निबंधकार, रेखा चित्रकार, जीवनीकार तथा अनुवादक भी हैं। आपके द्वारा रचित उपन्यास हैं - अप्सरा (1931), अलका (1933), प्रभावती (1936), निरूपमा (1936), चमेली (अधूरा, 1936), चोटी की पकड़ (1946), काले कारनामे (1950), इंदुलेखा (अधूरा, 1960)। एक युगद्रष्टा साहित्यकार होने के नाते आपके साहित्य में भारतीय समाज जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है। आपको मुख्यत: कवि के रूप में जाना जाता है और इस कवि रूप की प्रखर रोशनी में आपके कथा साहित्य को अनदेखा करने जैसा महसूस होता है, लेकिन कथा साहित्य, विशेषकर उपन्यास साहित्य की ओर नजर डालें तो वहाँ भी समाज जीवन का अनोखा वास्तविक चित्र मुक्ता की तरह छिपा हुआ है। निराला ने यह चित्र आम भारतीय समाज की नई समस्या के कैनवास पर अंकित किया है, क्योंकि भारतीय समाज की आधी आबादी नारी ही है। नारी समाज गठन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन नारी आज समाज में विभिन्न समस्याओं का सामना कर रही है। निराला ने अपने उपन्यासों में नारी समाज की समस्याओं का निर्मोह विश्लेषण करके यथासंभव समाधान करने का प्रयास भी किया है।

इन विश्लेषणों में आपके उपन्यासों में दीर्घकाल तक समस्या से भरा हुआ मानव जीवन-विशेषकर नारी जीवन की समस्याओं के पहलुओं का उद्घाटन हुआ है। तत्कालीन समाज में जिन समस्याओं से नारी जकड़ी हुई थी, उनसे आज की नारी भी मुक्त नहीं है। आपके उपन्यासों के अध्ययन से यह महसूस होता है कि इसमें वर्णित विषय-वस्तु, आपके विचार तत्कालीन होते हुए आज भी प्रासंगिक हैं। इसलिए निराला के उपन्यासों में नारी की सामाजिक समस्या के संबंध में चर्चा करना इस लेख का प्रमुख विषय है। निराला के उपन्यासों में चित्रित नारी की जो सामाजिक समस्याएँ हैं, वह निम्नलिखित हैं :-

1. विवाह की समस्या :

भारतीय समाज में विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है। इस व्यवस्था के द्वारा एक पुरुष व एक नारी को पति-पत्नी की स्वीकृति दी जाती है। इस स्वीकृति के आधार पर वे सांसारिक जीवन बिताते हैं। एक सुश्रृंखलित मानव जीवन के लिए विवाह संबंधित नियम कोई अस्वीकार नहीं करता। विवाह को एक पवित्र बंधन कहा जाता है। इसके द्वारा दो परिवार, दो समाज भी जुड़ जाते हैं। इस पवित्र बंधन से जुड़ी एक सामाजिक व्यवस्था में समस्या का उद्‌भव नहीं होना चाहिए, लेकिन विवाह संबंधित कुछ कारकों द्वारा उत्पन्न कुछ समस्याएँ नारी को प्रत्यक्ष रूप से और समाज को परोक्ष रूप से प्रभावित किए बिना नहीं रहतीं। बाल विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि समस्या उद्‌भव करने वाली विवाह प्रक्रिया है।

आज भारतीय समाज की एक प्रमुख समस्या है बाल विवाह। इस समस्या ने समाज में एक व्याधि का रूप ले लिया है। ''अनुमान के तौर पर हर साल भारत में 18 साल से कम उम्र की लड़कियों के विवाह का आँकड़ा प्रतिवर्ष 15 लाख है।''[1] एक प्रगतिशील देश भारत के लिए यह एक भयंकर घटना है, क्योंकि इससे बालिका की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि पर प्रभाव पड़ता है। विवाह के लिए लड़का हो या लड़की-उनका शारीरिक तथा मानसिक रूप से परिपक्व होना जरूरी है। इसी हेतु विभिन्न दिशाओं की जाँच-पड़ताल के बाद भावी दंपतियों के हितों को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान ने विवाह की उम्र लड़का-लड़की के लिए क्रमश: 21 और 18 वर्ष की है। इस विधि के उल्लंघन में कड़ी सजा की व्यवस्था है, लेकिन अंधविश्वास, कुप्रथा, अशिक्षा, आर्थिक स्थिति आदि के कारण कुछ माता-पिता और अभिभावक कम उम्र में ही अपने बच्चों का विवाह करा देते हैं। माता-पिता के अंधविश्वासों की जड़ में है - कुलीनता संबंधी भ्रांत धारणा, कौमार्य संबंधी मिथक। कुलीनता को महत्व देकर अभिभावक कम उम्र की लड़की का कुलीन अधिक उम्र के वर के साथ विवाह करा देते हैं। हिंदू समाज में विवाह के पूर्व लड़कियों की कौमार्य रक्षा करना महत्वपूर्ण है। बहुत अभिभावक इसी डर से बाल्यावस्था में ही विवाह करा देते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण जो अभिभावक दो वक्त की रोटी का इंतजाम नहीं कर सकते, वे कम उम्र में लड़की का विवाह कराकर इस संकट से मुक्त होना चाहते हैं। अशिक्षित माता-पिता, जिन्हें बालविवाह के दुष्परिणाम का ज्ञान नहीं है, वे बढ़े उत्साह के साथ अवसर मिलने पर बाल विवाह करा देते हैं। 'लड़की है तो विवाह करना ही पड़ेगा' इस सिद्धांत के आधार पर लोग कम उम्र में बच्चियों का विवाह करा देते हैं।

निराला बाल विवाह के तीव्र विरोधी थे। आपने आज से 80 वर्ष पहले ही विवाह के उपयुक्त उम्र के संबंध में लिखा था, ''विवाह इतना जोरदार शब्द है कि यह स्वयं स्वतंत्रता का द्योतक है। इसके लिए स्त्री और पुरुष की स्वतंत्र शक्ति उत्तरदायी है। बालक-बालिका इस शब्द को सार्थक नहीं करते। इसलिए हमारे विचार से, विवाह की उम्र कुमार के लिए 25 से 30 साल तक ठीक है और कुमारी के लिए 18 से 22 साल तक। इतनी उम्र तक दोनों का मानसिक तथा शारीरिक विकास हो जाता है और वे अपने मनोनुकूल पति-पत्नी का निर्वाचन कर सकते हैं। संसार के उत्तरदात्वि को भी अच्छी तरह समझ जाते हैं।''[2] लेकिन दकियानूसी लोग अपना पुण्य अर्जन तथा लड़की का बोझ अपने ऊपर से हटाने के लिए कम उम्र में ही उनका विवाह करा देने के लिए तैयार हो जाते हैं। उन लोगों पर तीव्र आक्षेप करते हुए आप लिखते हैं, ''जिन्हें तीन साल बाद भी कन्या का विवाह करने पर रोहिणी दान का फल प्राप्त होता, वे गौरी के पिता से भी प्रगति में आगे हो रहे हैं।''[3] निराला के उपन्यासों में बाल विवाह का प्रसंग नहीं है, लेकन आपके रेखाचित्र 'बिल्लेसुर बकरिहा' और

कुछ कहानियों में बाल विवाह के प्रसंग प्रस्तुत होते हैं। ज्योतिर्मयी कहानी में नायिका ज्योतिर्मयी विजय से कहती है, ''मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गई, जानती भी नहीं पति कैसे थे और विधवा हो गई।'' [4] ससुराल देखे बिना वैधव्य सहना कितना यंत्रणादायक है, वह विधवाओं के अलवा कोई समझेगा नहीं। निराला अपनी रचनाओं में बाल विवाह से उत्पन्न दुष्परिणामों का उल्लेख करके समाज से इसे दूर करना चाहते थे।

बहुविवाह में पति लड़की पर संतानहीनता, बीमारी, चारित्रिक दोष आदि का आरोप लगाकर दूसरी-तीसरी बार विवाह कर लेता है, जो पहली पत्नी के लिए चरम अपमान की बात है। कानूनी तौर पर पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी करने वालों के लिए कड़ी सजा का प्रावधान है। अनमेल विवाह में विवाहित दंपति के बीच उम्र, ज्ञान, शिक्षा, शारीरिक अवयव में अनमेल देखा जाता है, जिसमें वैवाहिक सुख का प्राय: अभाव देखा जाता है। विवाह में दहेज प्रथा विवाह से जुड़ी एक घातक समस्या है, जिसके कारण दुल्हन को यानी पत्नी को कभी-कभी मौत के घाट उतार दिया जाता है। निराला जी बहुविवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि से नाराज थे, लेकिन आप अपने उपन्यासों में इन प्रसंगों पर मौन रहे। सिर्फ 'प्रभावती' उपन्यास में बहुविवाह और 'ज्योतिर्मयी' कहानी में दहेज का प्रसंग सामने आया है। 'प्रभावती' में पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता के प्रेम प्रसंग में प्रभावती के मनोभावों के संदर्भ में निराला लिखते हैं, ''प्रभा यद्यपि बहुविवाह वाले भाव से घृणा करती थी, फिर भी यहाँ सत्य प्रेम की मर्यादा उसके हृदय में प्रतिष्ठित हो गई। इस भाव का विरोध वह न कर सकी।''[5] 'ज्योतिर्मयी' कहानी में बाल विधवा ज्योतिर्मयी का विवाह बंदोबस्त करते समय विजय के चाचा कृष्ण शंकर ज्योतिर्मयी के लिए बनाए गए पिता पं सत्यनारायण से कहते हैं, ''बात यह है पंडितजी कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रुपया तो लड़के की पढ़ाई में ही लग चुके हैं। लखनऊ के वाजपेयी आए थे, हमारा-उनका संबंध भी है, छह हजार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको खर्च भी पूरा न मिला तो लड़के को पढ़ाकर हमने फायदा क्या उठाया?''[6]

इसी तरह बाल विवाह के कारण ससुराल देखे बिना वैधव्य सहना, दुष्परिणाम भुगतना, बहुविवाह के कारण सौतन के साथ जीवन बिताना, अनमेल विवाह के कारण हुए किसी पत्नी की मानसिक यंत्रणा, दहेज के कारण हुए नारी पर अत्याचार सिर्फ भुक्तभोगी नारी ही समझती है। निराला अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी समाज को इन समस्या से मुक्त करना चाहते थे।

2. विधवा नारी की समस्या :

यह सभी मानते हैं कि विधवा जीवन यातनापूर्ण और समस्या से जर्जर है। कम उम्र वाली विधवाओं के लिए यह समस्या और भी गंभीर है। यह समस्या न सिर्फ एक विधवा को, बल्कि एक परिवार और समाज को भी प्रभावित करती है। विधवा समस्या की इस गंभीरता को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ 2011 से 23 जून को अंतर्राष्ट्रीय विधवा दिवस मना रहा है। एक आँकड़े के अनुसार फिलहाल भारत में विधवाओं की संख्या 5.5 करोड़ से अधिक है। एक अन्य आँकड़े के अनुसार ''विधवाओं की संख्या हमारे देश की कुल जनसंख्या का लगभग तीन प्रतिशत है।''[7]

इस बढ़ोतरी का मूल कारण हैं-बाल विवाह, बहुविवाह, वृद्ध विवाह व परंपरागत रूढ़ियाँ आदि। विधवा समस्या समाधान का प्रयास नवजागरण काल से रहा है, लेकिन आज तक संपूर्ण समाधान नहीं निकल पाया। इसके पीछे विधवा पुनर्विवाह में सामाजिक रोकथाम, सामाजिक रूढ़ियाँ, केवल विधवाओं के लिए बनी परंपरागत सामाजिक पाबंदी, विधवाओं के प्रति कुछ लोगों की बुरी नजर आदि कारक हैं। निराला नारी की मर्मस्पर्शी समस्याओं के एक सचेतक द्रष्टा थे। आप समाज में तटस्थ होकर इन समस्याओं को भलीभाँति परखते थे और समाधान का प्रयास भी जारी रखते थे। आप जानते थे कि विधवा समस्या समाधान का आसान तारीका है विवाह योग्य विधवाओं का पुनर्विवाह। इस विवाह में कानूनी बाधा नहीं है। सन 1856 में ही विधवा पुनर्विवाह कानून पारित हुआ था, लेकिन दकियानूसी लोग आज भी इस विवाह में रुचि नहीं दिखाते। यहाँ तक कि उच्च शिक्षित लोग भी विधवा विवाह से दूर रहते हैं। आपकी 'ज्योतिर्मयी' कहानी में नायिका बाल विधवा ज्योतिर्मयी के नायक विजय से पूछने पर कि, 'अगर आपसे कोई विधवा विवाह करने के लिए कहे?' [8] के उत्तर में

विजय कहता है– ''मुझे विधवा विवाह करते हुए लाज लगती है।[9]'' पुरुषों के इस तरह के मनोभावों ने अनेक विधवाओं का जीवन दु:सह्य कर डाला। विधवा जीवन की इस दु:सह्यता के संबंध में 'अलका' में वीणा कहती है, ''विधवा कितनी असहाय और अनावश्यक इस संसार के लिए....है। क्या विधवा जैसी दुखी विधाता की दूसरी भी दृष्टि होगी, जो सखियों में भी खुले प्राणों से बातचीत नहीं कर सकती, लोग सुख वाले संसार के बीच में रहकर भी सुख से जिसे विरत रहना पड़ता है। आँखों के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टिहीन होकर रहना पड़ता है।''[10] विधवा की इस यंत्रणा को देखकर निराला लिखते हैं, ''प्रतिदिन भारतवर्ष का आकाश स्त्रियों के क्रंदन से गूँजता रहता है। युवती विधवाओं के आँसुओं का प्रवाह प्रतिदिन बढ़ता जाता है।... उसके साथ जो अत्याचार किए जाते हैं, उनका कोई प्रतिकार नहीं होता। वे चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन कर रह गया है।''[11] निराला ने सिर्फ विधवाओं की समस्याओं को उठाकर उन्हें नहीं छोड़ा, इसके समाधान का रास्ता भी निकाला। जहाँ 'ज्योतिर्मयी' में विजय को विधवा विवाह करना लज्जा की बात लगती है, वहीं 'अलका' में अजित विधवा वीणा से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहता है, ''मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ और आज तुम्हारे भैया जी के सामने प्रस्ताव रखूँगा।''[12] और भैया से सहमति मिलने पर कोई औपचारिकता पूरी न कर वीणा से कहता है, ''ईश्वर और तुम्हारी आत्मा को साक्षी मानकर मैंने एक हाथ से नहीं दोनों हाथ पकड़े हैं, इसमें बड़े दूसरे विवाह पर तुम्हें विश्वास है?''[13]

अर्थात् निराला विवाह के लिए कोई परंपरागत सामाजिक रस्म की आवश्यकता अनुभव नहीं करते हैं। विधवा के प्रति सहृदयता रखने वाले अजित के विपरीत उनके प्रति बुरी नजर डालने वाले लोग भी समाज में मौजूद हैं। निराला के 'चोटी की पकड़' उपन्यास में विधवा बुआ का रूस्तम और 'चमेली' में मुखिया बखतावर सिंह ने विधवा चमेली का बलात्कार करने की कोशिश की, लेकिन इस भयंकर घटना से बुआ को प्रभाकर ने बचाया और चमेला अपनी बुद्धि से बच गई। निराला के अपने उपन्यासों में चित्रित विधवाओं में से 'निरूपमा' की सावित्री के अलावा बाकी विधवाएँ कम उम्रवाली हैं। आपने यहाँ विधवाओं की समस्या समाधान में विधवाओं की नैसर्गिक दिशा को भी देखा था। प्रेमचंद ने जहाँ विधवा विवाह को केवल आर्थिक समस्या समाधान के लिए आवश्यक माना, वहीं निराला ने आर्थिक समस्या के साथ जैविक प्रयोजन के लिए भी विधवा विवाह आवश्यक माना। इन विधवाओं की मानसिक तथा शारीरिक संतुष्टि का अभाव असहनीय है, क्योंकि एक विधवा की माँग का सिंदूर पोंछ कर, सफेद कपड़ा पहनाकर उसे सही अर्थ में विधवा नहीं बनाया जा सकता। आपके अनुसार विधवाओं के लिए आरोपित सामाजिक गैर–विज्ञानिक रीति–रिवाज को तोड़कर विधवाओं के स्वस्थ जीवन शैली अपनाने में सहायक नियम लागू होने चाहिए और सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात है कि पुरुष वर्चस्व वाले समाज को विधवाओं के प्रति अपना रवैया बदलना चाहिए, जो दकियानूसी मार्ग पर आज भी चल रहे हैं।

3. अपहरण की समस्या :

अपहरण नारी हिंसा से जुड़ी एक अन्य समस्या है। ''राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट के अनुसार देश में हर 43 मिनट में एक अपहरण की घटना होती है।''[14] प्रमुखत: काम वासना, अर्थ संग्रह, प्रेम संबंधित, परिवारिक संघात आदि के कारण यह घटना दिन–ब–दिन बढ़ रही है। मनुष्य की एक प्रमुख स्वाभाविक प्रवृत्ति काम वासना को नैतिकता के आधार पर चरितार्थ करने में असमर्थ लोग नारी का अपहरण करके यह प्रवृत्ति शांत करना चाहते हैं। इस समय अपहरणकर्ता अपहर्ता की उम्र, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक स्थिति की परवाह नहीं करते हैं। नारी का अपहरण कर रिहाई के बदले बड़े पैमाने पर फिरौती माँगते हैं अन्यथा हत्या की धमकी देते हैं और कभी–कभी हत्या भी कर देते हैं। इसके अलावा आतंक फैलाने के लिए, किसी बंदी आतंकवादी की रिहाई के लिए अपहरण कार्य संघटित करते हैं। सन 1999 में कंधार विमान अपहरण की घटना विश्व को ज्ञात है। उस विमान में महिला यात्रियों की संख्या अधिक थी। अपहरण होने के बाद अपहृत नारी और इनके परिवार की मानसिक स्थिति क्या रही होगी, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं।

निराला के उपन्यास 'अलका' और 'प्रभावती' में नायिका शोभा के अपहरण की कोशिशों के दो कारण थे। पहला है जमींदार मुरलीधर का हवस पूरा करना और दूसरा है महादेव को पैसा कमाना। जमींदार मुरलीधर ने पैसों का लालच देकर शोभा का अपहरण करने का भार सौंपा था। महादेव भी यह काम करने को राजी हो गया था। पैसों के संबंध में महादेव की मानसिक स्थिति का निराला इस तरह वर्णन करते हैं, "उसे इस हालत में खड़ा देख महादेव के हृदय में एक बार सहानुभूति पैदा हो गई। पर उसे तरक्की करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुँचती है, वह गरीब है इसलिए अमीरों की तलवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं- उन्हें भी अच्छा इंसान बनाना है, लड़कियों की शादी में तीन-तीन चार-चार और पाँच-पाँच हजार का सवाल हल करना हैं, इतना धर्म का रास्ता देखने पर संसार के मंजिल कैसे तय करेगा।"[15] प्रभावती में भी अपहरण की दो घटनाएँ हैं। पहला है धन कमाने के लालच में किसी बदमाश के रात को तेरह साल की लड़की विद्या को उठा ले जाना और दूसरा है प्रेम संबंधित, जिसमें पृथ्वीराज चौहान ने संयोगिता का स्वयंवर से अपहरण किया था। निराला ने ये दो उपन्यास सन 1933 और 1936 में लिखे थे। नारी अपहरण की समस्याओं को ध्यान में रखकर ताकि समाज में कोई भी नारी अपहरण न हो, लेकिन आज भी इस तरह की घटनाएँ घट रही रही हैं। "सन् 2021 में देशभर में हर घंटे 11 से ज्यादा लोगों का अपहरण होता था। कुल अपहरणों में 69014 बच्चे (10,956 लड़के, 58058 लड़कियाँ) और 35135 वयस्क (6,649 पुरुष, 28485 महिला और एक ट्रांसजेंडर) थे।"[16] अपहरण के जुर्म में भारतीय दंड संहिता की धारा 359, 356, 361, 363, 366 के तहत सजा की व्यवस्था है, लेकिन अपहरण की घटना की बढ़ोतरी में कमी नहीं हो रही है। निराला ने आज से कई साल पहले नारी अपहरण समस्या के समाधान की सोच रखी थी, लेकिन आज भी इसका कोई सफल समाधान नहीं निकला।

4. बलात्कार की समस्या :

नारी के लिए बलात्कार एक अति घातक और अमानवीय समस्या है और यह मानव अधिकार के विरुद्ध एक अपराध है। विश्व स्वास्थ संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक, "भारत में हर 54 मिनट पर एक महिला के साथ बलात्कार होता है।"[17]

यह बलात्कार की घटना से उत्पन्न समस्या सिर्फ पीड़ित के लिए ही नहीं, बल्कि परिवार तथा समाज के लिए भी एक समस्या है। बलात्कार की शिकार नारी की शारीरिक, मानसिक, परिवारिक तथा सामाजिक स्थिति बिगड़ जाती है, क्योंकि पीड़ित नारी को समाज हीन दृष्टि से देखता है। इस घटना के लिए नारी को दोषी करार देकर पुरुष के दोष को नजरअंदाज किया जाता है। देखा जाता है कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार नारी की कौमार्य और सतीत्व रक्षा करना नारी जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। कुँवारी लड़की से बलात्कार होता है तो कौमार्य भंग हो जाने का, सधवा होती है तो सतीत्व नष्ट हो जाने का आरोप सामाजिक दृष्टि से लगाए जाते हैं, जो नारी के लिए अक्षमनीय अपराध है। नारी की इस तरह की अमानुषिक समस्या से निराला जैसे एक सचेत लेखक की कलम कैसे रुक सकती थी। आपने 'अप्सरा', 'अलका', 'चोटी की पकड़' और 'चमेली'

उपन्यासों में नारी की यह समस्या उठाई है। 'अप्सरा' में अंग्रेज अधिकारी हैमिल्टन ने कनक के साथ दुष्कर्म करने की कोशिश की। 'अलका' में जमींदार मुरलीधर अबला नारी के संबंध में सोचता है, ''एक साधारण स्त्री है। मर्जी के खिलाफ भी वह लाई जा सकती है।''[18] इसी तरह 'चोटी की पकड़' में रूस्तम ने बुआ को और 'चमेली' में मुखिया बख्तावर सिंह ने चमेली के दुष्कर्म करने की कोशिश की। निराला के उपन्यासों में यह उल्लेखनीय है कि किसी नारी का बलात्कार नहीं हो पाया, कोशिश अवश्य होती है। कोशिशों के समय बचाने वाले घटनास्थल पर जा पहुँचते हैं। निराला सोचते हैं कि समाज में इस तरह की घटना नहीं होनी चाहिए और होने की संभावना को समाज को रोकना चाहिए। पीड़िता जहाँ सहायता का अभाव अनुभव करती हैं, वहाँ उन्हें खुद निर्णय लेना चाहिए। 'अलका' में अलका खुद इस कोशिश के कारण जमींदार मुरलीधर की पिस्तौल से हत्या कर देती है। अलका को उदाहरण के रूप में लेकर निराला यह साबित करना चाहते हैं कि इस महाव्याधि से निपटने के लिए नारी को शक्ति बटोरनी चाहिए।

5. वेश्या समस्या :

भारत में अब वेश्या समस्या केवल नारी समस्या ही नहीं, सामाजिक समस्या बन गई है। पौराणिक या मध्यकाल में यह एक समस्या न थी। पौराणिक काल में दर्शाई गईं अप्सरा और उर्वशी सबके लिए आदरणीय थीं। वैदिक काल में वेश्या को एक मर्यादा संपन्न व्यवसाय के रूप में स्वीकृत किया गया था। मध्यकाल में वेश्याओं से संपर्क रखना आभिजात्यता का परिचय था, लेकिन परिवर्तित समय में दुष्कर्मियों की उस स्थिति में बदलाव आ गया। समाज में दुष्कर्मी महिलाएँ आज घृणित नारी के रूप में परिचित हैं। नवजागरण काल में भी इस समस्या के समाधान का प्रायास जारी रहा। विभिन्न साहित्यकारों ने भी इसके समाधान के लिए अपनी-अपनी रचनाएँ कीं। निराला ने भी इस क्षेत्र में एक मौलिक चिंतन का परिचय दिया। दुष्कर्मी महिलाओं के दिलों में सच्चे प्रेम का परिचय मिला। आपका पहला उपन्यास 'अप्सरा' का मूल विषय दुष्कर्म की समस्या है। इस उपन्यास में आप कनक के हृदय में स्वाभाविक सच्चे प्रेम का बीजारोपण करके उपन्यास के नायक तथा कॉलेज के अध्यापक राजकुमार के साथ विवाह करवाया, जो तत्कालीन ही नहीं, आज भी अनहोनी घटना है। विवाह के पूर्व आपने कनक की पेशवाज जलाई। दुष्कर्मी महिलाओं के प्रतीक 'पेशवाज' जलाना एक क्रांतिकारी कदम है। उपन्यास के एक नारी चरित्र तारा के द्वारा पेशवाज जलाने के कार्य को निराला इस तरह वर्णन करते हैं, ''तारा ने पहले से ही कनक की पेशवाज निकाल रखी थी। दियासलाई और पेशवाज लेकर सीधे छत पर चढ़ने लगी। ये लोग भी पीछे-पीछे जा रहे थे। पेशवाज छत पर रखकर दियासलाई जला आग लगा दी। कनक गंभीर हो रही थी। निष्पंद पलकें, अंतर्दृष्टि। तारा ने कहा, ''प्रतिज्ञा करो, आज से यह काम कभी नहीं करूँगी।' 'कभी नहीं करूँगी' कनक ने कहा।''[19] इससे आप सिर्फ कनक से ही नहीं, समाज से यह वृत्ति समाप्त करना चाहते थे। आपके शेष उपन्यासों में वर्णित दुष्कर्मी महिलाएँ भी प्रभावशाली हैं। ये दुष्कर्मी महिलाएँ सिर्फ रुपयों पर रूप बेचने वाली नहीं हैं। 'प्रभावती' में वर्णित विद्या नृत्य विशारद 'चोटी की पकड़' में वर्णित एजाज में अंग्रेजी, उर्दू, बंगला भाषा का ज्ञान भरपूर है। वह राजा राजेंद्र प्रताप के राज परिवार को ही नहीं, राजसत्ता को भी प्रभावित करती है।

दुष्कर्म एक ऐसा वृत्ति है, जहाँ पुरुष और महिला दोनों जुड़े रहते हैं। पुरुष के बिना यह वृत्ति नहीं चल सकती, लेकिन बदनाम किया जाता है सिर्फ नारी को। मृणाल पाण्डेय लिखती हैं, ''क्या वेश्यावृत्ति ऐसा अपराध है, जिसके दंड की भागी सिर्फ वेश्या हो, जो अक्सर अनिच्छा से यह काम करती है, वह पुरुष नहीं, जो सदा स्वेच्छा से उसका शरीर खरीदता है।''[20] वेश्यागामी पुरुष को समाज नजरअंदाज करता है।

पुरुष वेश्यागमन बंद कर दे तो यह समस्या स्वत: ही समाप्त हो जाएगी। इस तरह सोचना गलत तो नहीं, लेकिन धरातल पर उतारने में फिलहाल मुश्किल अवश्य है। समाज का यह एक संवेदनशील समस्या है। निराला वेश्याओं में आर्थिक स्थिति में सुधार, शिक्षा, दुष्कर्मियों के प्रति बची समाज की आम धारणा बदलने पर महत्व देते थे। आपके अनुसार समाज द्वारा उन्हें यदि सुधारने का उपयुक्त परिवेश दिया जाए तो वेश्याएँ भी आम नारियों के साथ एक ही पंक्ति में बैठ सकती हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नारी समस्या आज एक नारी समस्या होते हुए सामाजिक समस्या बन गई है। समाज की आधी आबादी नारी है। यह आधा अंश अगर समस्या से भरपूर रहे तो बाकी अंश को समस्यामुक्त कैसे कहा जा सकता है? नारी की यह समस्याएँ मूलत: विवाह, वैधव्य, अपहरण, बलात्कार, वेश्या, शिक्षा, शोषण से संबंधित हैं। इन समस्याओं को उठाकर आपने उजागर कर दिया कि नारियों को इससे मुक्त करना चाहिए। नहीं तो नारी समाज के साथ परिवार, समाज और राष्ट्र की प्रगति में इसका प्रभाव पड़ेगा। आप अनुभव करते हैं कि नारी के प्रति पुरुष सत्ता की जो दकियानूसी धारणा है, उसमें बदलाव लाना चाहिए। नारियों को समाज में प्रचलित गैर वैज्ञानिक रूढ़ियों से मुक्त करके आधुनिक विचार तथा शिक्षित करके समाज में एक मानवीय मूल्यबोध संपन्न दर्जा देना चाहिए। सरकारी तथा गैर-सरकारी तौर पर इसके समाधान के लिए कोशिश जारी रहनी चाहिए। कुछ सुधार भी हुआ है, लेकिन सुधारने को और कुछ बाकी है। निराला ने अपने उपन्यासों में नारी संबंधित समस्याओं का एक सजीव चित्र लोगों के सामने पेश किया है और समाधान के लिए अपना विचार व्यक्त किया है, जिन विचारों का महत्व आज भी प्रासंगिक है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. https//www quora.com.wty-is-th
2. नवल, नंद किशोर, संपादक, 'निराला रचनावली', खंड-6, पृ.सं. 499, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998
3. वही, पृ.सं. 295
4. वही, खंड -4, पृ.सं. 289
5. वही, खंड -3, पृ.सं. 332-333
6. नवल, नंद किशोर, संपादक, 'निराला रचनावली', खंड -4, पृ.सं. 290 राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण 1998
7. https:// 164.100.47.4Hindi [PDF]
8. नवल, नंद किशोर, संपादक, 'निराला रचनावली', खंड -4, पृ.सं. 290 राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, संस्करण 1998
9. वही, खंड -3, पृ.सं. 197
10. वही, खंड -4, पृ.सं. 189
11. वही खंड-6. पृ.सं. 129
12. वही, खंड -3, पृ.सं. 208
13 वही, पृ.सं. 208
14. मिश्रा, रजंना, संकलनकर्ता, 'भारत में नारी : राजनीतिक परिवर्तन', पृ.सं. 84, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल पुनर्मुदित संस्करण: 2018
15. नवल, नंद किशोर, संपादक, 'निराला रचनावली', खंड-3, पृ.सं. 138-139, संस्करण 1998
16. https//www.jagaran.com >news > na
17. मिश्रा, रजंना, संकलनकर्ता, 'भारत में नारी : राजनीतिक परिवर्तन', पृ.सं. 84, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल पुनर्मुदित संस्करण: 2018
18. नवल, नंद किशोर, संपादक, निराला रचनावली, खंड -3, पृ.सं. 145 राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, संस्करण 1998
19. वही, खंड-3 पृ. सं. 124
20. पाण्डेय, मृणाल, 'स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक', पृ.सं. 100, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, चौथा संस्करण: 2018

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

इतिहास

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और संत गंगादास : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

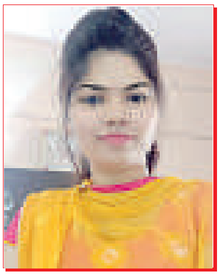

कीर्ति चौधरी

शोधार्थी, इतिहास विभाग
एस.एस.वी. कॉलेज हापुड़-245101
7454932395
kirtiinfo567@gmail.com

डॉ. दीपक कुमार

शोध निर्देशक
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
एस.एस.वी. कॉलेज हापुड़-245101
9927689315

सारांश :

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जी के साहस और वीरता से कौन परिचित नहीं है, लेकिन बहुत कम व्यक्ति जानते हैं कि उनकी राष्ट्रीय भावना के पीछे उनके गुरु गंगा दास जी की अहम् भूमिका थी। 1857 के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने अग्रदूत की भूमिका अदा की थी। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अलावा संत गंगादास जी की विशिष्ट पहचान हिंदी साहित्य में खड़ी बोली में विशाल साहित्यिक रचनाकार के रूप में भी है। संत गंगादास जी उच्च कोटि के देशभक्त होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कवि भी थे। इसलिए उन्हें खड़ी बोली के प्रथम कवि और हिंदी साहित्य के भीष्म पितामह के रूप में भी जाना जाता है।

बीज शब्द :

विस्मयकारी, मेधा, अद्‌भुत, छावनी, शैशवकाल, अभिव्यक्ति, प्रज्ज्वलित, स्वराज्य, चिरंजीवी, चेतना, उदर संगीन।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जी के गुरु हिंदी साहित्य में खड़ी बोली में साहित्य के रचनाकार गंगा दास जी का जन्म सन 1823 ई. में दिल्ली-मुरादाबाद सड़क मार्ग पर स्थित बाबूगढ़ छावनी के समीप रसूलपुर नामक गाँव में बसंत पंचमी के दिन हुआ था।[1] इनका संबंध मुंडेर गोत्र के सिख जाट परिवार से था। उनके पिता सुखी राम सिंह एक बड़े जमींदार थे व माता दारबा कौर हरियाणा के बल्लभगढ़ के निकट दयालपुर की रहने वाली थी। संत जी के पूर्वज 1783 में ही दिल्ली फतेह के बाद पंजाब के अमृतसर जिले के मंडला नामक स्थान से आकर मेरठ मंडल में रहने लगे थे। यहाँ उनके परिवार की लगभग 14 पीढ़ियों ने अपना जीवन व्यतीत किया था। संत गंगादास जी बाल्यकाल में ही माता-पिता की छत्रछाया से वंचित हो गए थे। अर्थात शैशवकाल में ही उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे, जिस कारण बाल्यकाल में ही उनके मन में संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई तथा 11 वर्ष की आयु में इन्होंने गृह त्याग दिया।[2] इसके पश्चात वे संन्यासी बन गए और सांसारिक मोह-माया से दूर हो गए।

गृह त्याग के पश्चात संत गंगादास जी विष्णुदास उदासीन, जो उस समय सैदपुर जनपद बुलंदशहर में ध्यान योग में लीन थे, के संपर्क में आए और उनसे दीक्षा ग्रहण की। उनका बचपन का नाम गंगा बख्श था। विष्णु दास उदासीन से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात वह गंगादास कहलाए।[3] इन्होंने संस्कृत और हिंदी की प्रारंभिक शिक्षा अपने गुरु विष्णुदास जी से ही प्राप्त की। अद्‌भुत मेधा वाले इस बालक ने सभी धार्मिक ग्रंथों और संस्कृत भाषा का ज्ञान शीघ्रता से अर्जित कर लिया। शिक्षा के प्रति उनकी विस्मयकारी रुचि को देखते हुए उनके गुरु विष्णुदास जी ने इन्हें उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए वाराणसी भेज दिया। यहाँ रहकर इन्होंने लगभग 20 वर्षों तक वेदांत, व्याकरण, गीता, महाभारत, रामायण, रामचरितमानस, आयुर्वेद तथा मुक्तावली आदि दार्शनिक ग्रंथों का गहन अध्ययन कर पांडित्य प्राप्त किया।[4] संत जी ने जिला मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और राजस्थान, सभी स्थानों पर भ्रमण भी किया था। संत जी ने बक्सर के निकट फतेहपुर गांव में 19 वर्षों तक रहकर चौधरी रकम सिंह और पंडित चिरंजीवी लाल को क्रमश: हिंदी व संस्कृत व्याकरण की शिक्षा भी दी थी। इसके पश्चात इन्होंने 1855 ई. में एम.पी. के ग्वालियर नगर के पास सोन रेखा नामक नाले के निकट एक कुटी बनाकर उसे अपना निवास स्थान बनाया और यहीं पर रहकर महारानी लक्ष्मीबाई तथा उनकी सखी मुंदर को दीक्षित कर राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत कर दिया।

इन्होंने मणिकर्णिका मनु (रानी लक्ष्मीबाई) से कहा था कि यह मत सोचना कि हमारे जीवन काल में ही स्वराज प्राप्त हो जाएगा। आप नीम के पत्थर बनो और फिर अन्य देशभक्त भी बनते चले जाएँगे। जब नींव भर जाएगी तो स्वराज का महल उन्नत हो जाएगा। यह थे उनके राष्ट्रीय प्रेम और देशभक्ति से ओत-प्रोत हृदय के विचार। गंगा दास जी ने अपनी साहित्यिक चेतना का माध्यम हिंदी भाषा साहित्य को बनाया और हिंदी साहित्य में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना आरंभ कर स्वतंत्रता की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया।

वह अंग्रेजी राज से घृणा करते थे। ब्रिटिश राज उनकी आँखों में बुरी तरह खटकता था। इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में मिलती है। अंग्रेजी राज की तथा तत्कालीन प्रजा की दिन-हीन अवस्था का वर्णन संत कवि ने अपने अनुभव के आधार पर अपने कुछ पदों के माध्यम से दर्शाया है:-

दाबी सारी पाप ने प्रजा हो गई दीन
कर्म धर्म सब छूट गए ऐसी मति मलिन
ऐसी मति मलिन जीव जड़ भये विचारे
उदर भरे सोई कार बरण करते हैं सारे
गंगाधर जन कहे कली ने करी खराबी
बेबस हो गए जीव मती पापों ने दाबी।

इन पंक्तियों के माध्यम से संत गंगादास जी ने अंग्रेजी हुकूमत के विषय में करारा प्रहार करते हुए कहा है - दुष्ट ब्रिटिश राज्य की समस्त प्रजा! पाप कर्मों से दबकर कंगाल हो गई है। भारतीय संस्कृति की पहचान कर्म और धर्म छूट गए है। बुद्धि पापों में इतनी लीन हो गई है कि बेचारे जीवन मानो जड़ होकर रह गए हैं।

इन्होंने खड़ी बोली में काव्य रचना करके राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रखर अभिव्यक्ति दी। उनके काव्य में तत्कालीन ब्रिटिश हुकूमत की खुली आलोचना देखने को मिलती है। इन्होंने अपने क्रांतिकारी काव्य के माध्यम से पूरे देश की जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना उभारने का महत्वपूर्ण कार्य करते हुए संपूर्ण भारत में स्वाधीनता की अलख जगाई।

नीतिहीन राजा अन्यायी वेद विरोधी
सठ दुखदाई पंथ चले जब तोल ना पाई
कपटी बाना धरते हैं सर पे धर पाग भस्म की,
कवि जन अपरज करते हैं।[5]

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से संत गंगादास जी ने भ्रष्ट शासन और अन्यायकालीन न्यायालयों, न्यायधीशों, कर्मचारियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। अपने काव्य के माध्यम से संत गंगादास जी ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों पर करारा प्रहार करते हुए कहा है कि जब ब्रिटिश सरकार ही नीति का पालन त्याग कर अन्यायपूर्ण कार्यों में संलग्न है। देश के नरेश जो वेद विरोधि कार्यों को करके अतिशय दुष्ट हो गए हैं और समाज को अनेक प्रकार की पीड़ा दे रहे हैं। धार्मिक मत और पंथ तो इतने भ्रष्ट हो चले हैं कि उनका माप तौल अर्थात गिनती करना ही कठिन हो गया है। विभिन्न पंथों के इन संतों महंतों तथा अतीत गुरुओं ने भ्रांति की पगड़ी सर पर धारण की हुई है तथा कपटी भेष बनाकर वह समाज को ठग रहे हैं।

अंग्रेजी हुकूमत में ईसाई धर्मगुरु लोगों को अपने धर्म में दीक्षित कर रहे थे और अपने धर्म का प्रचार व वैदिक धर्म की निंदा कर जनता को गुमराह कर रहे थे। संत कवि गंगादास जी ने श्री कृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि इस भयंकर समय में हमारा बेड़ा कैसे पार हो:-

महाघौर आया काली, पड़ी पाप की धूम।
पन्थ वेद के छिप गए, ना होते मालूम॥
ना होते मालूम पाप नें दाबी प्रजा।
फिर सुख कैसे होय धर्म का हो गया हरजा॥
गंगादास जन कहे नाथ, है नंदकिशोर।
कैसे होगी गुजर काली आया घनघौर।।[16]

अंग्रेजी सत्ता ने भारत भूपर पग जमाए थे।
गुरु गायत्री गीता गंगा के प्रसून मुरझाए थे॥
पाप कर्म की हुई अधिकता दुख के बादल छाए थे।
देशभक्त दीवानों ने अपने करतब दिखलाए थे॥
युग दृष्टा बन गए स्त्रष्टा जो स्वाभिमान की थे पहचान।
गंगा दास संत जी के उद्घोष थे कवि महान्।।[17]

18 जून, 1858 को रानी लक्ष्मीबाई ग्वालियर में अपने विशेष सहयोगियों गुल मोहम्मद, सखी मुंदर एवं काशीराम चंद्र देशमुख रघुनाथ राव दत्तक पुत्र दामोदर राव को लेकर सेना सहित युद्ध के मैदान में उतरीं। महारानी ने भयंकर युद्ध किया। रानी के रणकौशल को देखकर अंग्रेजी सेना भी थर्रा उठी। रानी ब्रिटिश सेना को बुरी तरह रौंदते हुए विजय पताका फहराते हुई आगे बढ़ रही थीं, लेकिन दुर्भाग्यवस धीरे-धीरे युद्ध का परिदृश्य बदलने लगा। संध्या का समय हो चला था और रानी के पास केवल चार घुड़सवार शेष बचे थे। ब्रिटिश सेना के 15 घुड़सवार और कुछ पैदल सैनिक उनका पीछा करते हुए आगे बढ़े। एक ब्रिटिश सेना के संगीनधारी सिपाही ने संगीन की चोट कर रानी को घायल कर दिया एवं दूसरे अंग्रेज घुड़सवार ने मुंदर पर पिस्टल की गोली से वार किया। मुंदर गोली लगने के कारण युद्ध भूमि में ही शहीद हो गई।

रानी ने सोनरेखा नाले की ओर घोड़े को आगे बढ़ाया। रानी बड़े वेग से नाले की ओर बढ़ रही थी कि घोड़ा नाले के तट पर अड़ गया और आगे नहीं बढ़ पाया। अंग्रेज घुड़सवार ने उन पर गोली चला दी। गोली रानी की बाईं जांघ में जा लगी। रानी ने इस समय संगीन सवार पर अपनी तलवार से वार कर उसे मौत के घाट उतार दिया। मुंदर को शहीद करने वाला अंग्रेज सिपाही को भी रानी ने मौत की नींद सुला दिया था। उसी समय दूसरे संगीन सवार सिपाही ने तलवार का वार रानी के सिर पर किया। दुर्भाग्यवश रानी के सिर का दया भाग फट गया और दाईं आँख भी बाहर निकल आई, लेकिन रानी ने अब भी हार नहीं मानी और हमलावर को अपनी तलवार के वार से मौत के घाट उतार दिया। अन्य हमलावर रानी का आक्रोश और बहादुरी को देखकर पीछे हट गए। रानी के सहयोगियों देशमुख और रघुनाथ सिंह ने उन्हें घोड़े से उतार कर अपने

घोड़े पर बिठाकर शीघ्रता के साथ मुंदर को भी उनके गुरु गंगा दास जी की कुटिया में ले आए। सूर्यास्त का समय हो चला था। बाबा गंगादास ने जैसे ही रानी को देखा तो उन्होंने तुरंत गंगाजल पिलाया। तब रानी को कुछ चेतना आई। उनके मुख से हर हर महादेव निकाला और कहा बाबा मैं झांसी की रक्षा नहीं कर पाई। यह कहकर रानी ने संत गंगा दास जी की गोद में ही अपने प्राण त्याग दिए। बाबा ने कहा ये सीता और सावित्री के देश की पुत्रियाँ हैं। उस समय रानी की आयु केवल 23 वर्ष रही होगी। उनका प्रकाश गगन में फैले अगणित प्रकाश रेखाओं में विलीन हो गया। बाबा ने उसे समय कहा :-

प्रकाश आनंद है कण-कण में भासमान करता है
फिर उदय होगा और कण-कण मुखरित हो उठेगा
रानी अमर हो गई है।

रानी के सहयोगी विलाप कर रहे थे। बाबा ने उन्हें समझाया कि अंग्रेज रानी को जिंदा या मुर्दा पकड़ना चाहते हैं और हम उन दुष्टों को रानी के पार्थिव शरीर को हाथ भी नहीं लगने देना चाहते। बाबा के वचन सुनकर रानी के सहयोगी समझ गए और उनके दाह संस्कार की तैयारी करने लगे। दाह संस्कार के लिए सामग्री बहुत कम थी। यह देखकर बाबा ने अपनी कुटिया को ही रानी की चिता का स्थान बना दिया। थोड़ी देर में रानी और मुंदर के शव जलकर भस्म हो गए।

अंग्रेज सेनापति, जिन्होंने रानी का सामना किया था उनके विषय में लिखा है कि विद्रोही नेताओं में सर्वोत्तम थी रानी। उनके जैसे बहादुर और वीर विरले ही पेदा होते हैं। संत गगादास जी ने रानी को मुखाग्नि देने के पश्चात स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला को प्रज्ज्वलित रखा तथा संत सेना के लगभग 1200 साधुओं को लेकर युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से कूद पड़े।[8] इस स्वतंत्रता संग्राम में लगभग 753 संत सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी, लेकिन क्रांति फिर भी असफल सिद्ध हुई, जिसके लिए वे लोग दोषी हैं, जिन्होंने अपने विश्वासघात और स्वार्थ के कारण इस पर मर्मांतिक प्रहार किया। इसके पश्चात बाबा गंगादास अपने शिष्यों के कहने पर पवित्र धाम गढ़मुक्तेश्वर में गंगा तट पर राजा न्रग के ऐतिहासिक कुएँ के पास कैलाश आश्रम बनाकर साहित्य साधना करने लगे। यहाँ पर भी वे स्वतंत्रता सेनानियों से मिलते-जुलते रहते थे। सन 1911 ईस्वी में लॉर्ड हार्डिंग के समय दिल्ली दरबार लगा, जिसमें ब्रिटेन का राजा जॉर्ज पंचम और उनकी रानी मेरी ने भाग लिया था। दरबार में भारत के राजा रजवाड़ों ने भी भाग लिया था और ब्रिटिश सत्ता के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त की। इस अवसर पर दो महत्वपूर्ण घोषणाएँ की गई थीं। एक तो 1905 में किए गए बंगाल विभाजन को रद्द करने की घोषणा और दूसरी ब्रिटिश शासन की राजधानी कोलकाता से दिल्ली स्थानांतरित। संत गंगादास जी महाराजा कुचेसर के साथ कौतूहलवश अपने सफेद रंग के घोड़े पर बैठकर इस इतिहास प्रसिद्ध दरबार में गए। गंगा दास जी का कद लंबा चौड़ा स्वर्णकाया, चेहरा लाल सुर्ख सफेद दाढ़ी सर पर साफा, आवाज मीठी और सुरीली उनके मुख से तेज टपकता था। महान संत के सभी चिन्ह उनकी काया में मौजूद थे। इस भव्य व्यक्तित्व को देखकर प्रबंधकों ने उन्हें किसी रियासत का महाराज समझ लिया और घोड़े से उतरते ही उन्हें आगे की कुर्सी पर ले जाने के लिए दौड़ने लगे और उनके पास आए। संत गंगादास ने उन्हें अवगत कराया कि वे तो एक साधु हैं, कोई राजा महाराजा नहीं और यह पंक्तियाँ कही -

राजा के कुचेसर से तीस कोस पश्चिम में है गांव मेरा।
लोग कहे गंगादास मूढमती नाम है मेरा॥

संत गंगाधर जी ने अपने जीवन काल में 50 से अधिक काव्य ग्रंथों की रचना कर हिंदी में विपुल साहित्य का प्रणयन किया है। बाल ब्रह्मचारी संत गंगादास जी बहुत नियमित एवं पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। व्रत, पूजा पाठ व ध्यान में लीन रहते थे। बिना स्नान किए भोजन नहीं करते थे। वे प्राय: अपने हाथ का बना भोजन 24 घंटे में एक बार करते थे। यह नियम उनका जीवन के अंत तक चलता रहा। संत गंगाधर जी ने गढ़मुक्तेश्वर में मुक्तिदाई गंगा के तट पर सन 1913 में जन्माष्टमी के दिन यह नश्वर शरीर त्यागकर मोक्ष की प्राप्ति की। प्राण त्यागने से पूर्व उन्होंने अपने उपस्थित परिजनों को आदेश दिया था कि मेरा शव गंगा में प्रवाहित करा देना और इस आश्रम की कोई भी वस्तु घर मत ले जाना, क्योंकि यह सब दान की

सामग्री है। चौपाल कुचेसर रोड पर उनकी समाधि बनी हुई है, जहाँ बसंत पंचमी के दिन मेले का आयोजन भी होता है तथा भारी मात्रा में श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ में हिंदी विभाग हिंदी भवन भी निर्मित है। उन महान साहित्यकार स्वतंत्रता के उद्घोषक संत गंगाधर जी की कीर्ति को संपूर्ण राष्ट्र नमन करता है। ग्राम रसूलपुर में उनकी याद में महाकवि गंगा दास सरस्वती शिक्षा मंदिर भी बनाया गया।[9]

निष्कर्ष : हमारे भरतीय समाज में प्राचीन काल से ही संतों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योंकि इन्होंने न केवल समाज को सही दृष्टिकोण प्रदान किया है, अपितु साहित्य चेतना के साथ-साथ राष्ट्रवादी भावनाओं को भी प्रबल किया है। इन्हीं में से एक नाम संत गंगादास का भी है। संत गंगा दास जी ने हिंदी साहित्य में अविस्मरणीय योगदान देने के साथ-साथ प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी अहम भूमिका निभाई। इस शोध पत्र के माध्यम से यह ज्ञात किया गया है कि संत गंगा दास जी का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में क्या योगदान रहा तथा वर्तमान में संत गंगादास जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर भी शोध कार्यों की भी आवश्यकता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. साहित्य भारती - आर.पी. सिंह, डॉ. अमित दूबे उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ आई.एस.एस.एन. 2455-1309
2. https://www.facebook.com
3. हिंदुस्तान टाइम्स - 10 मई 2023, मेरठ उत्तर प्रदेश, 18 संस्कृत
4. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के सतगुरु स्वतंत्रता सेनानी महात्मा गंगादास और उनका काव्य - डॉ. जगन्नाथ शर्मा हंस, दिव्यवाणी प्रकाशन, गाजियाबाद
5. वृंदावनलाल शर्मा - झांसी की रानी, पृष्ठ 322
6. संत गंगादास जीके पदों का संग्रह - डॉ. वीर सिंह
7. महात्मा गंगादास व्यक्तित्व एवं कृतित्व - शोधार्थी स्वाती जायसवाल।
8. W.W.W bhartiyadhorohar.com
9. खड़ी बोली के प्रथम कवि गंगादास, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

विमर्श

समाजशास्त्र और साहित्य : एक विचार

पूजा शर्मा

शोधार्थी (पीएचडी)
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय=181143
6005598964
sadotrapooja146@gmail.com

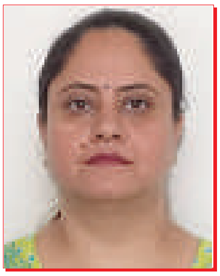

डॉ. वन्दना शर्मा

सहायक आचार्य
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, साम्बा
जम्मू व कश्मीर-181143
9419292999

सारांश :

साहित्य और सामाजिक विकास की अवस्थाओं का घनिष्ठ संबंध होता है। इसलिए बदली हुई परिस्थितियों में मात्र साहित्यिक प्रतिमान उसके मूल्य-निर्धारण में निर्णायक नहीं हो सकते। कोई रचनाकार जब सामाजिक यथार्थ का चित्रण करता है, तब उसके सामने साहित्य के आस्वाद की समस्या ही नहीं होती, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का संकल्प भी होता है-कभी प्रत्यक्ष तो कभी प्रच्छन्न। साहित्यकार समाज का चित्रण करते हुए उसे अपनी विचारधारा के अनुरूप गढ़ने का भी प्रयास करता है। इस प्रयास की समीक्षा समाजशास्त्र के प्रविधियों के ज्ञान के बिना संभव प्रतीत नहीं होती। समाजशास्त्र का चिंतन साहित्य और साहित्यकार को विवेकशील सामाजिक मनुष्य का रचनाकर्म मानता है और दूसरे सामाजिक कर्मों की सापेक्षता में उसके महत्व की व्याख्या करता है।

बीज शब्द :

समाजशास्त्र, साहित्य, समाज, तुलनात्मक पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति, संघर्षात्मक पद्धति, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक पद्धति, प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद।

साहित्य और समाजशास्त्र का बड़ा प्राचीन एवं गहरा संबंध है। समाज में जब भी परिवर्तन हुआ, उसका प्रतिबिंब हमें समकालीन साहित्य में देखने को मिला। समाज निरंतर परिवर्तनशील होने के नाते तत्कालीन साहित्य का समाजशास्त्र भी नए-नए रूपों से समाज को एक नया मार्ग प्रशस्त करने का कार्य करता है। साहित्यकार जिस समाज में जीवन-यापन करता है, उसी समाज का या तो वह गुणगान करता है या फिर उसी का विरोध। अर्थात सबसे पहले तो समाज का निर्माण होता है तत्पश्चात साहित्य का। जिस तरह समाज में बदलाव होते रहते हैं, उसी तरह साहित्य में अलग-अलग पहलू सामने आते रहते हैं। अत: साहित्य समाज का जीता जागता दस्तावेज है। समाज और साहित्य दोनों आपस में अंतर्संबंधित हैं। समाज के बिना साहित्य की रचना संभव नहीं होती और साहित्य के बिना समाज अधूरा-सा लगता है। मानव समुदाय जब एकत्रित होकर जीवन-यापन करने लगा, तब समाज का उदय हुआ।

साधारणयता समाज शब्द का प्रयोग संघ, समूह, संगठन, दल, मंडली आदि के लिए किया जाता है। एक से अधिक व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं।

शब्दकोश के अनुसार समाज का अर्थ, 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह दोनों शब्द यानी मनुष्य और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य से ही समाज बनता है और समाज का अस्तित्व भी मनुष्य से ही जुड़ा है।'[1] मनुष्य का समाज के साथ एक गहरा आत्मीय संबंध रहता है, क्योंकि समाज का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास समाज में रहकर ही होता है। व्यक्ति पैदा होते ही समाज के साहचर्य में रहता है। समाज में ही उसका पालन-पोषण, शिक्षा, विवाह, परिवार आदि जीवन की सभी घटनाएँ घटित होती हैं। समाज के निर्माण एवं विकास में प्रत्येक व्यक्ति का अपना विशेष महत्व है। समाज में रहते हुए व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध बनाता है। इन्हीं संबंधों के आधार पर ही मानव समाज आपस में जो अंत:क्रियाएँ स्थापित करता है, वह जाने-अनजाने समाज के विकास में महत्वपूर्ण कार्य करता है। राजेश्वर प्रसाद अर्गल- 'समाजशास्त्र' नामक पुस्तक में इस बात कि पुष्टि करते हुए लिखते हैं-'समाज का विकास व्यक्ति के विकास पर अवलंबित है और व्यक्ति का विकास समाज पर। समाज और व्यक्ति का कोई विरोध नहीं, दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं।'[2] अत: यहाँ कहा जा सकता है कि व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के बिना अस्तित्वविहीन हैं।

समाज शब्द का प्रयोग मुख्यत: दो तरह से-एक तो आम बोलचाल की भाषा में जन सामान्य द्वारा किया जाता है और दूसरा वैज्ञानिकों द्वारा सामाजिक संबंधों के लिए किया जाता है। समाज में रहकर व्यक्ति विविध प्रकार के संबंध स्थापित करता है। यदि व्यक्ति के प्रसंग में बात की जाए तो वह किसी का पुत्र, किसी का भाई, किसी का पिता, पति आदि होता है। परिवार के संबंध में व्यक्ति का परिवार से, एक परिवार का दूसरे परिवार के सदस्यों से कोई-न-कोई संबंध अवश्य रहता है और अगर गाँव के आधार पर सामाजिक संबंधों का विश्लेषण किया जाए तो इन संबंधों का स्वरूप हमें कहीं पड़ोसी के रूप में, कहीं मित्र, कहीं शत्रु आदि के रूप में मिलता है। मनुष्य के इन्हीं संबंधों से समाज का निर्माण हुआ और वह एक सामाजिक प्राणी कहलाया। विद्वान मैकाइवर और पेज ने समाज को अधिक स्पष्टता के साथ परिभाषित किया है- ''समाज रीतियों, कार्यविधियों, अधिकार,और पारस्परिक सहायता,अनेक समूहों और उप-विभागों, मानव व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रता की व्यवस्था है। यह सामाजिक संबंधों का जाल है तथा सदैव परिवर्तित होता रहता है।''[3]

समाजशास्त्र समाज के समस्त संदर्भों, समस्याओं एवं पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन करने वाला विज्ञान है। समाज का अध्ययन करने वाले अन्य विज्ञानों जैसे राजनीतिशास्त्र, इतिहास, भूगोलशास्त्र, नीतिशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि। यह सभी विज्ञान समाज का समूचा अध्ययन न कर समाज के किसी एक विशेष पक्ष का अध्ययन करते हैं। समाजशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है, जो समाज के समस्त पक्षों का अध्ययन करने में सक्षम है। जैसा मैकाइवर ने भी कहा है, ''समाज के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के लिए विज्ञान के अनेक नए और पुराने वर्ग हैं, परंतु उनमें से कोई भी समाज का संपूर्ण अध्ययन नहीं करता है। समाजशास्त्र ही वह विज्ञान है, जो समाज की संपूर्ण व्याख्या करता है।''[4]

समाजशास्त्र मानवीय समाज का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने वाला शास्त्र है। जी.के अग्रवाल और श्रीनाथ शर्मा ने 'प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक' पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि पहले पहल ऑगस्ट कॉम्ट ने 1838 ई. में समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग किया, इसलिए इन्हें समाजशास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने पहले इसे 'सोशल फिजिक्स' नाम दिया, बाद में इसे समाजशास्त्र के नाम से स्वीकार किया गया। लैटिन शब्द Socius (समाज) और ग्रीक शब्द Logos (विज्ञान या अध्ययन) से अंग्रेजी शब्द Sociology बना है, इसे ही समाजशास्त्र कहा जाता है। समाजशास्त्र मानवीय क्रियाओं, उनके अंत: संबंधों, उनकी समस्याओं और परिमाणों का अध्ययन है। यह मुख्यत: लोगों की मन:स्थिति पर सामाजिक व्यवहार के पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन है। विद्वान हार्टन व हंट ने समाजशास्त्र के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''समाजशास्त्र मानव के सामाजिक जीवन का अध्ययन है।''[5]

अत: स्पष्ट है कि समाजशास्त्र मानव मस्तिष्क की अंत:क्रियाओं पर सामाजिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करता है तथा इसके अंतर्गत समाज के लगभग सभी पहलुओं

एवं स्वरूपों- जिसमें व्यक्ति, समाज, भौगोलिक स्थितियाँ, ग्रामीण एवं नगरीय जीवन, औद्योगिक समाज, पारिवारिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन, परिवर्तन तथा विकास आदि के अध्ययन के साथ समाज की रचना प्रक्रिया व बदलावों का अध्ययन विश्लेषण भी किया जाता है। स्पष्ट है कि समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य समाज को समझना है।

समाजशास्त्र का उद्देश्य मात्र समाज के बारे में जानकारी एकत्रित करना ही नहीं होता, बल्कि इसका मुख्य सरोकार समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों के मूल कारणों एवं परिणामों का अध्ययन है और जहाँ तक समाजशास्त्र की उपयोगिता की बात है तो वह व्यक्ति और समाज के संबंध में ही समझी जा सकती है। समाज का विकास कितना ही क्यों न हो जाए, उसका प्रभाव समाज पर ही पड़ता है और तभी समाजशास्त्र की उपयोगिता सिद्ध होती है। एच.ई.बर्नर लिखते हैं- ''समाजशास्त्र इतना महत्वपूर्ण विज्ञान है कि वह संपूर्ण सामाजिक जीवन को समझने में हमारी सहायता करता है, तथा उन नियमों को स्पष्ट करता है, जिनके द्वारा मानव व्यवहारों को समझा जा सके।''[6]

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। समाजशास्त्र बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप मनुष्य का समकालीन परिदृश्य के साथ तादात्मय स्थापित करने में मदद करता है। जब फ्रांस में औद्योगिक क्रांति हुई तो वहाँ की सामाजिक व्यवस्था में भी बहुत सारे बदलाव आए, जिनमें सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। जहाँ सकारात्मक प्रभावों ने हमारी सामाजिक व्यवस्था को समृद्ध करने का कार्य किया तो वहीं नकारात्मक प्रभावों ने समाज में विसंगतियाँ उत्पन्न कीं। इन बदलावों को ध्यान में रखते हुए उस युग में व्याप्त समस्याओं के अध्ययन हेतु समाजशास्त्र को उपयोग में लाया गया। मूलत: समाजशास्त्र की उपयोगिता पूँजीवाद के विकास के साथ जुड़ी है। औद्योगिक विकास के उपरांत समाज में विविध प्रकार की समस्याओं का पदार्पण हुआ यथा बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट, सांप्रदायिकता, स्त्री-शोषण, आंतकवाद आदि, जिनका निराकरण समाजशास्त्र के अंतर्गत ही खोजा जा सकता है, क्योंकि इनका उद्‌गम स्थल समाज है। इसलिए समाज से बाहर जाकर इन समस्याओं का हल नहीं किया जा सकता। इन समस्याओं के निराकरण में समाजशास्त्र की उपादेयता है। समाजशास्त्र समाज, सामाजिक संबंधों, सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों के व्यवहार व अंत:क्रियाओं का अध्ययन करता है, जिससे कि समाज में व्याप्त समस्याओं के उत्पन्न होने के पीछे छिपे मूल कारणों का पता चल सके तथा उनसे संबंधित समाधान भी प्रस्तुत किए जा सकें। डॉ. लाजपतराय गुप्त लिखते हैं- ''व्यक्ति, परिवार तथा समुदाय के अतिरिक्त हमारे समाज की भी अपनी कुछ समस्याएँ हैं- चोरी, डाका, हत्या, वेश्यावृत्ति, मदिरापान, ऊँच-नीच आदि ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं, जो केवल कानून से नहीं सुलझाई जा सकतीं। इन सब पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है और यह काम समाजशास्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य शास्त्र नहीं कर सकता।''[7]

समाजशास्त्र की भाँति ही साहित्य का मुख्य सरोकार मनुष्य के सामाजिक जगत से होता है। रचनाकार किसी भी उद्देश्य को लेकर अपने कृतित्व का निर्माण करे समाज तो उसमें रहता ही है। कृति के माध्यम से (कथावस्तु, पात्र-योजना, बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि) रचनाकार का सामाजिक व्यवहार प्रकट होता है। यदि शैक्षिक स्तर पर देखा जाए तो साहित्य और समाजशास्त्र दोनों अलग-अलग विषय हैं। लेकिन समाज को समझने में वह पूर्णत: भिन्न न होकर एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। साहित्य का संबंध भी उन्हीं सामाजिक सरंचनाओं से है, जिनका वास्ता समाजशास्त्र से है। जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक आदि। साहित्य सामाजिक जीवन का बड़ी गहराई से अध्ययन करता है। साहित्य को समझने के लिए हमें पहले उस समाज की समझ होनी चाहिए, जिस समाज में रहकर रचनाकार ने उस रचना को गढ़ा है। भारतीय समाजशास्त्री धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी के शब्दों में, ''भारतीय समाजशास्त्री... भारतीय समाज की संरचना के बाहरी-भीतरी स्वरूप को समझने के लिए जनजीवन की पद्धति, मान्यताएँ, रीति-रिवाज और परंपरा तक को जानना जरूरी है। उसे भारतीय जीवन के उच्च वर्गीय और निम्न वर्गीय परंपराओं से परिचित होना चाहिए। अभिजात परंपरा की जानकारी के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है और जन-संस्कृति के

लिए स्थानीय बोलियों का।''[8] अतः रचनाकार को उस समाज का पूर्णतः ज्ञान होना चाहिए, जिसका वर्णन वह अपने साहित्य में कर रहा है, तभी वह उस समाज का वास्तविक स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा।

साहित्य का समाजशास्त्र मात्र साहित्य की कलात्मक अभिव्यक्ति न होकर समाज का गहन विवेचन है। साहित्य चिंतन का समाजशास्त्रीय नजरिया परंपरागत अध्ययन के तरीके से एकदम भिन्न है। इसमें साहित्य को मनोरंजन का साधन न मानकर उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष पर बल दिया जाता है तथा साहित्य में निहित समाज का यथार्थपरक विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। साहित्य और समाज के इसी सरोकार को साहित्य का समाजशास्त्र कहा जाता है, जिसका लक्ष्य है साहित्य की सामाजिकता की व्याख्या करना। बकौल मैनेजर पांडेय, ''साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है समाज से साहित्य के संबंध की खोज और उसकी व्याख्या।''[9] साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिए रचना, रचनाकार तथा समाज के आपसी संबंधों को समझना बेहद जरूरी है, क्योंकि संपूर्ण रचना प्रक्रिया में लेखक अपने व्यक्तिव के माध्यम से उस समय की सामाजिक व्यवस्था को अपने साहित्य में रूपायित करता है। साहित्य, समाज और लेखक तीनों के परस्पर संबंधों पर विचार करते हुए नामवर सिंह ने कहा है, ''साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी में लेखक के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा महत्व है और इस महत्व की महत्ता इस बात में है कि एक ओर इसका संबंध समाज से है तो दूसरी ओर साहित्य से। साहित्य की रचना प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक-दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित होता रहता है-समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।''[10] समाजशास्त्रियों के लिए साहित्य अधिक से अधिक समाज को समझने का एक स्रोत, साधन या माध्यम है।

साहित्य के समाजशास्त्र विषयक दृष्टिकोण को दो रूपों में समझ जा सकता है। एक तो अत्यंत लोकप्रिय एवं परंपरागत सिद्धांत 'साहित्य समाज का दर्पण है।' दर्पण बिंब साहित्य को एक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण के अनुरूप साहित्य समाज की पूरी बनावट यानी सामाजिक सरंचना के सभी पक्षों, सामाजिक सरोकारों, प्रवृत्तियों का सीधा प्रतिबिंब है। लेकिन एक विशुद्ध समाजशास्त्री का दायित्व केवल साहित्यिक रचनाओं में सामाजिक-ऐतिहासिक प्रतिबिंबों की खोज मात्र नहीं है, बल्कि रचना में निहित उन मूल्यों को भी दर्शाना है, जो लेखक को भावात्मक स्तर पर उस रचना से जोड़ते हैं। आधुनिक संदर्भ में 'दर्पण-बिंब' प्रक्रिया जटिल होती जा रही है, क्योंकि समाज में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप मानव के मन-मस्तिष्क पर उनका क्या प्रभाव पड़ रहा है आदि का अध्ययन संभव नहीं है। दूसरा दृष्टिकोण रचना के उत्पादन पक्ष पर जोर देता है। पूँजीवादी युग में विश्व बाजार के निर्माण के साथ विश्व साहित्य की धारणा का विकास जुड़ा हुआ है, जिसके चलते साहित्य प्रकाशक, वितरण, आलोचक, पाठक के चक्कर में एक बाजार की वस्तु बन कर रह गया है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की शुरुआत समाज से साहित्य के संबंध की खोज के साथ हुआ। इस चिंतन के विकास में सर्वप्रथम भूमिका निभाने वालों में फ्रांसीसी दार्शनिक ईपालित तेन और मदाम स्तेल का नाम आता है। इन्होंने एक तो समाज को साहित्य को उत्पत्ति का कारण माना तथा दूसरे साहित्य की सामाजिक भूमि और उसके जातीय चरित्र पर बल देते हुए उसे समाज के बारे में ज्ञान का प्रमुख स्रोत माना। इनके अतिरिक्त हर्डर, लावेंथल, जॉर्ज लुकाच, गोल्डमान, रेमंड विलियम आदि ने साहित्य की सामाजिकता पर अपने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। अगर भारतीय संदर्भ में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की बात की जाए तो इसका विकास भारतेंदु युग में बालकृष्ण भट्ट के लेख 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है, जिसमें बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है-''प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।''[11] इस परंपरा को आगे बढ़ाने में महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध, धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी, पूरनचंद जोशी,

श्यामाचरण दुबे आदि समाजशास्त्रियों/ इतिहासकारों का विशेष योगदान है। अत: कहा जा सकता है कि साहित्य के समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य ही साहित्य और समाज के संबंधों की व्याख्या करना है। आधुनिक संदर्भ में साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य की वास्तविक स्थिति को यथार्थवादी ढंग से समझने का प्रयत्न है और ऐसा तभी संभव है, जब हम पूरी साहित्यिक प्रक्रिया को समझने में सफल हों, जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है। साहित्यिक कृति बनने के लिए रचना को सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं, प्रकाशन-वितरण व्यवस्था तथा पाठक समुदाय से होकर गुजरना पड़ता है, तभी जाकर कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की विविध पद्धतियाँ हैं। विद्वान एस.एल दोषी और पी.सी. जैन ने 'समाजशास्त्र: नई दिशाएँ' में निम्न पद्धतियों का प्रयोग किया है-

1.ऐतिहासिक पद्धति

2. तुलनात्मक पद्धति

3. संघर्षात्मक पद्धति

4. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति

5. प्रतीकात्मक अँत:क्रियावाद पद्धति

ऐतिहासिक पद्धति को कुछ विद्वान उद्विकासीय दृष्टिकोण भी कहते हैं। इसमें सामान्यत: उत्पति तथा विकास संबंधी अध्ययन किए जाते हैं। ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, जिनमें प्रलेख, शिलालेख, और संग्रहालयों में उपलब्ध सामग्री शामिल रहती है। इन्हीं तथ्यों के माध्यम से तत्कालीन समाज की घटनाओं के बारे में विश्वसनीय जानकारी प्राप्त की जाती है अर्थात अतीत के माध्यम से समकालीन सामाजिक संरचना को समझा जा सकता है। ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं को आधार बना, आधुनिक समाज को समझना सरल हो जाता है। ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा अतीत के अध्ययन से ही हम यह जान पाते हैं कि वर्तमान समय में हमारे जो सामाजिक संबंध हैं वह मूल रूप से किन संबंधों तथा मूल्यों पर आधारित हैं। इस पद्धति के अंर्तगत किसी विशेष घटना या सामाजिक संस्था का प्रादुर्भाव किन किन परिस्थितियों में हुआ, उसमें समय के साथ कौन-कौन से परिवर्तन हुए और क्यों ? और समाज उनसे कैसे और कहाँ तक प्रभावित हुआ आदि का परीक्षण किया जाता है। उदाहरणस्वरूप जाति-व्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टिकोण के अंतर्गत तर्कपूर्ण ढंग से समझा जा सकता है। ऑगस्ट कॉम्टे, स्पेंसर, कार्ल मार्क्स, सोरोकिन आदि ने समाजशास्त्र की इस पद्धति का प्रयोग अपनी पुस्तकों में किया है।

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग मुख्यत: विकासवादी समाजशास्त्रियों ने किया। सर्वप्रथम एमिल डर्कहाइम ने इस पद्धति का प्रयोग करते हुए घटनाओं में निहित संबंधों तथा उनके कारणों पर विचार करते हुए 'आत्महत्या का सिद्धांत' दिया, जिसमें उन्होंने पाया कि आत्महत्या करने वालों की संख्या यूरोपीय देशों में एक समान नहीं है, जिसका मूल कारण है कि जिस देश में व्यक्ति जितना मानव समुदाय से दूर होता जाता है, उतना ही वह अकेला पड़ता जाता है और उतनी ही अधिक आत्महत्या करने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। तुलनात्मक पद्धति में दो परिस्थितियों, सामाजिक घटनाओं, दो देशों, दो जनजातियों में समानता या भिन्नता का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में विश्लेषण किया जाता है। जैसे भारत की किसी अन्य विकसित देश से तुलना, ग्रामीण-शहरी जीवन की तुलना, आदिवासी समाज तथा वहां के सभ्य समाज की तुलना आदि इस पद्धति के कार्य क्षेत्र हैं। इसी तरह साहित्य में समान-असमान प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्य में चित्रित समाज और वर्तमान समाज को समझने का प्रयास किया जाता है।

संघर्षात्मक पद्धति के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स हैं। उन्होंने इस पद्धति का प्रयोग समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में पाए जाने वाले तनाव और संघर्ष के अध्ययन के लिए किया। आधुनिक समाज अपने स्वार्थी स्वभाव के चलते तनाव और संघर्ष से आक्रांत रहता है और इसका मूल कारण है-सामाजिक परिवर्तन, जिसके चलते शक्तिशाली समूह यानी उच्च वर्ग अपनी इच्छाओं को निम्न वर्ग पर थोपकर उन पर शासन करते हैं, इसलिए यह परिवर्तन कुछ लोगों के लिए लाभकारी तथा अन्य वर्ग ज्यादातर गरीबों के लिए सजा के रूप में होते हैं। इस पद्धति में संघर्षात्मक परिस्थितियों (शोषित और शोषक) को सामाजिक व्यवस्था के केंद्रीय तत्व के रूप में देखा जाता है। ये संघर्षमूलक परिस्थितियाँ शांति से लेकर हिंसात्मक घटनाओं तक किसी

भी रूप में हो सकती हैं। प्राय: मार्क्सवादी पद्धति का प्रयोग बृहत समाज के अध्ययन हेतु किया जाता है।

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक पद्धति के अंतर्गत समाज की संरचना तथा कार्यों का अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टिकोण के तहत समाज की कल्पना एक ऐसे तंत्र के रूप में की जाती है, जिसमें किसी इकाई के सभी अंग आपस में संबंधित हों, क्योंकि किसी एक अंग में परिवर्तन होने से संपूर्ण तंत्र प्रभावित होता है। इस पद्धति के अंतर्गत समाज के सभी अवयव (व्यक्ति, परिवार, धर्म, वर्ग, जाति) आपस में कैसे संबंधित हैं और समाज के विकास तथा उसके अस्तित्व को बनाए रखने में क्या भूमिका निभा रहे हैं, का अध्ययन किया जाता है। इसमें कार्य प्रक्रिया की बजाय परिणामों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। स्पेंसर, दुर्खीम, मर्टन, पारसंस समर्थकों के नाम इस पद्धति से जुड़े हैं।

प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद के प्रवर्तक जॉर्ज हरबर्ट मीड हैं। इस उपागम के अंतर्गत समाज की अपेक्षा व्यक्ति की सृजनात्मकता एवं सक्रियता पर अधिक बल देता है। प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद उपागम का संबंध भाषा से है। व्यक्ति या समूह के बीच जो अंत:क्रिया होती है उसे प्रतीकों के माध्यम से ही समझा जा सकता है। प्रतीकवादियों का मानना है कि प्रतीकों के अभाव में न ही व्यक्ति समाज का हिस्सा बन सकता है और न ही व्यक्तियों के बीच अंत:क्रिया स्थापित हो सकती है। प्रतीकों के प्रयोग को समान रूप से सभी स्वीकारते हैं। बाल्यकाल से ही बच्चा समाज की विभिन्न क्रियाओं को ग्रहण करता है और धीरे-धीरे उस सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बनता जाता है। भाषा, नृत्य, चित्रकला, शारीरिक चेष्टाएँ आदि प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति और समाज मे अंत:क्रियाएँ स्थापित की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप भारत में पुरुष और स्त्री आपस में हाथ न मिलाकर, नमस्कार करते हैं, जो भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। अत: यह दृष्टिकोण मनुष्य के व्यवहार का गहराई से अध्ययन करने में सहायक है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र मूलत: समाज का अध्ययन अर्थात मानवीय क्रियाओं, उनके अंत:संबंधों, समस्याओं एवं परिणामों का अध्ययन है। समाज के सभी पक्षों का अध्ययन, उनमें निहित आपसी संबंधों तथा उनसे उत्पन्न समस्याओं तथा अन्य परिणामों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करना ही समाजशास्त्र का मुख्य ध्येय है। इसके साथ ही समाजशास्त्र के अंतर्गत साहित्य का अध्ययन भी किया जाता है। साहित्य का संबंध भी उन्हीं सामाजिक संरचनाओं से है, जिनका वास्ता समाजशास्त्र से है। वर्तमान समय में साहित्य का समाजशास्त्र एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो रहा है। इसके अंतर्गत साहित्य की सृजन-प्रक्रिया, वर्णित सामाजिक संदर्भ, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन तथा मौजूद विसंगतियों का यथार्थपरक अध्ययन किया जाता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में रचना के प्रत्येक स्तर में निहित सामाजिकता की व्याख्या संभव है। अत: कहा जा सकता है कि साहित्य का समाजशास्त्र मात्र साहित्य की कलात्मक अभिव्यक्ति न होकर समाज का गहन विवेचन है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मानक हिंदी कोश, सं. रामचंद्र वर्मा, पृ. 284
2. समाजशास्त्र, राजेश्वर प्रसाद अर्गल पृ. 20
3. समाजशास्त्र, डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ. 40
4. प्रेमचंद साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. निर्मला शर्मा, पृ. 17
5. समाजशास्त्र विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य, राम आहूजा, मुकेश आहूजा, पृ. 01
6. समाजशास्त्र, डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ.15
7. बीसवीं शताब्दी के हिंदी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. 03
8. साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, मैनेजर पांडेय, पृ. 98
9. साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, मैनेजर पांडेय, पृ. 29
10. इतिहास एवं आलोचना, नामवर सिंह, पृ. 46
11. साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, मैनेजर पांडेय, पृ. 73

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

কীৰ্ত্তন-ঘোষাৰ 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত ভক্তিবাদ ঃ এটি বিশ্লেষণ

ড° স্বপ্নালী দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী, অসম-৭৮১০০১
৯৩৬৫৫৭০৬৪০
swapnalidasghy@gmail.com

অৱতৰণিকা ঃ

পঞ্চদশ শতিকাত সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষ জুৰি সংঘটিত হোৱা ভক্তি আন্দোলনৰ ইতিহাসত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ নাম একক আৰু অনন্য। সৰ্বভাৰতীয় ভক্তি আন্দোলনৰ গুৰি ধৰোঁতা সন্ত-সাধকসকলৰ সতীৰ্থ হোৱা স্বত্বেও মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ ভক্তিমত আন সকলো প্ৰদেশৰ ভক্তিমতৰ পৰা পৃথক। শংকৰদেৱ প্ৰচাৰিত ভক্তিধৰ্ম বিশেষ কোনো বাদ মতবাদৰ আধাৰত প্ৰতিষ্ঠিত নহয়। বিশিষ্ট দ্বৈতবাদ, দ্বৈতবাদ, দ্বৈতাদ্বৈতবাদ, অদ্বৈতবাদ আদি ভাৰতবৰ্ষৰ বৈষ্ণৱ সন্তসকলে প্ৰচাৰ কৰা এই মতবাদসমূহৰ প্ৰত্যক্ষ প্ৰভাৱ মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ ধৰ্মত দেখা পোৱা নাযায়। শংকৰদেৱৰ ভক্তিমতত শ্ৰীমদ্ভাগৱদগীতাৰ এক শৰণৰ আদৰ্শ সুৰক্ষিত হৈ আছে। তেওঁৰ মতে কৃষ্ণই হ'ল একমাত্ৰ ভজনীয় দেৱতা। ৰামানুজাচাৰ্য, ৰামানন্দ, তুলসী দাস, বল্লভাচাৰ্য, চৈতন্যদেৱ আদি সন্তসকলৰ দৰে তেওঁৰ মতত যুগল উপাসনাৰ স্থান নাই। সেয়েহে এই ধৰ্মক 'একশৰণ নামধৰ্ম' নামেৰে জনা যায়।

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে বেদান্ত সূত্ৰৰ কোনো ভাষ্য ৰচনা কৰা নাছিল যদিও ভাগৱত পুৰাণখনকেই বেদান্ত ভাষ্যৰ সমকক্ষ বুলিব পাৰি। কিয়নো 'সৰ্ববেদান্ত সাৰংহি ভাগৱৎ মিষ্যতে'— অৰ্থাৎ সকলো বেদান্তৰ সাৰভাগ ভাগৱতত নিহিত হৈ আছে। শ্ৰীমদ্ভাগৱত আৰু শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্গীতাৰ আধাৰতেই মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ ধৰ্ম মতবাদ প্ৰতিষ্ঠিত। কৃষ্ণ ভক্তিৰ প্ৰচাৰ প্ৰসাৰ কৰাই তেওঁৰ সমগ্ৰ সৃষ্টিৰ উদ্দেশ্য আছিল। সাহিত্যৰাজিৰ মাজেৰেও তেওঁ ভক্তিৰ বীজ জনমানসত ৰোপণ কৰাৰ প্ৰচেষ্টা কৰিছিল। কীৰ্ত্তন-ঘোষাক মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ অক্ষয় কীৰ্তি বুলিব পাৰি। তেওঁৰ ভক্তিবাদী চিন্তাৰ মুখ্যতম বাহক হ'ল 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'। ভক্তধৰ্ম প্ৰচাৰৰ নিমিত্তে কীৰ্ত্তনক ধৰ্মৰ ধ্বজা কৰি লৈ তেওঁ কৃষ্ণ ভক্তিৰ সোঁত বোৱাই অসমীয়া মানুহৰ ধৰ্মৰ ভেটি নিৰ্মাণ কৰিলে। সেইফালৰ পৰা 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ক শংকৰদেৱৰ জীৱনৰ শ্ৰেষ্ঠ কীৰ্তি বুলি দ্বিধাহীনভাৱে ক'ব পাৰি। 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ত মুঠ সাতাইশটা আখ্যান-উপাখ্যান সন্নিবিষ্ট হৈ আছে। মহাপুৰুষজনাই ভাগৱৎ, পদ্ম পুৰাণ, ব্ৰহ্ম পুৰাণ, বৃহৎ নাৰদীয় পুৰাণ, সূতসংহিতা, স্কন্দ পুৰাণ আদি শাস্ত্ৰসমূহৰ পৰা বিশেষ কিছুমান আখ্যান-উপাখ্যান নিৰ্বাচন কৰি অসমীয়ালৈ ৰূপান্তৰ কৰিছে। একশৰণ নামধৰ্মৰ তত্ত্ব কথাৰ লগত সম্পৰ্ক থকা বিশেষ কাহিনীসমূহৰকহে তেওঁ 'কীৰ্ত্তন' পুথিত স্থান দিছে। 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ৰ আখ্যান উপাখ্যানসমূহৰ মূল বক্তব্য বিষয় হ'ল ভক্তিবাদ। এই ভক্তিবাদী চিন্তাৰ সোঁত 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ৰ বিভিন্ন আখ্যান-উপাখ্যানৰ মাজেৰে প্ৰৱাহিত হৈ আছে। 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ৰ এটা উল্লেখযোগ্য উপাখ্যান হ'ল 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'। এই উপাখ্যানৰ মাজেৰে ভক্তিবাদ সুন্দৰকৈ

প্ৰকাশিত হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত প্ৰকাশিত হোৱা ভক্তিবাদ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ কীৰ্ত্তন-ঘোষাত ভক্তিৰ প্ৰতিপাদ্য আখ্যান উপাখ্যানসমূহ সন্নিৱিষ্ট কৰি মানৰ মনত ভক্তিৰ বীজ ৰোপিত কৰিবলৈ মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে যত্ন কৰিছিল। একোটা কাহিনীৰ আলমত ভক্তিবাদৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ লগতে জনগণক ভক্তিধৰ্মৰ প্ৰতি আকৃষ্টও কৰিছিল। কীৰ্ত্তন-ঘোষাৰ অন্তৰ্গত 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ মাজত ভক্তিবাদ কেনেদৰে নিহিত হৈ আছে, তাক বিচাৰ কৰাই এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হ'ব। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হ'ব।

অধ্যয়নৰ উৎস ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে ভৱজিৎ বায়ন সম্পাদিত 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা' গ্ৰন্থখন লোৱা হৈছে আৰু 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা' বিষয়ক আলোচনা, লেখা আদিক গৌণ উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

মূল বিষয় ঃ

'কীৰ্ত্তন-ঘোষা' মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ অমৃত হাতৰ পৰশত বিকশিত হোৱা এক অতুলনীয় কীৰ্তি। 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ক ভক্তিধৰ্মৰ যুগজয়ী দস্তাবেজ আখ্যা দিব পাৰি। মহাপুৰুষজনাৰ চিন্তা, চেতনা, আদৰ্শ, শক্তি, ভক্তি সকলোখিনি 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'তেই বিদ্যমান বুলি ক'ব পাৰি। কৃষ্ণ নামৰ মহিমা, কৃষ্ণভক্তি, সৎসংগৰ মহিমা, নাম অপৰাধ আদি দিশসমূহৰ প্ৰকাশ ঘটাৰ লগতে 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ত চিত্ত শুদ্ধিৰ দ্বাৰা একান্তভাৱে ভগৱন্তৰ পদমূলত শৰণ লৈ কেনেকৈ মানৱ জীৱন সফল আৰু সাৰ্থক কৰিব পাৰি তাৰো উপায় নিৰ্ধাৰণ কৰা হৈছে। তদুপৰি 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ত জীৱপ্ৰেম, প্ৰকৃতিপ্ৰীতি, মানৱপ্ৰেম আৰু ভাতৃত্ববোধৰ এখন জাত-পাত বিবৰ্জিত সাম্যবাদী সমাজ প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ আদৰ্শও নিহিত হৈ আছে।

শংকৰদেৱে প্ৰচাৰিত ভক্তিধৰ্মৰ মূল আদৰ্শ আছিল প্ৰেম আৰু ভক্তি। পৰমপুৰুষ ভগৱন্তৰ চৰণত একান্ত ভক্তিৰে আত্মনিবেদন কৰাটোৱেই এজন ভক্তৰ বাবে প্ৰাপ্তি।

শংকৰদেৱৰ সমগ্ৰ সাহিত্য কৰ্মতে ভক্তিৰ মাহাত্ম্যৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

ভক্তি হ'ল এক গভীৰ অনুভৱ। এক মানসিক অৱস্থা। মানসিক অৱস্থাৰো বিভিন্ন স্তৰ আছে। মানসিকভাৱে এক চৰম স্তৰত উপনীত হোৱা জনহে প্ৰকৃত ভক্ত। জীৱই পৰমেশ্বৰৰ স্বৰূপ উপলব্ধি কৰি তেওঁৰ চৰণত নিজকে সমৰ্পণ কৰি সকলো কামনা-বাসনা ভোগ বিলাস, সাংসাৰিক তৃপ্তি তেওঁক অৰ্পণ কৰি অবিৰাম তেওঁৰ গুণ নামেৰে তেওঁৰ সেৱা কৰাকে ভক্তি বোলে। ভক্তি দুই প্ৰকাৰৰ— নিৰ্গুণ আৰু সগুণ। একান্ত শৰণেই নিৰ্গুণ ভক্তি। সগুণ ভক্তি ন প্ৰকাৰৰ— শ্ৰৱণ, কীৰ্ত্তন, অৰ্চ্চন, বন্দন, দাস্য, সখিত্ব, স্মৰণ, পদসেৱন, আৰু আত্মনিবেদন। ভক্তি শব্দটো সংস্কৃতৰ ভজ্ ধাতুৰ লগত ক্তিন্ প্ৰত্যয় যোগ হৈ নিষ্পন্ন হৈছে। ভজ্

ধাতুৰ অৰ্থ হৈছে ভজা, সেৱা কৰা; ঈশ্বৰক ভজা, ঈশ্বৰক সেৱা কৰা। পৰমেশ্বৰৰ প্ৰতি পৰম অনুৰক্তি; পৰম প্ৰেম, ফল প্ৰাপ্তিৰ ইচ্ছা নকৰাকৈ পৰমেশ্বৰক নিৰৱচ্ছিন্নভাৱে ভজনা কৰাকে ভক্তি বুলি কোৱা হয়। 'নাৰদীয় ভক্তিসূত্ৰ'ত ঈশ্বৰৰ প্ৰতি থকা পৰম প্ৰেমকেই ভক্তি বুলি কোৱা হৈছে। 'সা তস্মিন পৰম প্ৰেমৰূপা।।২।। অমৃত ৰূপা চ।। ৩।।'

ঈশ্বৰৰ প্ৰতি পৰম অনুৰক্তিকেই ভক্তি বুলি 'শাণ্ডিল্য ভক্তি শূত্ৰ'ত উল্লেখ কৰিছে — 'সা পৰানুৰক্তিৰীশ্বৰে'।। গতিকে ভক্তি বুলি ক'লে পৰমেশ্বৰ বা ভগৱানৰ চৰণত একান্তচিত্তে কায়মনোবাক্যে আত্মসমৰ্পণ কৰাকে বুজায়।

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ সাহিত্যৰাজিৰ মাজেৰে ভক্তিৰ চৰম প্ৰকাশ ঘটিছে। সাহিত্যৰ জগতত একোটি বিশেষ মতবাদ জিলিকি উঠে তেতিয়াহে, যেতিয়া সমসাময়িক সমাজ আৰু পৰিস্থিতিত তাৰ উপযোগিতা তীব্ৰভাৱে অনুভূত হয়। মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ সময়খিনি আছিল এক ধৰ্মীয় সংকটৰ সময়। ধৰ্মৰ নামত নানান অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ, গোড়ামী আদিয়ে সমাজখনক বিভ্ৰান্ত কৰি তুলিছিল। তদুপৰি শাক্ত, শৈৱ বৌদ্ধধৰ্মৰ তান্ত্ৰিক মতবাদ আদি নানা ধৰ্মীয় বিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাস সমাজখনৰ আধ্যাত্মিক অন্তৰায় হৈ পৰিছিল। এনে এক জটিল সন্ধিক্ষণত মহাপুৰুষ জনাই ভক্তিৰ প্ৰদীপেৰে সমাজখনলৈ পোহৰৰ বাৰ্তা কঢ়িয়াই আনিছিল। 'এক কৃষ্ণ দেৱ কৰিয়োক সেৱ, ধৰিয়ো তাহান নাম, কৃষ্ণ দাস হুয়া প্ৰসাদ ভুঞ্জিয়া হস্তে কৰা তাম কাম'। বুলি কৃষ্ণ নাম আৰু কৃষ্ণ ভক্তিৰ বিজয় ঘোষণা কৰিছিল তেওঁৰ সমগ্ৰ সাহিত্যৰ মাজত।

ভক্তিবাদ বুলি এই ক্ষেত্ৰত ভক্তি ধৰ্মত প্ৰকাশ পোৱা ভক্তিৰ আদৰ্শ আৰু চিন্তাধাৰাকে বুজোৱা হৈছে। এনে ভক্তিবাদী চিন্তা-চেতনাৰে মহাপুৰুষজনাৰ 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা' পুষ্ট হৈ আছে।

প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ ঃ

প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ 'কাৰ্ত্তন-ঘোষা'ৰ এটি অতি উল্লেখযোগ্য আৰু উত্তম আখ্যান। মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে ভাগৱত আধাৰিত কাহিনীভাগক অতি মনোৰমকৈ 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ত দাঙি ধৰিছে। 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত ভক্তিধৰ্মৰ প্ৰতিপাদ্য বিভিন্ন দিশৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। ভক্তৰ লক্ষণ, ভগৱন্তৰ স্বৰূপ, ভগৱন্তৰ ভক্তসকলৰ গুণ, নৱবিধা ভক্তিৰ স্বৰূপ, সৎসংগৰ মহিমা, সংসাৰৰ অনিত্যতা আৰু ভক্তিৰ শ্ৰেষ্ঠতা আদি দিশসমূহ আখ্যানভাগত নিহিত হৈ আছে।

প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰৰ মূল কাহিনীভাগ ভাগৱত পুৰাণৰ তৃতীয় স্কন্ধ (১৫শ আৰু ১৬শ অধ্যায়) আৰু সপ্তম স্কন্ধ (২য়ৰ পৰা ১০ম অধ্যায়)ৰ আধাৰত অৱতাৰণা কৰা হৈছে।

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে ভাগৱতৰ কাহিনীভাগক কিছু সংক্ষিপ্ত কৰি বাইশটা কীৰ্ত্তনেৰে আখ্যানভাগ সামৰিছে। প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰৰ কাহিনীভাগ তিনিটা স্তৰত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি।

প্ৰথমতে, ব্ৰহ্মাৰ মানসপুত্ৰ চাৰি সিদ্ধৰ বৈকুণ্ঠ প্ৰৱেশ আৰু জয় বিজয়ৰ দ্বাৰা কৃষ্ণ দৰ্শনত বাধা দিয়াত ক্ৰোধান্বিত হৈ চাৰি সিদ্ধৰ জয় বিজয়ক অসুৰ বংশত জন্মিবলৈ অভিশাপ প্ৰদান আৰু জয় বিজয়ৰ অনুতাপ, চাৰি সিদ্ধৰ বিষ্ণু দৰ্শন, অভিশাপ প্ৰদানৰ বাবে বিষ্ণুৰ চৰণত ক্ষমা ভিক্ষা বিষ্ণুৰ দ্বাৰা আশ্বাস।

দ্বিতীয়তে, জয় বিজয়ৰ কাশ্যপ আৰু দিতিৰ গৰ্ভত হিৰণ্যকশিপু আৰু হিৰণাক্ষৰূপে অসুৰ জন্ম, বৰাহৰূপী ভগৱানৰ হাতত হিৰণাক্ষ্যৰ মৃত্যু, ভাতৃৰ মৃত্যুত মৰ্মাহত হিৰণ্যকশিপু ভাতৃবৈৰী বিষ্ণুৰ নিধনৰ বাবে ব্ৰহ্মাক কঠোৰ তপ আৰু অমৰত্ব লাভ কৰি স্বৰ্গ মৰ্ত্য পাতালত ত্ৰাসৰ সৃষ্টি, দেৱতাসকলে বিষ্ণুক হিৰণ্যকশিপুৰ নিধনৰ বাবে স্তুতি প্ৰাৰ্থনা আৰু বিষ্ণুৰ দেৱতাসকলক নিৰ্ভয় প্ৰদান।

তৃতীয়তে হিৰণ্যকশিপুৰ ঔৰসত মহাভক্ত প্ৰহ্লাদৰ জন্ম আৰু প্ৰহ্লাদ হৰিভক্তি দেখি পিতৃ হিৰণ্যকশিপু ক্ৰোধিত হৈ প্ৰহ্লাদক নানান শাস্তি প্ৰদান আৰু বিফল, শেষত ভক্ত প্ৰহ্লাদক ৰক্ষা কৰবিলৈ ভগৱানৰ নৰসিংহৰূপে আবিৰ্ভাৱ আৰু হিৰণ্যকশিপুক মৃত্যুদণ্ড প্ৰদান। নৰসিংহৰ ক্ৰোধ উপশম কৰিবলৈ দেৱতাসকলৰ যত্ন আৰু অসফল। অন্তত ভক্ত প্ৰহ্লাদৰ স্তুতি প্ৰাৰ্থনাৰে নৰসিংহৰ ক্ৰোধ উপশম আৰু প্ৰ াদক স্নোহাশিষ প্ৰদান কৰি স্তুতিৰত দেৱতাসকলক আশ্বাস দি নৰসিংহ ভগৱানৰ অন্তৰ্ধ্যান আৰু দেৱতাসকলৰ দ্বাৰা প্ৰহ্লাদৰ ৰাজঅভিষেক।

আখ্যানভাগৰ আৰম্ভণিতেই ব্ৰহ্মাৰ মানসপুত্ৰ পাঁচ বছৰীয়া শিশু সদৃশ বস্ত্ৰহীন চাৰিসিদ্ধৰ বৈকুণ্ঠ প্ৰৱেশৰ কথা উল্লেখ কৰি বৈকুণ্ঠ নগৰীৰ এক মনোৰম বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে।

ভ্ৰমৰ ৰাজে গাৱৈ হৰি গীত
যতেক পক্ষী তাতে দেয় চিত্ত।।
নকৰে আৰাৰ থাকৈ নিচুকি।
কৃষ্ণৰ চৰিত্ৰ শুনৈ উৎসুকি।।

....

বৈকুণ্ঠ নগৰী নিৰূপম।
নাহি যাত কালৰ বিক্ৰম।।
তাক পায়া ভকতসকলে
মজিল আনন্দ সিন্ধু জলে।।

এনে সুন্দৰ ভগৱানৰ নিবাসস্থান বৈকুণ্ঠপুৰীত প্ৰৱেশ কৰি চাৰি সিদ্ধই হৰি দৰ্শনৰ বাবে জয় বিজয়ক অনুমতি বিচাৰিলে। কিন্তু তেওঁলোক দুয়ো অহংকাৰত মত্ত হৈ চাৰি সিদ্ধক নানা কটু বাক্যৰে অপমানিত কৰি হৰি দৰ্শনত বাধা আৰোপ কৰিলে। চাৰি সিদ্ধই দুখে অপমানে উপায়ন্তৰ হৈ জয় বিজয়ক বৈকুণ্ঠপুৰীৰ পৰা পতন হৈ অসুৰ জন্ম লাভ কৰিবলৈ কঠোৰ শাপ প্ৰদান কৰিলে।

নিৰন্তৰ হৰিভক্তিত নিমজ্জিত হৈ থকা বৈকুণ্ঠপুৰীত সপ্তম দ্বাৰৰ ৰক্ষী জয় আৰু বিজয় চাৰিসিদ্ধৰ দ্বাৰা অভিশপ্ত হৈ অসুৰ জন্ম লাভ কৰাটো আচৰ্যকৰ ঘটনা যেন লাগে যদিও তাত্ত্বিক দিশৰ পৰা চালে দেখা যায় বৈকুণ্ঠপুৰীত থাকিও তেওঁলোকে অহংকাৰ আৰু গৰ্ব ত্যাগ কৰিব পৰা নাছিল; লগতে তেওঁলোকৰ চূড়ান্ত অপৰাধ সংঘটিত হ'ল, যেতিয়া পৰম ভক্ত চাৰিসিদ্ধক তেওঁলোকে অপমান কৰি হৰি দৰ্শনত বাধা আৰোপ কৰিলে। ভক্তবৎসল ভগৱানে কেতিয়াও ভক্তৰ অহংকাৰ সহ্য নকৰে আৰু ভক্ত নিন্দোকজনক কেতিয়াও ক্ষমা নকৰে। সেয়ে জয় বিজয়ৰ পতন ঘটিল। আনহাতে ভগৱানে এইটো আশ্বাস দিলে যে অসুৰ জন্ম লৈ তেওঁলোকে বৈৰীভাৱে ভগৱানক চিন্তা কৰি তেওঁৰ হাতত মৃত্যু হৈ পুনৰ নিজ স্থান লাভ কৰিব।

'কীৰ্ত্তন ঘোষা'ত বৰ্ণিত কাহিনী অনুসৰি কৃষ্ণ দৰ্শন পোৱাৰ পিছত চাৰি সিদ্ধই পৰমানন্দ সুখত নিমজ্জিত হৈছে। এজন ভক্তৰ বাবে ভগৱানক দৰ্শন পোৱাতকৈ পৰম প্ৰাপ্তি একো নাথাকে। কৃষ্ণ দৰ্শনত প্ৰেমাকুল হোৱা চাৰি সিদ্ধৰ স্বৰূপ এনেদৰে দাঙি ধৰা হৈছে—

"প্ৰেমভাৰ উপজি দ্ৰবিল আতি চিত্ত।
হৰিষে লোতক ঝৰৈ তনু ৰোমাঞ্চিত।।
দেখিল কৃষ্ণৰ মুখ শ্যাম পদ্ম-কোশ।
সুন্দৰ অধৰ হাস্যে মিলাৱৈ সন্তোষ।।

ভক্তিধৰ্মত নামৰ অনন্ত মহিমাৰ কথা সজোৰে ঘোষণা কৰা হৈছে। এজন একান্ত ভক্তই সৰ্বক্ষণে কৃষ্ণ নাম স্মৰণ কৰাৰ বাহিৰে আন বাঞ্ছা নকৰে। 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ কাহিনীৰ মাজেৰে মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে সেই কথাৰ প্ৰকাশ কৰি পৰম ভক্ত চাৰি সিদ্ধৰ মুখেৰে এনেদৰে ব্যক্ত কৰিছে—

তযু গুণ গান যদি কৰ্ণে থাকে ভৰি।
সদায়ে বদনে যেৱে বোলে ৰাম হৰি।।
চৰণকো চিন্তে চিত্তে বিঘ্নিক নগনি।
নাৰকী জন্মক তেৱে আমাৰ বাঞ্ছনী।।

'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত একান্ত ভক্তিৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে দাঙি ধৰাৰ লগতে নিষ্কাম ভক্তৰ লক্ষণসমূহো মহাপুৰুষজনাই উল্লেখ কৰিছে। শিশু কালৰ পৰাই কৃষ্ণ ভক্তিত অবিচল প্ৰহ্লাদৰ গাত নিষ্কাম ভক্তৰ লক্ষণসমূহ এনেদৰে প্ৰকট হৈছিল—

প্ৰহ্লাদ বৈষ্ণৱ ভৈলা আতি।
বিষ্ণুক চিন্তন্ত দিনে ৰাতি।।
ইন্দ্ৰিয়ক কৰিয়া নিয়ম।
প্ৰাণীক দেখন্ত আত্মাসম।।
....
দুখত উদ্বেগ নাহি চিত্ত।
নাহি স্পৃহা সুখতো কিঞ্চিত।।
....
নিত্যান্তে হৰিক কৰে ধ্যান।
হৰি বিনে নেদেখন্ত আন।।
....
সদায় কৃষ্ণ গুণ কহে
চিত্তত ধৰিলে কৃষ্ণ-গ্ৰাহে।।

এজন নিষ্কাম ভক্তৰ বাবে কৃষ্ণৰ গুণ নাম মনন-চিন্তন কৰাই একমাত্ৰ উদ্দেশ্য হৈ পৰে। সংসাৰ সুখ ভোগ, লাহ-বিলাহ তেওঁৰ বাবে তুচ্ছ; কেৱল অবিৰতভাৱে হৰিনাম শ্ৰৱণ কীৰ্ত্তন কৰি হৰিৰ ৰূপ হৃদয়ত ধাৰণ কৰাতেই ভক্তৰ পৰম প্ৰাপ্তি। 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ জৰিয়তে মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে ভক্তি আৰু ভক্তৰ স্বৰূপ অতি স্পষ্টকৈ বৰ্ণনা কৰিছে। এই আখ্যানভাগত ন-বিধা ভক্তিৰ বিষয়েও উল্লেখ কৰিছে।

শ্ৰৱণ কীৰ্ত্তন স্মৰণ বিষ্ণুৰ
অৰ্চ্চন পদ-সেৱন।
দাস্য সখিত্ব বন্দন বিষ্ণুত
কৰিব দেহ অৰ্পণ।।

ভগৱন্তৰ চৰণত আত্মসমৰ্পণ কৰাৰ পিছত ভক্তৰ সকলো দুখ ক্লেশ, ত্যাগ কষ্ট নাশ হয়। তেনে চৰম স্তৰত উপনিত হোৱা ভক্তৰ বাবে হৰি ভক্তিৰ বাহিৰে আন কৰ্ম একো নাথাকে। মৃত্যু ভয় নাশ হৈ তেওঁ সমস্ত জগতকে হৰিময় দেখে। তেনে ভক্তক ভগৱন্তই সকলো মুহূৰ্ততে ৰক্ষণাবেক্ষণ দিয়ে। নামঘোষাত মাধৱদেৱে কৈছে—

সহজ কৃপালু গুণক প্ৰকাশি এ।
ধৰি আছা হৰি ভকত বৎসল নাম।।
ধেনু যেন মতে বৎসক পালয় এ।
তুমি সেহিমতে ভকতক পালা ৰাম।।

ভগৱান ভক্ত বৎসল। এজনী গাই গৰুৱে পোৱালীটোক যেনেদৰে আৱৰি সামৰি লৈ ফুৰে, ঠিক সেইদৰে এজন একান্ত ভক্তৰ দুখ কষ্ট ভগৱানে বিনাশ কৰি ভক্তজনক বিপদমুক্ত কৰি তোলে। 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ত ভগৱানৰ ভক্ত বৎসলতা গুণৰ সুন্দৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। হিৰণ্যকশিপুৱে পুত্ৰ প্ৰহ্লাদক বিভিন্ন কৌশলেৰে হৰি ভক্তিৰ পৰা আঁতৰাবলৈ চেষ্টা কৰি যেতিয়া বিফল হ'ল; তেতিয়া তেওঁ ক্ৰোধত জ্বলি উঠিল। ক্ৰোধান্বিত হিৰণ্যকশিপুৱে অনুসৰসকলৰ দ্বাৰা প্ৰহ্লাদক নানা কঠোৰ শাস্তি বিহিলে যদিও ভক্তিৰ বলত প্ৰহ্লাদৰ কোনো অনিষ্ট সাধন নহ'ল। মহাপুৰুষ জনাই এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে—

কাট মাৰ বুলি বেঢ়িয়া সন্ধানে
দিলেক শূলৰ জাক।
বিষ্ণুক সুমৰি প্ৰহ্লাদ কুমাৰে
কটাক্ষো নকৰে তাক।।
ভোটা হুয়া শূল উফৰি পৰিল
দেখি আছে সৰ্বজনে।
হেন অদভূত দেখি দৈত্যপতি
পৰম শঙ্কিত মনে।।

সুদৃঢ় ভুক্তিৰ দ্বাৰা যেতিয়া এজন ভক্তই ভগৱানক তুষ্ট কৰে; তেতিয়া তেওঁৰ ভয়, শংকা একো নাথাকে। প্ৰহ্লাদৰ গাত এই সকলো লক্ষণ পৰিস্ফুট হৈ উঠা দেখা যায়।

'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ জৰিয়তে মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে সংসাৰৰ অনিত্যতা আৰু ক্ষণস্থায়িত্বৰ কথাও কৈছে; লগতে এই অসাৰ সংসাৰত যে হৰি ভক্তিয়েই একমাত্ৰ সত্য আৰু স্বাস্বত সেই কথাও দৃঢ়তাৰে উল্লেখ কৰিছে—

"অসাৰ সংসাৰ নাহি ইহাত বিশ্বাস।
জানি হৰি ভকতিক কৰিয়ো অভ্যাস।।
হৰিসে সবাৰো আত্মা বান্ধৱ ঈশ্বৰ।
মায়াময় ইটো পুত্ৰ ভাৰ্য্যা কলেৱৰ।।

'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ' আখ্যানটিৰ মাজেৰে মহাপুৰুষজনাই ভক্তি ধৰ্মৰ তাত্ত্বিক দিশসমূহৰ অৱতাৰণা কৰিছে। তেওঁৰ শাস্ত্ৰসমূহত সৎসংগৰ মহিমাৰ কথা বিভিন্ন ধৰণেৰে উল্লেখ কৰাৰ দৰে 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ মাজেৰেও সৎসংগৰ মাহাত্ম্যৰ কথা অতি সুন্দৰকৈ ব্যক্ত কৰিছে।

বিষ্ণু ভকতৰ সংগ লৈব প্ৰথমতে।
গুৰু মানি শুশ্ৰূষা কৰিবা ভালমতে।।
লৈয়া উপদেশ মাধৱক আৰাধিব।
যতেক সুকৃতি মানে কৃষ্ণত অৰ্পিব।।
কৃষ্ণ কথা শ্ৰৱণত শুদ্ধ হৈব মন।
সৰ্বদায় কৰিবেক কৃষ্ণৰ কীৰ্ত্তন।।

ভগৱন্তৰ পৰম পদ লাভ কৰিবলৈ দেৱতা, ব্ৰাহ্মণ বা ঋষি হোৱাৰ প্ৰয়োজন নাই। বিস্তৰ শাস্ত্ৰ জ্ঞান, তপ, জপ, যজ্ঞ, দান আদিৰো নিস্প্ৰয়োজন। একান্ত ভক্তিৰ বলতহে ভগৱানক তুষ্ট কৰিব পাৰি। প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰত উল্লেখ আছে এনেদৰে—

নালাগে ভক্তিত দেৱ দ্বিজ ঋষি হুইবে।
নালাগে সম্ভূত শাস্ত্ৰ বিস্তৰ জানিবে।।
তপ জপ যজ্ঞ দান সবে বিড়ম্বন।
কেৱল ভক্তিত তুষ্ট হোন্ত নাৰায়ণ।।

এজন একান্ত হৰি ভক্তক মৃত্যু ভয়েও বিচলিত কৰিব নোৱাৰে। তেওঁ কেৱল নিৰন্তৰ হৰি নাম স্মৰণ কৰা আৰু জগতত তাক প্ৰচাৰ কৰাটোৱেই কৰ্তব্য হৈ পৰে। প্ৰহ্লাদৰ ক্ষেত্ৰতো দেখা যায় যে ক্ৰোধান্বিত পিতৃয়ে কঠোৰ শাস্তি বিহাৰ পিছতো প্ৰাদে তেওঁৰ হৰিক ভজিবলৈকে উপদেশ দিছে—

'জানি পিতৃ এৰা অসুৰ কাম।
আপুন মন কৰা উপশাম।।
শত্ৰু মিত্ৰ সবে কৰিয়ো সম।
এহিসে কৃষ্ণৰ ভক্তি উত্তম।

প্ৰহ্লাদৰ কথাত উগ্ৰ মূৰ্তি ধৰি পিতৃয়ে যেতিয়া প্ৰ াদক সুধিছে যে হৰি যদি জগতৰ ঈশ্বৰ; তেন্তে ক'ত আছে মোক দেখুৱাই দে।

হৰিসে যদি জগতৰ ঈশ।
কৈত আছে তাক কহ উদ্দিশ।।
তেতিয়া শান্ত সমাহিতভাৱে প্ৰহ্লাদে কৈছে—
শুনিয়া প্ৰহ্লাদে বোলন্ত বাণী।
ব্যাপক বিভূ প্ৰভূ চক্ৰপাণি।।
সবাতো আছন্ত জগত স্বামী।
স্ফটিকৰ স্তম্ভে দেখোহো আমি।।

ভক্তিৰ প্ৰথম সোপান হ'ল সুদৃঢ় বিশ্বাস; তাৰ পিছত প্ৰেম, আস্থা, একাগ্ৰতা, একনিষ্ঠতা আদি। এজন একান্ত ভক্তই কায়, বাক্য আৰু মন একত্ৰে ভগৱানৰ চৰণত সমৰ্পণ কৰিব

লাগিব। এনে এজন ভক্তৰ বাবেহে ভগৱানৰ সৰ্ব্বব্যাপক ৰূপ সাক্ষাৎ কৰাটো সম্ভৱ। ভক্ত প্ৰহ্লাদৰ গাত ভক্তৰ সকলো লক্ষণেই সমাহিত হৈ আছিল; সেয়ে তেওঁ পিতৃক দৃঢ়তাৰে ক'ব পাৰিছিল যে স্ফটিকৰ স্তম্ভতে তেওঁ ভগৱানক দেখা পাইছে। ভক্তৰ বাঞ্ছা পূৰণ আৰু নিজ ভৃত্যৰ মুখে নিঃসৃত বাণীক সত্য প্ৰমাণ কৰিবলৈ ভক্ত বৎসল ভগৱান স্তম্ভতে ব্যক্ত হ'ল। ইয়াতেই আখ্যান ভাগৰ মহত্ব লোকাই আছে।

"সত্য কৰিবাক লাগি নিজ-ভৃত্য বাণী।
স্তম্ভতে বেকত ভৈলা প্ৰভু চক্ৰপাণি।।

ভগৱানক সন্তুষ্ট কৰিবলৈ ঐশ্বৰ্য্য, বিভূতি, বল, বিক্ৰম একোৰে প্ৰয়োজন নাই, একমাত্ৰ একান্ত ভক্তিৰেহে তেওঁক বশ কৰিব পাৰি। প্ৰহ্লাদৰ ভক্তিৰ বলতে নৰসিংহৰূপী ভগৱানে স্তম্ভৰ পৰা আবিৰ্ভাৱ হৈ দৈত্যপতি হিৰণ্যকশিপুক বধ কৰি পৃথিৱীৰ ভাৰ সংহাৰ কৰাৰ লগতে ভক্তক ৰক্ষা কৰি তেওঁৰ ভক্ত বৎসল গুণৰ প্ৰকাশ কৰিলে।

হিৰণ্যকশিপুৰ নিধনৰ পিছত নৰসিংহৰূপী ভগৱানৰ ক্ৰোধ একমাত্ৰ প্ৰহ্লাদেহে উপশম কৰিব পাৰিলে। বাকী দেৱতাসকলে বহু যত্ন কৰিও তেওঁক ক্ষান্ত কৰিব নোৱাৰিলে।

'পাৰত পৰিয়া আছয় প্ৰহ্লাদ
দেখি নৰসিংহ হাসি।
স্নেহত স্ৰৱয় নয়নৰ নীৰ
তুলিলা হাতে উল্লাসি।

'নৰসিংহ'ই প্ৰহ্লাদৰ স্তুতিত ক্ৰোধ সম্বৰণ কৰি তেওঁক ধৰ্ম, অৰ্থ, কাম, মোক্ষ আদি বৰ দিবলৈ বিচাৰিলে; কিন্তু এজন ভক্তৰ ভক্তিৰ বাহিৰে কোনো সম্পদতে লালসা নাথাকে। প্ৰহ্লাদে কেৱল একান্ত ভক্তিহে বাঞ্ছা কৰিলে।

এহি বুলি প্ৰলোভন্ত বৰ।
নবাঞ্ছন্ত প্ৰহ্লাদ কুমাৰ।।
ভক্তিসে পৰম লাভ জানি।
বিষ্ণুক বোলন্ত হাসি বাণী।।

ভক্তিৰ মহাসমূদ্ৰত অৱগাহন কৰা এজন ভক্তৰ বাবে জগতৰ সকলো সুখ, সম্পদ তুচ্ছ। আকণ্ঠভৰি অমৃত পান কৰাৰ পিছত কোনো বস্তুৰে তৃপ্ত কৰিব নোৱাৰাৰ দৰেই ভক্তৰ বাবে ভক্তিয়েই সৰ্বস্ব। 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ'ৰ মাজতো ভক্তিৰ মহত্ব প্ৰতিপাদিত হৈছে।

প্ৰহ্লাদ হৰি ভক্ত হোৱাৰ লগতে এজন পুত্ৰও আছিল। সেয়ে পিতৃৰ কৃতকৰ্মৰ বাবে তেওঁ ভগৱানক প্ৰাৰ্থনা কৰিছে আৰু পিতৃয়ে যাতে পাপৰ পৰা উদ্ধাৰ পায় তাৰ কামনা কৰিছে।

তযু পাৱে মাগো এক বৰ।
তুমি প্ৰভু জগত ঈশ্বৰ।।
তোহ্মাক নিন্দিলে পিতৃ মোৰ।
সিজিল পাতক মহাঘোৰ।।
তাত হন্তে পিতৃ নিস্তৰোক।
এতেকে প্ৰসাদ দিয়ো মোক।

প্ৰহ্লাদৰ প্ৰাৰ্থনাত ভগৱান তুষ্ট হৈ নিজ মুখে ভক্তৰ মহিমা ব্যক্ত কৰিছে—

পৰম বৈষ্ণৱ তই পুত্ৰ ভৈলি যাৰ।
একৈশ পুৰুষ তাৰ কৰিলি উদ্ধাৰ।।
যৈত থাকে মোৰ ভক্ত উদাৰ চৰিত্ৰ।
কীট পতঙ্গকো তথা কৰয় পৱিত্ৰ।।
নকৰে প্ৰাণীক হিংসা নাহি একো স্পৃহা।
আমাত অৰ্পন কৰে আপুনাৰ দেহা।।
ভকততে শ্ৰেষ্ঠ তই পাইলি বাঞ্ছা সিদ্ধি।
কৰিয়ো পিতৃৰ প্ৰেত-কাৰ্য যেন বিধি।।
মোত চিত্ত দিয়া কাৰ্য্য কৰিয়ো সন্তোষে।
তেৰে কি কৰিবে আৰ সংসাৰৰ দোষে।।

"কীৰ্ত্তন-ঘোষা"ৰ 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ' আখ্যানটিত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে ভক্তিধৰ্মৰ তাত্ত্বিক দিশসমূহ কাহিনীৰ মাজেৰে সাৱলীলভাৱে উত্থাপন কৰিছে। ভক্ত আৰু ভগৱানৰ মধুৰ সম্পৰ্ক, ভক্তিৰ শ্ৰেষ্ঠতা, ভক্ত আৰু ভক্তিৰ স্বৰূপ, সৎসংগৰ মহিমা, অসাৰ সংসাৰত হৰি ভক্তিৰ মহত্ব আদি উল্লেখ কৰিছে লগতে অহংকাৰ, দম্ভ, ক্ৰোধ আদিয়ে কেনেকৈ হৰি ভক্তিৰ পথত অন্তৰায় হৈ ঠিয় দিয়ে আৰু মনুষ্য মাত্ৰৰে পতন ঘটিব পাৰে, সেইসমূহ দিশো আখ্যানভাগত সুন্দৰকৈ প্ৰকাশ পাইছে।

কৃষ্ণ ভক্তিয়েই একমাত্ৰ পথ যি সংসাৰ সমুদ্ৰত জড়পুৰ হৈ থকা মনুষ্যক অনায়াসে পৰিত্ৰাণ কৰিব পাৰে। এই ভক্তিয়েই মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ প্ৰচাৰিত ভক্তি ধৰ্মৰ মুখ্য আদৰ্শ আৰু চৰম লক্ষ্য।

উপসংহাৰ ঃ

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ মূৰ্তি স্বৰূপ 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা'ৰ চতুৰ্বিংশতি অৱতাৰ বৰ্ণনেৰে আৰম্ভ হৈ উৰেষা বৰ্ণনত সমাপ্ত হৈছে। মুঠ সতাইশটা খণ্ডেৰে 'কীৰ্ত্তন-ঘোষা' পৰিপুষ্ট হৈ আছে। প্ৰত্যেকটো আখ্যান-উপাখ্যানে ভক্তি ধৰ্মৰ মূল আদৰ্শসমূহ ব্যক্ত কৰাৰ লগতে কৃষ্ণভক্তিৰ সীমাহীন মহিমাৰ বিষয়েও ঘোষণা কৰিছে। হৰি ভক্তিয়ে হ'ল সংসাৰ তৰাৰ একমাত্ৰ মহৌষধ। কীৰ্ত্তনৰ চত্ৰে চত্ৰে হৰিভক্তিৰ বিষয়ে

ঘোষিত হৈছে। কীৰ্ত্তনৰ অন্তৰ্গত বলি চলন, হৰমোহন, অক্ৰুৰৰ বাঞ্ছা পূৰণ, স্যমন্তক হৰণ, দামোদৰ বিপ্ৰ উপাখ্যান, গজেন্দ্ৰ উপাখ্যান, প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ আদি আখ্যান-উপাখ্যানসমূহৰ মাজেৰে ভক্তিৰ শ্ৰেষ্ঠতা, ভক্তৰ চৰিত্ৰ, লক্ষণ, ভগৱন্তৰ ভক্ত বৎসলতা আদি ভক্তিধৰ্মৰ প্ৰতিপাদ্য দিশসমূহ সুন্দৰকৈ প্ৰকাশ ঘটিছে।

আমাৰ আলোচ্য 'প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ' আখ্যানটিৰ জৰিয়তেও মহাপুৰুষ শংকৰদেৱে হৰিৰ ভক্তিৰ মাহাত্ম্য, ভক্তৰ দ্ৰোহ আচৰণ কৰাজনৰ পতন, অহঙ্কাৰ দম্ভৰ অৱক্ষয়, ভক্ত আৰু ভগৱানৰ মধুৰ সম্পৰ্ক আৰু বিজয় ঘোষণা কৰিছে। এই আখ্যানভাগত শৰণৰ মাহাত্ম্যও ফুটি উঠিছে। ভক্তিৰ শেষ পৰ্যায় হৈছে শৰণ। প্ৰভুৰ পদমূলত একান্তচিত্তে কায় মনু বাক্যে আত্মসমৰ্পণ কৰাজনেই প্ৰভুৰ কৃপাৰ পাত্ৰ হৈ সকলো দুখৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পায়। প্ৰহ্লাদ ভক্তিত তাৰেই প্ৰতিফলন ঘটিছে। তদুপৰি প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰত অন্য দুটামান দিশো প্ৰকাশ পাইছে।

আমাৰ সমাজত এটা বদ্ধমূল ধাৰণা আছে যে মানুহে বৃদ্ধ বয়সতহে হৰি ভক্তি কৰিব লাগে। শিশুকালত খেলা-ধূলা কৰা, যৌৱন কালত ধন সোণ অৰ্জন কৰি সংসাৰ কৰা আৰু সংসাৰৰ সকলো লেঠা শেষ কৰি বৃদ্ধ বয়সত হৰিনাম লোৱা। কিন্তু প্ৰহ্লাদ কাহিনীৰে মহাপুৰুষজনাই শিশুকালৰ পৰাই হৰিভক্তি কৰিবলৈ আহ্বান জনায়। প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ অকল শাস্ত্ৰ শোভন এটা কাহিনীয়ে নহয়, ইয়াৰ দ্বাৰা শংকৰদেৱে ইয়াকে শিক্ষা দিছে যে শিশুকালৰ পৰাই আধ্যাত্মিকতাৰে উদ্বুদ্ধ হৈ সকলো কৰ্ম কৰাৰ লগতে হৰিসেৱা নিত্য-নৈমিত্তিকভাৱে কৰিব লাগে। তেতিয়াহে ঈশ্বৰৰ কৃপা লব্ধ হ'ব পাৰে। এই আখ্যানটিৰ দ্বাৰা জন্মতত্ত্বৰ কথাও প্ৰকাশ পাইছে। সন্তান গৰ্ভত থকা সময়ত মাতৃগৰাকীয়ে সৎসংগত সৎ কথা চৰ্চা কৰিব পাৰিলে গৰ্ভস্থ সন্তান কেতিয়াও অসৎ, অসদাচাৰী নহয়। বৰং তেনে সন্তান সৎ চৰিত্ৰৱান হৈ জন্মগ্ৰহণ কৰে। প্ৰহ্লাদ জন্মৰ সৈতে তেনে কাহিনী জড়িত হৈ আছে। দেৱৰ্ষি নাৰদৰ তত্ত্বাৱধানত প্ৰহ্লাদ মাতৃয়ে গৰ্ভাৱস্থাত যিখিনি সৎ উপদেশ লাভ কৰিছিল আৰু ঈশ্বৰৰ স্বৰূপ উপলব্ধি কৰিছিল, তাৰ ফলশ্ৰুতিতে প্ৰহ্লাদ দৰে এজন পৰম হৰিভক্তই জন্মলাভ কৰিলে। এই তত্ত্বত বৈজ্ঞানিক সত্যতাও নিহিত হৈ আছে। মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ কীৰ্ত্তন ঘোষাৰ প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰত একশৰণ ভক্তি ধৰ্মৰ সকলো তত্ত্বৰে পৰিস্ফুৰণ ঘটাৰ লগতে গুৰুজনাৰ ভক্তিবাদ প্ৰকাশৰ ক্ষেত্ৰত এই আখ্যানটিৰ বিস্তৰ গুৰুত্ব আছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

ডেকা হাজৰিকা, কৰবী ঃ অসমীয়া কবিতা, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, শ্ৰী মাখন হাজৰিকা, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, ১৯৯৮

দাস, ইলাৰাম ঃ নামঘোষা ৰসামৃত, তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৪, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল (সৰ্বস্বত্ব সংৰক্ষিত)

দত্তবৰুৱা, হৰিনাৰায়ণ (সম্পা.) ঃ গুৰুচৰিত (ৰামচৰণ ঠাকুৰ বিৰচিত) ২৪শ প্ৰকাশ, ২০১৫, প্ৰকাশক ঃ শ্ৰীজ্যোতিন্দ্ৰ নাৰায়ণ দত্তবৰুৱা

বায়ন, ভৱজিৎ (সম্পা.) ঃ শ্ৰীশ্ৰীশংকৰদেৱ মাধৱদেৱ বিৰচিত কীৰ্ত্তন-ঘোষা আৰু নামঘোষা, আৰ জি পাব্লিকেশ্বনছ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৮

শইকীয়া, যোগেন্দ্ৰ নাথ ঃ বৈষ্ণৱ সাহিত্যত এভুমুকি, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৪

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

ৰাষ্ট্ৰীয় সংহতি নিৰ্মাণত তুলনামূলক সাহিত্যৰ ভূমিকা

ড° প্ৰভাত ভূঞা

সংক্ষিপ্ত-সাৰ ঃ

তুলনা হৈছে মানুহৰ বৌদ্ধিক চিন্তা-চেতনাৰ সহজাত এক প্ৰক্ৰিয়া। মানুহে নিজৰ স্থিতি সম্পৰ্কে জানিবলৈও আনৰ বিষয়ে জনা দৰকাৰ। ইয়াৰ উপৰিও বৰ্তমান বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ দ্ৰুত প্ৰসাৰে গোটেই পৃথিৱীখনকেই এখন গাঁৱত পৰিণত কৰিছে। বিশ্বায়নৰ বতাহে পৃথিৱীৰ চুকে-কোণে থকা সকলো মানুহকে চুই গৈছে। এনে সময়তে কোনো মানুহেই অকলশৰীয়াকৈ থাকিব নোৱাৰে। প্ৰয়োজনৰ তাগিদাতে এখন ঠাইৰ মানুহে বিভিন্ন ঠাইৰ মানুহৰ লগত সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিবলৈ বাধ্য হৈছে। ভাষাই হৈছে যিহেতু মানুহৰ যোগাযোগৰ ঘাই উপায় আৰু মানৱৰ চিন্তা-চেতনা, অভিজ্ঞতাৰ বৰ্হিপ্ৰকাশেই হ'ল সাহিত্য। আনহাতে পৃথিৱীৰ যিকোনো ঠাইৰ মানুহৰ স্বাভাৱিক প্ৰবৃত্তিসমূহ একেই, সেয়ে বিভিন্ন ঠাইৰ মানুহৰ মাজত সাহিত্যৰ জৰিয়তে ঐক্যসূত্ৰ আৱিস্কাৰ কৰা আৰু সাহিত্য স্ৰজন তথা সাহিত্যৰ অভিজ্ঞতাক একক বুলি ধৰি লৈ কৰা সাহিত্যৰ অধ্যয়নৰ ফলশ্ৰুতিয়ে হৈছে তুলনামূলক সাহিত্য। তুলনামূলক সাহিত্য হৈছে সাহিত্য অধ্যয়নৰ এক দৃষ্টিভংগী। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশৰ ভাষাৰ সাহিত্যসমূহৰ মাজত পাৰস্পৰিক সম্পৰ্কৰ সন্ধান কৰাই ইয়াৰ মূল লক্ষ্য।

ভাৰত এখন বহুভাষিক ৰাষ্ট্ৰ। ইয়াত বিভিন্ন ভাষা, ধৰ্ম, বৰ্ণৰ মানুহে বাস কৰে। প্ৰায়বোৰ ভাষাৰে নিজা নিজা সাহিত্য আছে। সাহিত্যই যিহেতু কোনো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক জীৱনৰ প্ৰতিফলন ঘটায়। সেয়ে ভাৰতৰ দৰে দেশত তুলনামূলক সাহিত্যৰ জৰিয়তে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভাষা-সাহিত্য অধ্যয়নৰ যোগেদি এইসমূহৰ মাজত পাৰস্পৰিক যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰিব পাৰি।

ভাৰতৰ সংস্কৃতি বৈবিধ্য আৰু বৈচিত্ৰ্যময় হ'লেও ই অখণ্ড ৰূপতো প্ৰতিফলিত হয়। ভাৰতীয় দৰ্শন, ৰামায়ণ-মহাভাৰত এই মহাকাব্য দুখনৰ প্ৰভাৱ, ইংৰাজ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ বিৰুদ্ধে গঢ়ি উঠা স্বাধীনতা আন্দোলন আদি কাৰকবোৰ সৰ্বভাৰতীয় মানসক একক ৰূপ প্ৰদান কৰিছে আৰু এই বৈশিষ্ট্যসমূহ আঞ্চলিক বা প্ৰাদেশিক সাহিত্যসমূহৰ মাজেদি প্ৰকাশ লাভ কৰা দেখা যায়।

আমাৰ এই গৱেষণা-পত্ৰত তুলনামূলক সাহিত্য অধ্যয়নে ভাৰতৰ দৰে ৰাষ্ট্ৰত সংহতি বা অখণ্ডতা নিৰ্মাণত কিদৰে আগবাঢ়িব পাৰে, সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে। গৱেষণা-পত্ৰখনত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়
ডিফু চৌহদ, ডিফু, কাৰ্বি আংলাং,
পিন - ৭৮২৪৬২
৭০০২৩০৮৭৮৮
prabhatnlp@gmail.com

বীজ শব্দ ঃ

তুলনা, তুলনামূলক সাহিত্য, ৰাষ্ট্ৰীয় সংহতি, ভাৰতবৰ্ষ, বৈবিধ্য, বৈচিত্ৰ্য

০.০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

দুই বা ততোধিকৰ মাজত গুণ-দোষ, সমতা-বিষমতা, ভাল-বেয়া বিচাৰ কৰাই হৈছে 'তুলনা'। ই মানৱৰ চিন্তা-চেতনাৰ সহজাত এক প্ৰক্ৰিয়া। মানুহে চিন্তা কৰিবলৈ শিকাৰ পৰাই জ্ঞাতে বা অজ্ঞাতে সৰ্বদাই তুলনাৰ সহায় লৈ আহিছে। আৰু ইয়েই মানুহৰ মানসিক, বৌদ্ধিক, ভৌতিক আদি সকলো প্ৰকাৰৰ উন্নতি সাধনত গুৰুত্বপূৰ্ণ সহায় আগবঢ়াই আহিছে।

বৰ্তমান সময়ত বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ দ্ৰুত প্ৰসাৰে গোটেই পৃথিৱীখনকে এখন গাঁৱত পৰিণত কৰিছে। বিশ্বায়নৰ বতাহে পৃথিৱীৰ চুকে-কোণে থকা সকলো মানুহকে চুই গৈছে। এনে সময়ত কোনো মানুহেই অকলশৰীয়াকৈ থাকিব নোৱাৰে। প্ৰয়োজনৰ তাগিদাতে এখন ঠাইৰ মানুহে বিভিন্ন ঠাইৰ মানুহৰ লগত সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিবলৈ বাধ্য হৈছে। ভাষাই যিহেতু মানুহৰ যোগাযোগৰ ঘাই উপায় আৰু মানুহৰ চিন্তা-চেতনা, অভিজ্ঞতাৰ বহিৰ্প্ৰকাশেই হ'ল সাহিত্য। সেয়ে বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ মানৱ মনৰ খবৰ সাহিত্যৰ জৰিয়তে লাভ কৰিব পৰা যায়। অৰ্থাৎ দুখন দেশৰ মানুহৰ আন্তঃসম্পৰ্ক গঢ়াত সাহিত্যই বিশেষ ভূমিকা ল'ব পাৰে। আনহাতে পৃথিৱীৰ যিকোনো ঠাইৰ মানুহৰে স্বাভাৱিক প্ৰবৃত্তিসমূহ একেই। বিশ্বৰ যি ঠাইৰে মানুহ নহওক লাগিলে সুখ-দুখ, ভোক-পিয়াহ, হাঁহি-কান্দোন, মিলন-বিচ্ছেদ আদিৰ অনুভৱবোৰ একেই আৰু তাৰ মাজতে ফুটি উঠে দেশ-কাল-পৰিৱেশ নিৰ্বিশেষে একে মানুহৰ পৰিচয়। সেইদৰে সাহিত্যৰ মাজতো থাকে এক সাৰ্বজনীন অনুভৱ। সেয়ে ভাষিক, ৰাজনৈতিক, ভৌগোলিক সীমা অতিক্ৰম কৰি সাহিত্য স্ৰজন আৰু সাহিত্যিক অভিজ্ঞতাক একক বুলি ধৰি লৈ পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ঠাইৰ মানুহৰ মাজত সাহিত্যৰ জৰিয়তে একতা সন্ধানৰ প্ৰেৰণাৰে কৰা অনেক সাহিত্যৰ তুলনামূলক অধ্যয়নৰ ফলশ্ৰুতিয়ে হ'ল তুলনামূলক সাহিত্য। তুলনামূলক সাহিত্য হৈছে সাহিত্য অধ্যয়নৰ এক দৃষ্টিভংগী। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশৰ বিভিন্ন ভাষাৰ সাহিত্যসমূহৰ মাজত পাৰস্পৰিক সম্পৰ্কৰ সন্ধান কৰাই ইয়াৰ মূল লক্ষ্য।

ভাৰত এখন বহুভাষিক ৰাষ্ট্ৰ। ইয়াত বিভিন্ন ভাষা, ধৰ্ম, বৰ্ণৰ মানুহে বাস কৰে। প্ৰায়বোৰ ভাষাৰে নিজা নিজা সাহিত্য আছে। সাহিত্যই যিহেতু কোনো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটায়। সেয়ে ভাৰতৰ দৰে দেশত তুলনামূলক সাহিত্যৰ জৰিয়তে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভাষা-সাহিত্য অধ্যয়নৰ যোগেদি এইসমূহৰ মাজত যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰিব পাৰি।

ভাৰতৰ সংস্কৃতি বৈবিধ্য আৰু বৈচিত্ৰ্যময় হ'লেও ই অখণ্ডৰূপতো প্ৰতিফলিত হয়। ভাৰতীয় দৰ্শন, ৰামায়ণ, মহাভাৰত এই দুই মহাকাব্যৰ প্ৰভাৱ, ভক্তি আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ, ইংৰাজ ঔপনিৱেশিক শাসনৰ বিৰুদ্ধে গঢ়ি উঠা স্বাধীনতা আন্দোলন আদি কাৰকবোৰে সৰ্বভাৰতীয় মানসক একক ৰূপ প্ৰদান কৰিছে আৰু এই বৈশিষ্ট্যসমূহ ভাৰতৰ আঞ্চলিক বা প্ৰাদেশিক সাহিত্যসমূহৰ মাজেদি প্ৰকাশ লাভ কৰা দেখা যায়। প্ৰাদেশিক বা আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহৰ তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদি এইবোৰৰ মাজত ভাৰতীয় ঐক্যসূত্ৰ আৱিষ্কাৰ কৰিব পৰা যায়।

আমাৰ এই প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা-পত্ৰত তুলনামূলক সাহিত্য অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ভাৰতৰ দৰে ৰাষ্ট্ৰত ৰাষ্ট্ৰীয় সংহতি বা অখণ্ডতা নিৰ্মাণত কিদৰে আগবাঢ়িব পাৰি, সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

গৱেষণা-পত্ৰখনত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

১.০ বিষয় প্ৰৱেশ ঃ

কোনো এখন দেশৰ সাহিত্যৰ মাজত সেই দেশৰ জাতীয় চিন্তা, লোক-সংস্কৃতি আৰু জীৱন দৰ্শনৰ প্ৰতিফলন ঘটে। ভাৰতীয় সাহিত্যৰ মাজতো এনেবোৰ দিশৰ প্ৰকাশ দেখা যায়। মনকৰিবলগীয়া কথা এয়ে যে ভাৰতীয় সাহিত্য বুলিলে কেৱল কোনো এক ভাষাৰ সাহিত্যকে নুবুজায়। ভাৰতৰ সংবিধানে ২৪ টা ভাষাক স্বীকৃতি প্ৰদান কৰিছে। ইয়াৰ উপৰিও অনেক ভাষা-সাহিত্য ভাৰতত প্ৰচলন আছে। এই ভাষা-সাহিত্যসমূহৰ মাজত গুঞ্জৰিত একক সুৰটোৱেহে ভাৰতীয় সাহিত্যক প্ৰতিফলন ঘটায়। সেয়ে ৰাধাকৃষ্ণণে ভাৰতীয় সাহিত্য সম্পৰ্কে এই বুলি মত আগবঢ়াইছে— "বহুতো ভাষাত ৰচনা কৰিলেও ভাৰতীয় সাহিত্য মূলতঃ একেটাই।" ভাৰতৰ বিভিন্ন ভাষাত ৰচিত সাহিত্যক একক বুলি ধৰিলেও এইবোৰৰ মাজত স্বকীয় বৈশিষ্ট্য কিছুমানো ৰক্ষিত হৈ আছে। গতিকে বিভিন্ন আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহৰ মাজত তুলনামূলক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ভাৰতীয় সাহিত্যৰ

আত্মাৰ অনুসন্ধান কৰাটোৱে তুলনামূলক ভাৰতীয় সাহিত্যৰ প্ৰধান লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য। এইক্ষেত্ৰত তলত দিয়া ধৰণেৰে আগবাঢ়িব পাৰি—

১.১ ভাষিক পৰম্পৰাৰ অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতৰ ভাষিক স্থিতি বৈচিত্ৰ্যময়। ইন্দো-ইউৰোপীয়, দ্ৰাবিড়ীয়, অষ্ট্ৰো-এছীয়, চীন-তিব্বতীয়, তিব্বত-বৰ্মীয় আদি পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ভাষা গোষ্ঠীৰ ভাষা ভাৰতত প্ৰচলন আছে। অসমীয়া, হিন্দী, বাংলা, উৰিয়া, মৈথিলী, ভোজপুৰী আদি গৰিষ্ঠ সংখ্যক ভাষাই ইন্দো-ইউৰোপীয় ভাষা পৰিয়ালৰ সংস্কৃতৰ পৰা পালি, প্ৰাকৃত অপভ্ৰংশৰ মাজেৰে আহি খ্ৰীষ্টীয় নৱম-দশম শতিকামানত আঞ্চলিক ৰূপত প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰিছে। গতিকে এই ভাষাসমূহৰ মাজত শব্দতাত্ত্বিক, ৰূপতাত্ত্বিক, বাক্যতাত্ত্বিক আদি দিশসমূহত মিল পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰ উপৰি ভাষিক সহাৱস্থানৰ বাবে এটা ভাষাগোষ্ঠীৰ ভাষাৰ শব্দ আহি আন এটা ভাষাগোষ্ঠীৰ ভাষাৰ মাজত সোমাই পৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে অসমীয়া ভাষাত তিব্বত-বৰ্মী বা চীন-তিব্বতীয় ভাষাৰ শব্দৰ কথাকে ক'ব পাৰি। সেয়ে ভাষাৰ তুলনামূলক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ভিন ভিন ভাষাগোষ্ঠীৰ লোকৰ মাজত একতাৰ সন্ধান কৰিব পৰা যায়।

১.২ আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহত পৌৰাণিক কাহিনী, মহাকাব্যিক পৰম্পৰাৰ অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতীয় জনমানসত ৰামায়ণ আৰু মহাভাৰত এই দুখন মহাকাব্যৰ প্ৰভাৱ অপৰিসীম। ভাৰতীয় সাহিত্যৰ ভাৰতীয়ত্ব নিৰ্মাণত মহাকাব্য দুখনে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। ৰামায়ণৰ কাহিনীয়ে সমগ্ৰ দক্ষিণ-পূব এছিয়া, নেপাল, থাইলেণ্ড, কম্বোদিয়া আদি দেশলৈও বিস্তাৰ লাভ কৰিছিল। ভাৰতৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহতো বিভিন্ন ৰূপত ৰামায়ণ-মহাভাৰতৰ কাহিনীৰ বিকাশ পৰিলক্ষিত হয়। এই আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহত পঢ়ুৱৈক আকৰ্ষণৰ বাবে স্থানীয় ৰহণ সংযোজিত হ'লেও মহাকাব্য দুখনৰ মূল আদৰ্শ আৰু আবেদনকে প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। ৰামায়ণ, মহাভাৰত এই মহাকাব্য দুখনৰ উপৰিও বিভিন্ন পুৰাণ, উপপুৰাণ,

পঞ্চতন্ত্ৰৰ সাধু, জাতকৰ সাধু আদিবোৰেও ভাৰতীয় আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহত বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ সাহিত্য সৃষ্টিত অৰিহণা যোগাই আহিছে। এইসমূহে পৌৰাণিক ভাৰতীয় সাহিত্যৰ ঐশ্বৰ্যময় ধাৰাটোক নিৰবচ্ছিন্নভাৱে প্ৰবাহিত কৰি ৰখাৰ লগতে ভাৰতীয় ঐতিহ্য পৰম্পৰাকো নানান প্ৰতিকূলতাৰ মাজত বৰ্তাই ৰাখিছে। ভাৰতৰ আঞ্চলিক সাহত্যিসমূহৰ তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদি পৌৰাণিক কাহিনী, ৰামায়ণ-মহাভাৰত মহাকাব্য দুখনে ভাষিক-সাহিত্যিক বিবিধতাৰ মাজতো কিদৰে এক ভাৰতীয় চিন্তাৰে বান্ধি ৰাখিছে তাৰ উমান পাব পাৰি।

১.৩ ভাৰতীয় সাহিত্যত ভাৰতীয় চিন্তা-দৰ্শনৰ অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতীয় মনত দৰ্শনৰ প্ৰভাৱ অতি গভীৰ। ষড়দৰ্শনৰ বিভিন্ন তত্ত্বই ৰেখাপাত কৰা ভাৰতীয় মনত জীৱন-মৃত্যু সম্পৰ্কীয় ধাৰণা, যেনে— জন্মান্তৰবাদ, আত্মাৰ অবিনশ্বৰতা, কৰ্মফল আদিৰ ধাৰণা অতি প্ৰবল। ভাৰতীয় মনে ধৰ্ম, অৰ্থ, কাম আৰু মোক্ষ এই চতুৰ্বৰ্গৰ সাধনাকে জীৱনৰ পৰম লক্ষ্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰে। ব্ৰহ্ম আৰু জীৱৰ সম্পৰ্ক, পুৰুষ-প্ৰকৃতি, বিদ্যা-অবিদ্যা আদি তত্ত্বৰ বিশ্লেষণো মানুহে প্ৰায় অপ্ৰয়াসে নিজৰ চিন্তাধাৰাত উত্তৰাধিকাৰসূত্ৰে লাভ কৰিছে। এইবোৰ দাৰ্শনিক চিন্তাধাৰাৰ বীজ ভাৰতৰ লোকমন আৰু লোক-সংস্কৃতিত এনে ভাবে মিহলি হৈ আছে যে বিভিন্ন অঞ্চলৰ সাহিত্যত ই যিকোনো প্ৰকাৰে প্ৰতিফলিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে অসমীয়া দেহবিচাৰ গীত, টোকাৰী গীত, কামৰূপী লোকগীত আদিৰ কথা ক'ব পাৰি।

মুছলমানসকল ভাৰতলৈ অহাৰ পাছত আৰবী-ফাৰ্চী ভাষা-সাহিত্যৰ সংস্পৰ্শলৈ আহি ভাৰতীয় সাহিত্যই এক মিশ্ৰিত চিন্তাৰ প্ৰতিফলন ঘটাইছিল। উৰ্দু ভাষাত ইছলামিক চুফীবাদৰ আধ্যাত্মিক ৰহস্যবাদ আৰু ভাৰতীয় আধ্যাত্মিক দৰ্শনৰ মিশ্ৰণত এক ধৰণৰ অভিনৱ সাহিত্যৰ সৃষ্টি হৈছিল, এনেধৰণৰ সাহিত্যসমূহৰ মূল বক্তব্যই সকলোধৰণৰ ৰক্ষণশীলতা-প্ৰাচীনতা অস্বীকাৰ কৰি 'ভগৱান এজনেই, তেৱেঁই সকলোৰে স্ৰষ্টা' এই কথাকে তুলি ধৰিছিল। উৰ্দু কবি আমীৰ খুচৰুৰ কবিতাই জাতি-বৰ্ণ-সম্প্ৰদায়ৰ সংকীৰ্ণতা ভেদি মহৎ ভগৱৎ প্ৰেম আৰু সৌন্দৰ্য তৃষ্ণাৰ গুণ-গান কৰিছিল। মীৰ টাকি মীৰ, নাজী আকবৰবাদী আদি মুছলমান কবি-প্ৰচাৰকৰ হাতত চুফীবাদৰ ভগৱান সন্ধানী ৰহস্যবাদী চিন্তা ভাৰতীয় বেদান্ত দৰ্শন আৰু ভক্তিতত্ত্বৰ লগত মিলি পৰিছিল। কবীৰৰ দোহা আৰু আজান ফকীৰৰ জিকিৰৰ মাজতো হিন্দু-মুছলমানৰ চিন্তা আৰু দৰ্শনৰ মিশ্ৰণ দেখা যায়। এয়া কেৱল সম্ভৱ হৈছিল ভাৰতীয় সংস্কৃতিৰ দিয়া-লোৱা বাতাবৰণ আৰু সাংস্কৃতিক সমন্বয় প্ৰৱণতাৰ ফলস্বৰূপে। ইয়েই বিভিন্ন ভাষাত ৰচিত ভাৰতীয় সাহিত্যক একক আৰু অনন্য ৰূপ প্ৰদান কৰিছে।

১.৪ ভাৰতীয় সাহিত্যত ভক্তি আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ অধ্যয়ন ঃ

মধ্যযুগীয় ভাৰতীয় সাহিত্য ঘাইকৈ ভক্তিকেন্দ্ৰিক। খ্ৰীষ্টীয় অষ্টম, নৱম শতিকামানত দক্ষিণ ভাৰতত উদ্ভৱ হোৱা ভক্তি ধৰ্মই সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষকে ধুৱাই পেলাইছিল। কাশ্মীৰত উদ্ভৱ হোৱা শৈৱ ধৰ্মই দক্ষিণ ভাৰতৰ তামিলনাডুত খোপনি পুতিছিল। নেপালত উদ্ভৱ হোৱা মধ্যভাৰতত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা বৌদ্ধ ধৰ্মও অসমত শাক্ত তান্ত্ৰিকতাৰ মাজত মিলি পৰিছিল। এই আটাইবোৰ ধৰ্মীয় চিন্তাৰ কাষে কাষে কিছুমান সাহিত্য ৰূপৰ উদ্ভৱ আৰু বিকাশ ঘটিছিল আৰু এই সাহিত্যসমূহৰ মাজত আঞ্চলিকতা আৰু অখণ্ডতা দুয়োটাই প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়।

ভক্তি সাহিত্যসমূহ ৰচিত হৈছিল বিভিন্ন প্ৰাদেশিক ভাষাত। ভগৱৎ ভক্তিক জনসাধাৰণৰ ওচৰ চপাই নিয়াৰ বাবে সেই সময়ৰ লেখক-কবিসকলে সংস্কৃতৰ সলনি প্ৰাদেশিক ভাষাত ভক্তিমূলক গীত, কবিতা আদি ৰচনা কৰিছিল। ভক্তি কবিতাৰ মূল বিষয় আছিল প্ৰেম। ভগৱান তথা ভগৱানসৃষ্ট সকলো জীৱকে প্ৰেম আৰু কৰুণাৰ দৃষ্টিৰে চাবলৈ শিকাইছিল। এই গীতবোৰ আছিল ভক্ত আৰু ভগৱানৰ সংযোগ স্থাপনৰ মাধ্যমো। ইন্দ্ৰনাথ চৌধুৰীৰ ভাষাত—

"It is poetry of connection. It connects God, god and all creation– the god of myth, the god of philosophy, the god in the temple and god in every human being." [Choudhuri, 1992 : 31-32]

বিভিন্ন আঞ্চলিক ভাষাৰ মাধ্যমত প্ৰতিফলিত ভাৰতীয় ভক্তি সাহিত্যৰ তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদিও অঞ্চলভেদে ভক্তি সাহিত্যৰ পটভূমি, ইয়াৰ স্বৰূপ আৰু সৰ্বভাৰতীয় ভক্তি আন্দোলনৰ লগত ইয়াৰ সম্পৰ্ক বিচাৰ কৰিব পৰা যায়।

১.৫ ভাৰতীয় সাহিত্যৰ সৌন্দৰ্যতাত্ত্বিক অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতীয় সৌন্দৰ্যতত্ত্বই ভাৰতীয় সাহিত্যৰ মাজত অখণ্ড সাদৃশ্য সৃষ্টি কৰাৰ এক উপাদান হিচাপে চিহ্নিত হৈ আহিছে। ভাৰতীয়ৰ মনত সৌন্দৰ্য হৈছে এক আত্মিক উপলব্ধি। সৌন্দৰ্য মংগলময়। বাহ্যিক দৃষ্টিত সুন্দৰ হ'লেও সি সৎ আৰু মংগলময়

নহ'বও পাৰে। কবি, শিল্পী আদিয়ে য'ত সুন্দৰত্ব আৰু মংগলময়তা দেখা পায় তাকেই সুন্দৰ হিচাপে উপস্থাপন কৰে। ভাৰতীয় সাহিত্যত সৎ, চিৎ, আনন্দস্বৰূপ পৰমব্ৰহ্ম আৰু সত্য-শিৱ-সুন্দৰৰ মহিমা প্ৰকাশ কৰা হয়। সমগ্ৰ ভাৰতীয় সাহিত্যত অতীজৰে পৰা ধৰ্মীয় চিন্তা নাইবা আধ্যাত্মিক উপলব্ধিৰ মাজেৰেহে সৌন্দৰ্যতত্ব প্ৰকাশ পাই আহিছে। ভাৰতীয় সৌন্দৰ্যতত্ব এককৰূপে বিবেচিত হয়। ভাৰতীয় আলংকাৰিক, কবি, সাহিত্যিকসকলে কাব্যপাঠত অসীম আনন্দৰ সন্ধান পায়। সেয়ে কাব্যপাঠৰ আনন্দক তেওঁলোকে ব্ৰহ্মানন্দৰ সহোদৰ বুলি অতি উচ্চস্থান প্ৰদান কৰিছে।

ভাৰতীয় লেখকসকলে নিজৰ সৃষ্টিকৰ্মত পৰিস্থিতি অনুসৰি নানা কদৰ্য পৰিৱেশৰ বৰ্ণনা কৰিলেও ভাৰতীয় মানসত থকা 'সুন্দৰ আৰাধনা জীৱনৰ খেল' আৰু 'সত্যম শিৱম সুন্দৰম' এনেধৰণৰ বাণীক সাৰোগত কৰি মহান মানৱীয় সৌন্দৰ্যৰ সন্ধান কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

১.৬ ভাৰতীয় সাহিত্যত ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনে জাতি, বৰ্ণ, ধৰ্ম নিৰ্বিশেষে সকলো ভাৰতীয়ক একতাৰ ডোলেৰে বান্ধি পেলাইছিল। ইয়েই ভাৰতৰ চুকে-কোণে থকা সকলো লোকক বিশাল ভাৰতীয়ত্বৰ সম্ভেদ দিছিল। ভাষা আৰু সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰতো স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ আছিল সুদূৰপ্ৰসাৰী। 'বন্দে মাতৰম্', 'ইন্‌কিলাব জিন্দাবাদ' এই দুই ধ্বনি সকলো ভাষা-ভাষী লোকে সমস্বৰে উচ্চাৰণ কৰিছিল। বাংলা ভাষাৰ 'বন্দে মাতৰম' আৰু পাৰ্চী-উৰ্দু মিশ্ৰিত 'ইন্‌কিলাব জিন্দাবাদ' এই ধ্বনি ভাৰতৰ বিবিধ ভাষা-ভাষীৰ মানুহে নিজৰ মাতৃভাষাৰ দৰে গ্ৰহণ কৰা কথাটোৱে স্বাধীনতা আন্দোলনে ভাৰতীয় মানুহক একতাৰ ডোলেৰে বান্ধি পেলোৱাৰ কথাকে প্ৰতীয়মান কৰে। ইয়াৰ উপৰি স্বাধীনতা আন্দোলনে ভাৰতীয়ৰ মনত এক নৱ চেতনাৰ জন্ম দিলে। গৌৰৱোজ্জ্বল অতীতৰ গুণ-গৰিমা, দেশপ্ৰেম, পৰাধীন অৱস্থাৰ গ্লানি আৰু মূৰ তুলি জীয়াই থকাৰ বাসনা আদিবোৰে সাহিত্যত ঠাই লাভ কৰিলে। তদুপৰি অঞ্চল বিশেষে স্থানীয় বীৰ শ্বহীদৰ কাহিনী বিজড়িত গীত-কবিতা আদিবোৰে ভাৰতবাসীৰ মনত মনোবলৰ যোগান ধৰিছিল। এনেদৰেই ভাৰতৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ লোকে এই বিশাল দেশখনক নিজৰ বুলি ভাবিবলৈ আৰু দেশৰ বাবে জীৱন পণ কৰি মৃত্যুবৰণ কৰিবলৈ অদম্য প্ৰেৰণা লাভ কৰিছিল।

ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত ৰচনা কৰা বা স্বাধীনতা আন্দোলনৰ পটভূমিত ৰচিত সাহিত্যৰাজি তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰিলে স্বাধীনতা পিয়াসী ভাৰতীয়ৰ একক মনৰেই সন্ধান পোৱা যায়।

১.৭ ভাৰতীয় সাহিত্যত পাশ্চাত্যৰ ৰমন্যাসবাদৰ প্ৰভাৱ অধ্যয়ন ঃ

পাশ্চাত্যৰ সাহিত্যৰ প্ৰভাৱত ঊনবিংশ শতিকাত ভাৰতৰ আঞ্চলিক ভাষাসমূহত অগা-পিছাকৈ ৰোমাণ্টিক আন্দোলন গঢ় লৈ উঠিছিল। ভাৰতীয় ৰমন্যাসবাদ যদিও পাশ্চাত্যৰ প্ৰভাৱ আছিল, তথাপি ভাৰতত ই ভাৰতীয় প্ৰাণৰ সুতীব্ৰ অনুভূতি আৰু ৰূপ-ৰঙেৰে গঢ় লৈ উঠিছিল। ইংৰাজ ৰোমাণ্টিচিজমে কেথলিক ধৰ্মৰ গোড়ামিৰ শিকলি ছিঙি মুক্ত হ'ব খোজাৰ বিপৰীতে ভাৰতীয় ৰমন্যাসবাদে অতীন্দ্ৰিয়বাদক সহযাত্ৰী কৰি ল'লে। ৰবীন্দ্ৰ নাথ ঠাকুৰে প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ মাজত সৌন্দৰ্যৰ সন্ধানত মনোনিৱেশ কৰিলে। তেতিয়াৰে পৰাই হিন্দী সাহিত্যত ছায়াবাদ, মাৰাঠী সাহিত্যত ৰবি কিৰণ মণ্ডল, কানাড়াত গেলেয়াৰ গমপু আদি বিবিধ নামেৰে ৰোমাণ্টিক আন্দোলন বিয়পি পৰিল। ৰোমাণ্টিক আন্দোলনৰ ফলস্বৰূপে প্ৰাচ্য আৰু প্ৰাশ্চাত্যৰ সংমিশ্ৰণত ভাৰতীয় সাহিত্য চহকী হৈ উঠিল। শ্যেলী, কীটছ্, বায়ৰণৰ নতুন চিন্তাৰ লগত ভাৰতীয় বেদ-উপনিষদ, ইছলামিক ছুফীবাদৰ ৰহস্যবাদী চিন্তাৰ সংমিশ্ৰণ ঘটি ভাৰতীয় ৰোমাণ্টিক কবিতাৰ শক্তিশালী ভেটি নিৰ্মিত হ'ল। বিশ্ব সাহিত্যৰ বুকুত ভাৰতীয় চিন্তাই প্ৰতিধ্বনি তুলিলে। ভাৰতীয় দৰ্শনেই আধুনিক কবিতাক জটিলতালৈ লৈ গ'ল। সেয়ে ভাৰতীয় কাব্য-সাহিত্যৰ গভীৰতা অধ্যয়নৰ বাবে তুলনামূলক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱাটো বিশেষ প্ৰয়োজন।

১.৮ ভাৰতীয় সাহিত্যত প্ৰতিফলিত ভাৰতীয় মন আৰু ভাৰতীয় সমাজ-সংস্কৃতিৰ অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতৰ বিভিন্ন ভাষাৰ গল্প-উপন্যাসসমূহৰ মাজত ভাৰতীয় জনজীৱনৰ প্ৰতিফলন দেখা যায়। ভাৰতবৰ্ষৰ বেছিসংখ্যক লোকেই গাঁৱত বাস কৰে। সেয়ে ভাৰতীয় প্ৰাণৰ স্পন্দন গাঁওসমূহত আছে বুলি কোৱা হয়। গাঁওসমূহৰ মানুহৰ সুখ-দুখ, আশা-সপোন আৰু জীৱন সংগ্ৰামৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত মানৱীয় মূল্যবোধৰ ছবিখনে সমগ্ৰ দেশখনৰ জনসাধাৰণৰ জীৱন চিত্ৰ দাঙি ধৰে। এই ছবিসমূহ আঞ্চলিক

হৈও জাতীয়। সেয়েহে কোনো কোনো ভাৰতীয় ঔপন্যাসিকে ভাৰতীয় জনজীৱনৰ প্ৰকৃত ছবিখন তেওঁলোকৰ উপন্যাসত দাঙি ধৰাৰ বাবে গ্ৰাম্য পটভূমি বাছি লৈছে। এনে ঔপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত ফকীৰ মোহন সেনাপতি, প্ৰেমচান্দ, তাৰাশংকৰ বন্দোপাধ্যায়, চৈয়দ আব্দুল মালিক, বিভূতি ভূষণ বন্দোপাধ্যায় আদি অন্যতম। এই ঔপন্যাসিকসকলৰ উপন্যাসত গ্ৰাম্য জীৱনৰ মাটিৰ গোন্ধ স্পষ্ট ৰূপত পোৱা যায়। মন কৰিবলগীয়া কথা যে ভাৰতৰ অধিক সংখ্যক লোকেই কৃষিজীৱী আৰু এওঁলোক গাঁৱত বাস কৰে। ভিন্ন প্ৰান্তত বাস কৰিলেও কৃষিজীৱী গাঁৱলীয়া সমাজৰ মানুহখিনিৰ সুখ-দুখ, হাঁহি-কান্দোন, আশা-আকাংক্ষাবোৰ প্ৰায় একে হয়। সেয়ে উৰিয়া, হিন্দী বা বাংলা ভাষাত ৰচিত গ্ৰাম্য জীৱনভিত্তিক উপন্যাস এখন অসমীয়া ভাষীৰ মাজত অচিনাকি যেন নালাগে। বৰঞ্চ সেই মানুহখিনিৰ আৱেগ-অনুভূতিৰ সমভাগী কৰিহে তোলে। এনেদৰে তুলনামূলক সাহিত্যৰ অধ্যয়নে দুই বা ততোধিক জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মানুহক ওচৰ চপাই আনিব পাৰে।

সামৰণি ঃ

ওপৰৰ আলোচনাসমূহৰ পৰা দেখা যায় বিভিন্ন ভাষাত ৰচিত হ'লেও ভাৰতীয় সাহিত্য একেই মূলস্ৰোত (সংস্কৃত সাহিত্য, মহাকাব্য, পুৰাণ, জাতক, লোক-সাহিত্য, দাৰ্শনিক সাহিত্য, কলা, সংগীত)ৰ পৰা প্ৰেৰণা গ্ৰহণেৰে উদ্ভৱ হৈছে। এইসমূহ ৰচনাৰ আঁৰতো প্ৰায় একেধৰণৰ আৱেগাত্মক তথা বৌদ্ধিক অনুভূতিৰ ক্ৰিয়া প্ৰচ্ছন্ন হৈ থকা দেখা যায়। তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদি ভাৰতীয় সাহিত্যসমূহৰ মাজত ভাৰতীয়ত্বৰ সন্ধান কৰি ৰাষ্ট্ৰীয় সংহতি স্থাপন কৰিব পাৰে।

বিভিন্ন সময়ত ঘটা ৰাজনৈতিক, ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক আন্দোলন কিছুমানে ভাৰতীয় সাহিত্যৰ গতি নিৰ্ণয়ত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে। এই আন্দোলনসমূহৰ প্ৰভাৱ আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহৰ ওপৰত কিদৰে পৰিছে, আৰু তাৰ প্ৰতিফলিন কি ৰূপত ঘটিছে, সেয়াও তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদি লাভ কৰিব পাৰি।

পূৰ্বতেই উল্লেখ কৰি অহা হৈছে যে ভাৰতীয় সাহিত্যসমূহত বেদ, পুৰাণ, মহাকাব্য, ভাৰতীয় দৰ্শন, পাশ্চাত্য দৰ্শনৰ প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। তুলনামূলক অধ্যয়নৰ যোগেদি আঞ্চলিক সাহিত্যসমূহে উল্লিখিত উৎসসমূহৰ পৰা কি পৰিমাণে সংগ্ৰহণ, অনুকলন, অনুকৰণ কৰিছে তাৰো উমান পাব পাৰি।

তুলনামূলক সাহিত্য অধ্যয়নে সাহিত্য কৰ্মৰ মাজত কেৱল সাদৃশ্য বিচাৰেই নকৰে, সাহিত্যৰ বিষমতাখিনি বিচাৰি উলিয়াই তাৰ স্বকীয়তাও দাঙি ধৰে। তুলনামূলক সাহিত্যৰ যোগেদি পোৱা মিলসমূহে যিদৰে ভাৰতীয় সাহিত্যক অখণ্ড ৰূপত পৰিচয় কৰাই দিছে, ঠিক একেদৰে ইয়াৰ মাজত থকা বিষমতাখিনিয়েও বিশ্বৰ সন্মুখত ভাৰতীয় সাহিত্য বৈবিধ্য আৰু বৈচিত্ৰ্যময় বুলি পৰিচয় কৰাই দিছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

বৰা, দিলীপ। **তুলনাত্মক সাহিত্য**। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ। দ্বিতীয় প্ৰকাশ ঃ ২০০৮। মুদ্ৰিত।

বেজবৰা, নীৰাজনা মহন্ত। **তুলনামূলক সাহিত্য সিদ্ধান্ত আৰু প্ৰয়োগ**। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা। দ্বিতীয় প্ৰকাশ ঃ ২০০৪। মুদ্ৰিত।

পটভূমিকাত তুলনামূলক সাহিত্য। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা। প্ৰথম সংস্কৰণ। ২০০২। মুদ্ৰিত।

হাজৰিকা, কৰবী ডেকা। **তুলনামূলক সাহিত্য আৰু অনুবাদ কলা**। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা।
দ্বিতীয় প্ৰকাশ। ২০১৪। মুদ্ৰিত।

Choudhuri, Indra Nath. **Comparative Indian Literature Some Perspective**
New Delhi :Sterling Publishers Private Limited.1992.Print.

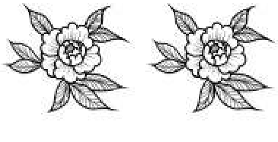

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

প্ৰাচীন কামৰূপৰ শাক্ত উপাসনা ঃ নৰকাসুৰৰ পৰা আহোম যুগলৈ এক ধাৰা

ড° গোবিন্দ বৈশ্য

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
বিজনী মহাবিদ্যালয়
পিন-৭৮৩৩৯০
৭০০২৭১১১৪৮
gobindabaishya111@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ পূৰ্ব প্ৰান্তত থকা বৰ্তমানৰ অসম ৰাজ্যখন প্ৰাচীন কালত প্ৰাগজ্যোতিষ আৰু কামৰূপ নামেৰে জগত বিখ্যাত আছিল। কামৰূপ দেশ শক্তি উপাসনা আৰু তন্ত্র-মন্ত্ৰ তথা জ্যোতিষ বিদ্যাৰ ক্ষেত্ৰস্থান আছিল। বিভিন্ন পুৰাণ তথা প্ৰাচীন গ্ৰন্থৰ পৰা জনা যায় যে এই প্ৰাগ্‌জ্যোতিষৰ অধিপতি হয় বিষ্ণুপুত্ৰ নৰকাসুৰে। নৰকাসুৰে এই স্থানতেই প্ৰথমে শক্তি তথা দেৱী ভগৱতীৰ উপাসনা আৰম্ভ কৰে। এই দেশত শৈৱ উপাসনাৰ পৰম্পৰা নৰকৰ আগৰে পৰা আছিল বুলি জনা যায়। নৰকাসুৰে কামৰূপ পীঠত আৰম্ভ কৰা শক্তি উপাসনা পৰৱৰ্তী সময়ত এই কামৰূপ দেশত ৰাজত্ব কৰা সকলো ৰাজবংশই মানি আহিছে। কামৰূপত শক্তি আৰু শৈৱ দুয়োৰে উপাসনা চলিছিল। শৈৱ আৰু শক্তি দুয়ো অভিন্ন আছিল। নৰকে আৰম্ভ কৰা শক্তি উপাসনাৰ ধাৰা বৰ্তমালৈকে চলি আহিছে। বিভিন্ন সামাজিক, ৰাজনৈতিক ঘাত-প্ৰতিঘাতৰ মাজেদি আগবাঢ়ি আহিছে শক্তি উপাসনাই তথা দেৱী পূজা পৰম্পৰাই। আমাৰ প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা প্ৰবন্ধটোত প্ৰাচীন কামৰূপৰ শক্তি উপাসনাৰ আৰম্ভণিৰ পৰা আহোম যুগলৈ দেৱী পূজাৰ পৰম্পৰাৰ বিষয়ে আভাষ দিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

মূল শব্দ ঃ কামৰূপ, কামাখ্যা, শক্তি উপাসনা

আৰম্ভণি ঃ

মানুহে আদিতে প্ৰকৃতিক পূজা কৰিছিল। প্ৰকৃতিৰ অংশীদাৰ স্বৰূপ কিছুমান শক্তিক প্ৰত্যক্ষ কৰি তেওঁলোকে প্ৰকৃতিক পূজা কৰিছিল। সূৰ্য্য, বায়ু, অগ্নি, বৰুণ, ইন্দ্ৰ, চন্দ্ৰ, পাহাৰ-পৰ্বত, নদ-নদী, সাগৰ-মহাসাগৰ আদিক বিশ্বাস অনুযায়ী তেওঁলোকে বিধে বিধে পূজা কৰিছিল। হাজাৰ হাজাৰ বছৰ অতিক্ৰম কৰাৰ পিছত আদিম ভাৰতবাসীৰ ভৌগোলিক স্থিতি প্ৰকৃতিক পৰিৱেশ, ধৰ্মীয় বিশ্বাস, সাংস্কৃতিক ৰীতি অনুযায়ী জনগোষ্ঠীসমূহৰ উপাস্য দেৱ-দেৱী নিৰ্দিষ্ট হৈ পৰে। অসমত এনে এক প্ৰক্ৰিয়াৰ ফলত সৃষ্টি হৈছিল শাক্ত পূজা বা শাক্ত ধৰ্মৰ। শাক্ত ধৰ্মৰ মূল উপাস্য হৈছে শক্তিৰ অধিষ্ঠাত্ৰী দেৱী ভগৱতী।

বিভিন্ন প্ৰাচীন গ্ৰন্থই প্ৰমাণ দিয়ে যে নৰকাসুৰেই প্ৰাগ্‌জ্যোতিষত প্ৰথম শক্তি উপাসনা বা দেৱী পূজাৰ আৰম্ভণি কৰিছিল। অতীতৰ পৰাই কামৰূপ শক্তি সাধনাৰ কাৰণে বিখ্যাত আৰু ফলদায়ক বুলি পুৰাণতন্ত্ৰ তথা জনসমাজত বিশ্বাস প্ৰচলিত হৈ

আহিছে। এই উপাসনা কামাখ্যা পীঠক কেন্দ্র কৰিয়েই অতীতৰ তান্ত্রিক যুগৰ পৰা আহোম যুগলৈকে নানা যাদু-মন্ত্ৰ, ইন্দ্ৰজাল আদিৰ চৰ্চাৰ প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰি আহিছে। ভাৰতবৰ্ষৰ চাৰিখন প্ৰাচীন শক্তিপীঠৰ ভিতৰত কামৰূপ পীঠক শ্ৰেষ্ঠ মহাপীঠ বুলি কোৱা হৈছে। বাকি তিনিখন পীঠ হৈছে—পূৰ্ণগিৰি, উড্ডিয়ান আৰু জালন্ধৰ। অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰাই কামৰূপ পীঠ শক্তি সাধনাৰ শ্ৰেষ্ঠ পীঠ হিচাপে স্বীকৃতি পাই আহিছে। কামাখ্যা তীৰ্থৰ মাহাত্ম্যই কামৰূপ পীঠক অতীতৰ পৰাই মহত্বপূৰ্ণ কৰি ৰাখিছে। এনে এখন পূণ্যস্থানত দীৰ্ঘকালীনভাৱে শাক্তধৰ্ম ব্যাপকভাৱে চৰ্চিত হৈ থকাটো স্বাভাৱিক।

প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ আৰু কামৰূপ দেশ ঃ

পবিত্ৰ ভাৰতভূমিৰ উত্তৰ-পূৰ ফালৰ বৃহৎ অঞ্চল অতি প্ৰাচীন কালৰ পৰা প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ আৰু কামৰূপ নামেৰে জনাজাত লাভ কৰিছিল। ভাৰতীয় মহাকাব্য ৰামায়ণ, মহাভাৰত আৰু মহাপুৰাণৰ গ্ৰন্থবোৰত প্ৰাগ্জ্যোতিষপুৰ নামেৰে উল্লেখ আছে। প্ৰাগ্জ্যোতিষপুৰ অনাৰ্যসকলৰ বসতি আছিল। ইয়াৰ ৰজা অনাৰ্য আছিল। মহাভাৰতত ইয়াক ম্লেচ্ছদেশ বোলা হৈছে, ইয়াৰ শাসনকৰ্তা আছিল ভগদত্ত ৰজা। ভগদত্ত ৰজাই কুৰুক্ষেত্ৰৰ যুদ্ধত কৌৰৱৰ পক্ষ লৈছিল। মহাভাৰতৰ আন এঠাইত এই দেশক অসুৰৰ ৰাজ্য বোলা হৈছিল আৰু ইয়াৰ ৰজা আছিল নৰকাসুৰ আৰু মূৰ (মহাভাৰতৰ বন পৰ্ব, উদ্যোগ পৰ্ব)। মহাভাৰতৰ সভা পৰ্ব আৰু বন পৰ্বত প্ৰাগ্জ্যোতিপুৰ উত্তৰ অঞ্চলৰ ৰাজ্য বুলি উল্লেখ আছে। সভা পৰ্বত দিয়া বৰ্ণনা মতে প্ৰাগ্জ্যোতিষৰ উত্তৰে থকা অন্তৰগিৰি, বৰ্হিগিৰি আৰু উপগিৰি হিমালয় আৰু টেৰাই অঞ্চলেই হ'ব বুলি বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাই তেখেতৰ 'A Cultural History of Assam' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে।

মহাকবি কালিদাসৰ 'ৰঘুবংশ'ত প্ৰাগ্জ্যোতিষপুৰ আৰু কামৰূপক একেখন ঠাইৰে দুটা বেলেগ বেলেগ নাম বুলি উল্লেখ কৰিছে—

"চকম্পে তীৰ্ণলোহিত্যে তস্মিন প্ৰাগ্জ্যোতিযেশ্বৰঃ

তমীশঃ কামৰূপাণামত্যাখণ্ডল বিক্ৰমম।।[1]

(অনু ঃ লৌহিত্যৰ লগত সংশ্লিষ্ট এই দেশ প্ৰাগ্জ্যোতিষ আৰু কামৰূপ এই উভয় নামেৰে বিখ্যাত আছিল)।

পণ্ডিতসকলে অনুমান কৰে যে 'পুৰণি প্ৰাগ্জ্যোতিষপুৰ ৰাজ্যৰ ভিতৰত কেৱল কামৰূপ ৰাজ্যই নহয় উত্তৰ বঙ্গ আৰু উত্তৰ বিহাৰৰ ভালেমানখিনি ঠাই অন্তৰ্ভুক্ত আছিল' (পুৰণি কামৰূপৰ ধৰ্মৰ ধাৰা, পৃ. ১৯)। কালিদাসৰ ৰঘুবংশই প্ৰাগ্জ্যোতিষক ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ সিপাৰে বুলি কৈছে। 'প্ৰাগজ্যোতিষৰ ৰাজধানীকো প্ৰাগ্জ্যোতিষেই বোলা হৈছিল (দেৱী, পৃ. ৩৭০)।

এই ৰাজ্যৰ অধিবাসীবোৰক ম্লেছ বুলি কোৱা হৈছে যদিও ৰামায়ণে এই ৰাজ্যৰ প্ৰতিষ্ঠাতা অমুতৰাজ বুলি কৈছে। অমুতৰাজ গয়া নৃপতিৰ পিতৃ বুলি মহাভাৰতত উল্লেখ আছে।

কালিকাপুৰাণৰ পৰা জনা যায় যে 'ভগৱান বিষ্ণুৰ বৰাহ অৱতাৰত বসুমতীৰ লগত মিলনৰ ফলত নৰকাসুৰৰ জন্ম হয় আৰু বিষ্ণুৱে নিজপুত্ৰ নৰকাসুৰক কামৰূপ দেশৰ প্ৰাগজ্যোতিষ নগৰলৈ আনিছিল।'[2] ইয়াৰ পৰা স্পষ্টভাৱে বুজা যায় কালিকাপুৰাণ ৰচনাৰ কিছুকাল আগৰে পৰা এই পূৰ্বাঞ্চলীয় দেশখন আৰু ইয়াৰ ৰাজধানী যথাক্ৰমে জনাজাত হৈছিল কামৰূপ আৰু প্ৰাগ্জ্যোতিষ নামেৰে। আকৌ এই কথাও অনুমান কৰিব পাৰি যে কুৰুক্ষেত্ৰ যুদ্ধৰ কিছু আগতেই (নৰকাসুৰৰ দিনত) হয়তো কামৰূপ নামটোৱে দেশখনক বুজাইছিল আৰু প্ৰাগজ্যোতিষ বুজাইছিল ইয়াৰ ৰাজধানীক।[3] বিষ্ণু পুৰাণেও এই দেশক প্ৰাগ্জ্যোতিষ বুলিছে।[4]

অতি প্ৰাচীন কালত উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলীয় ভূখণ্ড বিশেষভাৱে জনাজাত আছিল প্ৰাগ্জ্যোতিষ নামেৰে, কালৰ বিৱৰ্তনত প্ৰাগ্জ্যোতিষতকৈ সম্ভৱতঃ কামৰূপ নামটোৰ প্ৰচলন বেছি হৈ উঠে আৰু পৰৱৰ্তী তান্ত্ৰিক যুগত প্ৰাগজ্যোতিষ নাম লোপ হৈ কামৰূপ নামটো ব্যাপকভাৱে প্ৰচলিত হয়। কবি ৰাজশেখৰেও প্ৰাগজ্যোতিষ নামৰ উল্লেখ কৰাৰ পৰা এই কথা ক'ব পৰা যায় যে, ১০ম শতিকামানলৈকে প্ৰাগ্জ্যোতিষ আৰু কামৰূপ এই উভয় নামৰেই প্ৰচলন আছিল, তাৰ পাছৰ পৰা এই দেশখনৰ নাম কামৰূপ নামেৰেহে জনাজাত হৈছিল।

প্ৰাচীন প্ৰাগজ্যোতিষত জ্যোতিষ চৰ্চা আৰু তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ বিদ্যাৰ পীঠস্থান আছিল। কালিকা পুৰাণত উল্লেখ আছে যে, ব্ৰহ্মাই ইয়াতে থাকি আকাশৰ জ্যোতিষ্ক তথা নক্ষত্ৰসমূহ সৃষ্টি কৰিছিল। সেই কাৰণে ইন্দ্ৰপুৰীসম এই নগৰৰ নাম প্ৰাগ্জ্যোতিষপুৰ (দেৱী, পৃ. ৩৭০)। প্ৰাগজোতিষ নামটোৰ প্ৰসঙ্গত ড° বিশ্বনাৰায়ণ শাস্ত্ৰীয়ে লিখিছে— "কালিকা পুৰাণে প্ৰাগ্জ্যোতিষ নামটোৰ উৎপত্তি প্ৰসঙ্গত শব্দটোৰ দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে— প্ৰাগ্ আৰু জ্যোতিষ (A note on the relevance of the Tantras for the Socio-cultural history of Assam-Proceedings and transaction of seminar 1981, kamrup Anusandhan Samiti,

Guwahati) কালিকা পুৰাণে প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ নামৰ সম্পৰ্কে এইদৰে উল্লেখ কৰিছে—

অস্য মধ্যেস্থিত ব্ৰহ্মা প্ৰাণ নক্ষত্ৰম সসৰ্জ ঃ

ততঃ প্ৰাগজ্যোতিষা খ্যেয়ম পুৰী শত্ৰুপুৰী সমা।

(কালিকা পুৰাণ, ৩৮/১২৩)

(অনুঃ পুৰাকালত ব্ৰহ্মাই ইয়াতে নক্ষত্ৰ পুঞ্জ সৃষ্টি কৰিছিল কাৰণে এই স্থানৰ নাম প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ হ'ল)।

খৃষ্টীয় 4ৰ্থ শতিকাৰ সমুদ্ৰগুপ্তৰ এলাহবাদ লিপিতেই (Allahabad inscription) দেশ হিচাপে কামৰূপৰ উল্লেখ পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰিও হিউৱেন চাঙৰ টোকা, বানভট্টৰ 'হৰ্ষচৰিত', বিদ্যাৰণ্যৰ 'শঙ্কৰ দিগ্বিজয়' আদি গ্ৰন্থবোৰত উক্ত ভূখণ্ডক কামৰূপ বুলিছে।

প্ৰাচীন কামৰূপ দেশৰ সীমা কালিকা পুৰাণে নিৰ্ধাৰণ কৰিছে—

'বহুৰোকা নাম নদী কৰতোৱা প্ৰদক্ষিণে।

উত্তৰ স্ত্ৰাৰণী চাস্তে তৎপূৰ্ব্বং কামৰূপকম।।

(কালিকা পুৰাণ- ৭৮/৭)।

খ্ৰীষ্টীয় ১২শ শতিকাত ৰচিত যোগিনীতন্ত্ৰ গ্ৰন্থয়ো কালিকা পুৰাণৰ এই সীমাকেই মানি লৈছে—

"নেপালস্য কাঞ্চনাদ্ৰিম ব্ৰহ্মপুত্ৰস্য সঙ্গমম।

কৰতোয়াং সদাশ্ৰিত্য যাবদ্দিকৰ বাসিনী।।

উত্তৰস্যাং কঞ্জগিৰিঃ কৰতোয়াতু পশ্চিমে।

তীৰ্থশ্ৰেষ্ঠা দিক্ষুনদী পূৰ্বাস্যাং গিৰিকন্যকে।।

দক্ষিণে ব্ৰহ্মপুত্ৰস্য লাক্ষ্যায়াঃ সঙ্গমাবধি।

কামৰূপ ইতি খ্যাতঃ সৰ্ব্বশাস্ত্ৰেষু নিশ্চিতঃ।।

(যোগিনীতন্ত্ৰ, ১/১১/১৭-১৮)

(অনু ঃ নেপালৰ কাঞ্চনগিৰিৰ পৰা ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ সঙ্গমলৈ, কৰতোয়াৰ পৰা দিক্কৰ বাসিনীলৈকে থকা উত্তৰ সীমাত কঞ্জগিৰি, পশ্চিমত কৰতোয়া, পূৰ্বৰ গিৰিকন্যা তীৰ্থশ্ৰেষ্ঠ দিক্ষুনদী। দক্ষিণত লাক্ষা আৰু ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ সঙ্গম, এয়ে কামৰূপৰ সীমা)।

প্ৰাচীন কামৰূপ তন্ত্ৰ বিদ্যাৰ মূল কেন্দ্ৰ আছিল —

"কামৰূপং মহাপীঠং গুহ্যাদগুহ্যতমং পৰং

সদা চ সংস্থিত স্তত্ৰ পাৰ্ব্বত্যাসহ শঙ্কৰ"

(কালিকাপুৰাণ, ৬২/১)

(অনু ঃ কামৰূপ মহাপীঠ। এই পীঠ গুহ্যৰো গুহ্য পৰম গোপনীয়, ইয়াত মহাদেৱ সদায় পাৰ্বতীৰ লগত বাস কৰে)।

কামৰূপ নামৰ উৎপত্তিৰ লগত পৌৰানিক কিম্বদন্তী আছে যে কামৰূপ নামটো প্ৰেমৰ দেৱতা কামদেৱৰ পৰা আহিছে। সতীৰ দেহত্যাগৰ পিছত শিৱ ধ্যানমগ্ন হোৱাত শিৱৰ ধ্যান ভংগ কৰিবলৈ দেৱতাসকলে কামদেৱ আৰু ৰতি দেৱীক পঠায়। কামদেৱে শিৱক পঞ্চশৰ মাৰি শিৱৰ ধ্যান ভংগ কৰে। ধ্যানভঙ্গ হোৱাত শিৱৰ অত্যন্ত ক্ৰোধ উৎপন্ন হয় আৰু সেই ক্ৰোধে তৃতীয় নয়নৰ বহ্নিৰূপে নিৰ্গত হৈ কামদেৱক ভস্মীভূত কৰে। পিছত কামদেৱৰ পত্নী ৰতি দেৱীৰ প্ৰাৰ্থনাত কামদেৱে নিজৰ শৰীৰ ঘূৰাই পায়। তাৰ পৰাই কামৰূপ নামৰ উৎপত্তি হোৱা বুলি কোৱা হয়।

অসমত শক্তি উপাসনা আৰু দেৱী পূজাৰ পৰম্পৰা ঃ

অতীজৰ পৰাই কামৰূপ শক্তি সাধনাৰ কাৰণে বিখ্যাত আৰু ফলদায়ক বুলি বিভিন্ন পূৰাণতন্ত্ৰ তথা জনসমাজত বিশ্বাস প্ৰচলিত হৈ আহিছে। এই উপাসনা কামাখ্যাক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই অতীতৰ তান্ত্ৰিক যুগৰ পৰাই আহোম যুগলৈকে নানান যাদু-মন্ত্ৰ, ইন্দ্ৰজাল আদিৰ চৰ্চাৰে প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰি আহিছে।

পুৰাণ শাস্ত্ৰৰ পৰা জনা যায় যে প্ৰাগজ্যোতিষত অসুৰ ৰজা নৰকাসুৰেই শক্তি উপাসনাৰ প্ৰথম সেৱক আৰু এই দেশৰ শাক্ত সম্প্ৰদায়ৰ প্ৰৱৰ্তক। নৰকাসুৰৰ জন্ম হৈছিল বৰাহৰূপী বিষ্ণুৰ ঔৰসত। সেইবাবে বিষ্ণুৱে নৰকক প্ৰাগজ্যোতিষৰ ৰজা পাতে আৰু এই বিশাল ৰাজ্য শাসন কৰিবলৈ দিয়ে। লগতে বিষ্ণুয়ে নৰকক এই বুলিও আদেশ দিয়ে— “কামাখ্যাং ত্বাং বিনা পুত্ৰ নান্যদেৱং যাজিষ্যামি”,[5] (অনু ঃ কামাখ্যাৰ বাহিৰে তুমি আন দেৱতাক পূজা নকৰিবা)। আকৌ বিষ্ণুয়ে নৰকাসুৰক এইবুলি সাৱধান বাণী শুনায়— ‘যদি এই কথাৰ ব্যতিক্ৰম ঘটে তেনেহ’লে নৰকৰ প্ৰাণ নাশ হ’ব।’[6] ফলত নৰকাসুৰ শক্তিৰ একান্ত উপাসক হৈ পৰে আৰু তেওঁৰ যোগেদিয়েই অসমত শাক্ত ধৰ্মৰ উত্থান ঘটে।

ৰজা হৈ নৰকে কামৰূপৰ আদিম অধিবাসী কিৰাতসকলক দিক্কৰবাসিনী স্থান পৰ্যন্ত খেদি পঠিয়াই। পণ্ডিতসকলে ঠিৰাং কৰিছে যে ‘নৰকাসুৰৰ ৰাজত্বৰ শেষ সীমা খ্ৰীষ্টপূৰ্ব দুহেজাৰ বছৰ।’[7] নৰকাসুৰৰ আগতে প্ৰাগজ্যোতিষপুৰত আৰ্যবসতি স্থাপন হৈছিল। আনকি নৰকেও পশ্চিমৰ পৰা দ্বিজ আনিছিল। প্ৰাচীন কামৰূপ পীঠ তান্ত্ৰিক সংস্কৃতিৰ কেন্দ্ৰ হিচাপে ভাৰতৰ ভিতৰত অদ্বিতীয় আছিল। কালিকা পুৰাণ, যোগিনীতন্ত্ৰ, কুব্জিকাতন্ত্ৰ, দেৱী ভাগৱত আদি গ্ৰন্থসমূহে কামৰূপ শক্তি সাধনা আৰু সিদ্ধি লাভৰ প্ৰশস্ত ক্ষেত্ৰ বুলি নিৰ্দেশ কৰিছে।

কালিকা পুৰাণ আৰু যোগিনী তন্ত্ৰই স্পষ্টভাৱে কৈছে যে— “দেৱী ক্ষেত্ৰং কামৰূপং বিদ্যতেহন্যন তৎসমম্ অন্যত্ৰ বিৰলা দেৱী কামৰূপে গৃহে গৃহে।।”[4]

(অনু ঃ কামৰূপৰ নিচিনা আৰু কোনো ঠাই নাই, যি ঠাই দেৱীৰ আৱাসস্থানৰ কাৰণে উপযুক্ত। অন্য দেশত যি দুৰ্লভা সেই দেৱী কামৰূপৰ ঘৰে ঘৰে বিৰাজমান)

পৰৱৰ্তী সময়ত এই দেশত ৰাজত্ব কৰা সকলো ৰাজবংশই দেৱী উপাসনা অব্যাহত ৰাখিছিল।

নৰকাসুৰৰ পূৰ্ব্বত শাক্ত উপাসনা ঃ

কালিকা পুৰাণত বৰ্ণনা মতে— ‘স চ দেশঃ স্বৰাজ্যাৰ্থে পূৰ্ব্বাং গুপ্তশ্চ শম্ভুনা’ (কালিকা পুৰাণ- ৩৮/৯৬)। নৰকাসুৰে কামৰূপত ৰাজত্ব কৰাৰ আগৰে পৰা শিৱে এই দেশত প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰি আছিল। উক্ত পুৰাণখনতে আৰু এটা কথাৰ উল্লেখ পোৱা যায় যে, বিষ্ণুৱে শিৱৰ অনুমতি লৈ পূৱ দিশত কিৰাত বিলাকৰ কাৰণে স্থান নিৰ্ণয় কৰি দিয়ে—

“এৱমুক্তবা স্বয়ং বিষ্ণুঃ শম্ভোৰনুমতেঃ তদা।
সৰ্ব্বান কিৰাতান পূৰ্ব্বস্যাং সাগৰান্তে ন্যাবেশয়েৎ।।
(কালিকা পুৰাণ- ৩৯/১২১)।

(অনু ঃ স্বয়ং বিষ্ণুয়ে শিৱৰ অনুমতি লৈ সকলো কিৰাতক পূৱ দিশৰ সাগৰলৈ স্থান নিৰ্ণয় কৰি দিয়ে)।

গতিকে উক্ত পুৰাণৰ পৰা ক’ব পাৰি যে প্ৰাগ্‌জ্যোতিষত নৰকাসুৰৰ পূৰ্বে শিৱ পূজাৰ প্ৰচলন আছিল আৰু এই শিৱ উপাসনা কৰিছিল কিৰাতসকলে।

নৰকাসুৰৰ পৰৱৰ্তী সময়ত শাক্ত উপাসনা ঃ

নৰকাসুৰক ভগৱান বিষ্ণুয়ে কৃষ্ণ অৱতাৰত বধ কৰে। নৰকেই প্ৰথম প্ৰাগজ্যোতিষত শক্তি উপাসনাৰ আৰম্ভণি কৰে। নৰকৰ পিছত ভগদত্ত প্ৰাগ্‌জ্যোতিষৰ ৰজা হয়। ‘মহাভাৰতে ভগদত্তৰ ৰাজ্যৰ বিশালতা, সৈন্য-বল আৰু হস্তী যুদ্ধত পাৰদৰ্শিতাকে আদি কৰি অসীম বীৰত্বৰ বৰ্ণনা দিছে।’[9] ভগদত্তৰ ৰাজত্বকালৰ ধৰ্ম সম্পৰ্কে স্পষ্টভাৱে কোনো কথা মহাভাৰত, কালিকা পুৰাণ, ভাগৱত পুৰাণ আদি গ্ৰন্থত কোনো তথ্য পোৱা নাযায়।

বনমালদেৱৰ তাম্ৰশাসনত পোৱা যায় যে প্ৰাগজ্যোতিষৰ সিংহাসনত উঠিয়েই ভগদত্তই পিতৃ ৰাজ্য প্ৰসাৰণৰ উদ্দেশ্যত মহাদেৱক তপস্যা কৰিছিল।

“সম্প্ৰাপ্তে ভগদত্তঃ শ্ৰী মৎ প্ৰাগজ্যোতিষাধিনায়ত্বম্।
বিনয়ভৰেণ তদেত্য প্ৰাৰাধ্যয়দীশ্বৰং তপস্যা।।
(ইয়াত ঈশ্বৰ শব্দই মহাদেৱক বুজাইছে)

ইয়াৰ দ্বাৰা ভগদত্ত শিৱৰ উপাসক আছিল বুলি ভাবিবলৈ অৱকাশ দিয়ে। হৰগৌৰী সংবাদত পোৱা যায় যে ভগদত্তৰ মন্ত্ৰীয়ে ভগদত্তৰ আদেশ অনুসৰি এক হাজাৰ ৰূপ দি চণ্ডীপাঠ কৰাইছিল। ভগদত্তৰ ধৰ্মৰ ওপৰত পিতৃ নৰকাসুৰৰ ধৰ্মমতৰ প্ৰভাৱ পৰিছিল। গতিকে কামাখ্যাৰ দেশ প্ৰাগজ্যোতিষৰ

অধিপতি ভগদত্তক শিৱৰ উপাসক বুলি ভবাতকৈ শক্তিৰ উপাসক বুলি ভবাটো অধিক যুক্তি সঙ্গত যেন লাগে।

তাম্রশাসনৰ যুগত দেৱী উপাসনা ঃ

বজ্রদত্তৰ পৰা পুষ্যবৰ্মাৰ আৰম্ভলৈকে (প্ৰায় ৩৮০ খ্ৰীঃ) এই সময়ছোৱাত প্ৰাগজ্যোতিষত দেৱী উপাসনাৰ কোনো প্ৰমাণিক তথ্য পোৱা নাযায়। ভাস্কৰ বৰ্মাৰ নিধনপুৰ তাম্ৰশাসন শিৱৰ প্ৰতি বিনম্ৰ প্ৰণাম আৰু শিৱ প্ৰশস্তিৰে আৰম্ভ কৰা হৈছে—

"ওম প্ৰণম্য দেৱং শশিশেখৰং প্ৰিয়ম
পিনাকিনং ভস্মকণৈৰ্বিভূষিতম্।
ভোগীশ্বৰকৃতপৰিকৰমীক্ষণজিত কামৰূপমবিমুক্তম্।
পৰমেশ্বৰস্য ৰূপং নিজভূতিভূষিতং জয়তি।"[10]

এই তামৰ ফলিখনেই প্ৰমাণ দিয়ে যে ভাস্কৰবৰ্মা পৰম শিৱভক্ত আছিল। এই সময়ছোৱাত শাক্ত ধৰ্মৰ পৰম্পৰা কিছু দুৰ্বল হৈ পৰিছিল।

শালস্তম্ভ আৰু প্ৰালম্ভ ৰাজবংশৰ শাক্ত উপাসনা ঃ

কুমাৰ ভাস্কৰবৰ্মাৰ পিছত ৬৫০ খ্ৰীঃ পৰা প্ৰায় ১০০০ খ্ৰীঃলৈকে কামৰূপ শাসন কৰে শালস্তম্ভ আৰু প্ৰালম্ভই। ড° সুনীতি কুমাৰ চেটাৰ্জ্জীয়ে স্পষ্টভাৱে কৈছে যে— 'প্ৰালম্ভ ৰাজবংশৰ ৰজাসকল শৈৱ উপাসক আছিল। (কিৰাত জনকৃতি, পৃ. ৫৩)। প্ৰালম্ভ বংশৰ ৰজা বনমাল বৰ্মনৰ (৮৩৫-৮৬০ খ্ৰীঃ) তাম্ৰশাসনত থকা "কামেশ্বৰ-মহাগৌৰীৰ পৰা বুজা যায় যে তেওঁৰ (বনমালবৰ্মনৰ) আগৰ বংশৰ নহ'লেও অন্ততঃ তেওঁৰ বংশৰ অন্য ৰজাসকল শিৱ-শক্তিৰ উপাসক আছিল। সেই সময়ছোৱাত কামৰূপত শৈৱ-শাক্ত দুয়ো পৰম্পৰা সমান্তৰালভাৱে চলি আহিছিল।

কামৰূপত শক্তিবাদৰ উত্থান ঃ

প্ৰালম্ভ বংশৰ পিছত কামৰূপ শাসন কৰে পালবংশীয় ৰজাসকলে। পাল বংশই ১০০০ খ্ৰীঃৰ পৰা ১১২৫ খ্ৰীঃ লৈকে ৰাজত্ব কৰে। ড° সুনীতি কুমাৰ চেটাৰ্জ্জীয়ে স্পষ্টভাৱে কৈছে— "The Kamrupa Palas were Staunch Saivas" (কিৰাত জনকৃতি, পৃ. ৫৪)। এই সময়তে খ্ৰীঃ ১১ শতিকাৰ ভিতৰত কামৰূপত কালিকা পুৰাণ ৰচনা কৰে। কালিকা পুৰানত শক্তিৰ বিভিন্ন ৰূপ, সেইবোৰৰ পূজা পদ্ধতি, শক্তি সাধনাৰ বিভিন্ন পন্থা, সাধকৰ বিভিন্ন অৱস্থা, শক্তি সাধনাৰ অনেক কথা ইয়াত বৰ্ণনা কৰা হৈছে। শাক্ত ধৰ্মৰ প্ৰচাৰ তথা পৃষ্ঠপোষকতা অবিহনে এয়া সম্ভৱ নহয় যেন অনুমান কৰিব পাৰি, আনহাতে এই পৃষ্ঠপোষকতা পাল বংশৰ পৰাও অহাটো একো অসম্ভৱ নহয়।

কালিকা পুৰাণত সুশৃংখলিত নিয়মলৈ মন কৰিলে দেৱী পূজাৰ পৰম্পৰা যে আগৰ পৰা সুন্দৰভাৱে চলিছিল তাক অনুমান কৰিব পাৰি। সেই সময়ত আৱিস্কৃত হোৱা দুৰ্গা মূৰ্তিবোৰৰ পৰাও গম পোৱা যায় যে দেৱীৰ সম্পৰ্কে মানুহৰ ধাৰণা স্পষ্ট আছিল।

বিশাল কামৰূপৰ বিভাজন ঃ

নৰকৰ পিছত ভগদত্ত-ভাস্কৰবৰ্মাৰ দিনত কামৰূপে যি বিশাল ৰূপ লাভ কৰিছিল লাহে লাহে বিৱৰ্তনৰ মাজেদি দুৰ্বল ৰূপ লাভ কৰি খ্ৰীঃ ত্ৰয়োদশ শতিকামানত প্ৰাচীন বিশাল কামৰূপ খণ্ডিত হয়। কামৰূপৰ পৰা খণ্ডিত হৈ কৰতোৱা নদী পৰ্যন্ত কমতা ৰাজ্য গঠন হয়। খেন বংশৰ ৰজা নীলধ্বজ প্ৰথম ৰজা হয় আৰু নীলাম্বৰ শেষ ৰজা আছিল। খেন বংশই কমতা ৰাজ্য শাসন কৰে ১২১০ খ্ৰীঃৰ পৰা ১৪৯৮ খ্ৰীঃ লৈকে। কমতা ৰাজ্যৰ সমসাময়িকভাৱে কামৰূপৰ বুৰাই নদীৰ পৰা শদিয়া পৰ্যন্ত ১২৪৪ খ্ৰীঃৰ পৰা ১৫২৩ খ্ৰীঃ লৈকে চুতীয়াসকলে ৰাজত্ব কৰে। কামৰূপত ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ দক্ষিণত কছাৰীসকলে উত্তৰ সোঁৱণশিৰিৰ পৰা দক্ষিণে কপিলীলৈকে বাৰভূঞাসকলে ৰাজত্ব কৰে। ১২২৮ খ্ৰীঃত পাটকাই পৰ্বত পাৰ হৈ আহোম ৰজা স্বৰ্গদেউ চুকাফা অসমলৈ আহে আৰু ১৮২৬ খ্ৰীঃ লৈকে সুদীৰ্ঘ ছশ বছৰ এই দেশ শাসন কৰে।

খেন বংশী ৰজাৰ ৰাজত্বৰ সময়ৰ শাক্ত উপাসনা ঃ

খেন বংশী ৰজাসকলৰ ৰাজত্বকাল আছিল ১২০০ খ্ৰীঃৰ পৰা ১৪৯৮ খ্ৰীঃলৈকে। খেন ৰজাসকলৰ ধৰ্মমত সম্পৰ্কে জনা নাযায় যদিও এডৱাৰ্ড গেইটৰ অসম বুৰঞ্জীৰ তৃতীয় অধ্যায়ৰ উল্লেখ মতে কমতেশ্বৰ ৰজাৰ মন্ত্ৰী দীননাথ, চন্দ্ৰভাল আৰু চন্দ্ৰশেখৰে ৰাজভৱনত হৰগৌৰী সম্বাদ পাঠ কৰিছিল। খেন বংশৰ প্ৰথম ৰজা নীলধ্বজে ব্ৰাহ্মণক মন্ত্ৰীপদত নিয়োগ কৰিছিল আৰু হিন্দু ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰে। নীলধ্বজ ব্ৰাহ্মণ পণ্ডিতক মন্ত্ৰী পতাৰ পৰা এই ৰাজবংশ যে শাক্ত ধৰ্মাৱলম্বী আছিল তাক অনুমান কৰিব পাৰি।

চুতীয়াসকলৰ দেৱী উপাসনা ঃ

চুতীয়াসকল ঘোৰ শাক্ত আছিল। তেওঁলোকে কেঁচাইখাঁতী দেৱীক পূজা উপাসনা কৰিছিল। কেঁচাইখাঁতী কালীৰে এক ৰূপ আছিল। শদিয়াৰ তাম্ৰপাতৰ মন্দিৰ নিৰ্মাণ

কৰি মন্দিৰত দেৱীক প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল বাবে কেঁচাইখাঁতী দেৱী পৰৱৰ্তী কালত তাম্ৰেশ্বৰী নামেৰে জনাজাত হৈছিল। এই মন্দিৰত নৰবলি আৰু পশুবলি দিয়া হৈছিল। এই মন্দিৰত পূজা উপাসনাৰ বাবে ব্ৰাহ্মণ পুৰোহিত নাছিল। চুতীয়া জনগোষ্ঠীৰ দেউৰীয়ে পূজা কৰিছিল।

কছাৰীসকলৰ শাক্ত উপাসনা ঃ

কছাৰীসকল শাক্ত আছিল। তেওঁলোকে শক্তিৰ উপাসনা কৰিছিল। কছাৰী বুৰঞ্জী মতে আহোম ৰজা প্ৰতাপ সিংহৰ দিনত (১৬১১-১৬৪৯ খ্ৰীঃ) ভীমবল নামৰ কছাৰী ৰাজকুমাৰ এজনে আহোম ৰজাৰ বিৰুদ্ধে যুদ্ধ কৰিবলৈ প্ৰস্তুত হয় আৰু কেঁচাইখাঁতী দেৱীৰ পূজা কৰি যুদ্ধত জয়লাভ কৰিছিল। সকলো কছাৰী ৰজা কেঁচাইখাঁতীৰ ভক্ত আছিল নে নাই সেই কথা স্পষ্টভাৱে নক'লেও অন্ততঃ কছাৰী ৰাজবংশৰ লোকসকল দেৱীৰ একান্ত ভক্ত আছিল। সূৰ্য্যকুমাৰ ভূঞাৰ মতে— 'We have definite evidence to prove that the Kecaikhati Gosani of Sadiya was the futelary deity of the royal family of Kachari (কছাৰী বুৰঞ্জীৰ ভূমিকা, পৃ. XVIII)। কেঁচাইখাঁতী দেৱীলৈ কছাৰী ৰাজবংশৰ ভক্তিপূৰ্ণ আনুগত্যলৈ চাই শদিয়া অঞ্চল কোনো সময়ত কছাৰীয়ে শাসন কৰিছিল যেন লাগে।

ভূঞাসকলৰ শাক্ত উপাসনা ঃ

ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ উত্তৰ পাৰে যিসকল ভূঞাই ৰাজত্ব কৰিছিল তেওঁলোকে দেৱী উপাসক আছিল। বুৰঞ্জী আৰু চৰিত পুথিত এই সম্বন্ধে তথ্য পোৱা যায়।

জয়ন্তীয়াসকলৰ শাক্ত উপাসনা ঃ

জয়ন্তীয়া বুৰঞ্জীৰ পৰা জনা যায় যে এই বংশৰ ৰজাবিলাক শাক্ত উপাসক আছিল। জয়ন্তীৰ ৰজা জয়ন্তী ৰায়ে গৌৰীৰ উপাসনা কৰি কন্যা জয়ন্তী দেৱীক লাভ কৰিছিল। জয়ন্তীয়া বুৰঞ্জীত দিয়া জয়ন্তীয়া ৰজাসকলৰ বংশ তালিকামতে এই জয়ন্তী দেৱী জয়ন্তীয়া ৰজা যশমাণিকৰ সপ্তম পূৰ্ব পুৰুষ। যশমাণিক ১৬১১ খ্ৰীঃৰ পৰা ১৬৪৯ খ্ৰীঃ লৈকে ৰাজত্ব কৰা আহোম ৰজা প্ৰতাপ সিংহৰ সমসাময়িক ৰজা আছিল বুলি জয়ন্তীয়া বুৰঞ্জীৰ ১ ম অধ্যায়ত উল্লেখ আছে। ১৫শ শতিকাৰ পৰা জয়ন্তীয়া ৰাজ্যত দেৱী উপাসনা আৰু দুৰ্গা মূৰ্ত্তিৰ প্ৰচলন হৈছিল।

আহোমৰ ৰাজত্বৰ শক্তি উপাসনা আৰু দেৱী পূজাৰ পৰম্পৰা ঃ

প্ৰতাপ সিংহৰ পৰা ৰুদ্ৰ সিংহলৈকে সকলো আহোম ৰজা হিন্দু প্ৰবৃত্তিসম্পন্ন আছিল। তেওঁলোকৰ সকলোৰেই শক্তি বা শৈৱ ধৰ্মৰ প্ৰতি অনুৰক্ত আছিল। আহোম ৰজা জয়ধ্বজ সিংহই নিৰঞ্জনদেৱক আউনিহাটী বৈষ্ণৱ সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ পদত বহুৱাই আৰু তেওঁৰ শিষ্যত্ব গ্ৰহণ কৰে। আহোমৰ অন্যতম প্ৰসিদ্ধ ৰজা গদাধৰ সিংহ শাক্ত ধৰ্মৰ বিশেষ অনুৰাগী আৰু পৃষ্ঠপোষক আছিল। স্বৰ্গদেউ ৰুদ্ৰসিংহই শাক্তধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা নাছিল যদিও পুতেকহঁতক শাক্তধৰ্ম গ্ৰহণ কৰিবলৈ কৈ গৈছিল। শিৱ সিংহৰ দিনত শাক্ত ধৰ্মৰ উত্থান অসম বুৰঞ্জীৰ এক উল্লেখযোগ্য ঘটনা। শিৱ সিংহই পিতৃ ৰুদ্ৰসিংহৰ আদেশমতে কৃষ্ণৰাম ভট্টাচাৰ্যৰ ওচৰত শাক্ত ধৰ্মৰ শৰণ লয়। শিৱসিংহৰ পৰৱৰ্তী আহোম ৰজা ৰাজেশ্বৰ সিংহ, লক্ষ্মীনাথ সিংহ গৌৰীনাথ সিংহও শাক্ত পন্থী আছিল। শংকৰদেৱৰ সমসাময়িক সমাজতো শাক্ত ধৰ্মৰ অশেষ প্ৰভাৱ আছিল। বিভিন্ন সামাজিক-ৰাজনৈতিক কাৰণত আহোম আৰু কোচ ৰাজ্যৰ মাজত সম্বন্ধ স্থাপন হোৱাৰ পিছত কোচ ৰাজ্যৰ পৰা আহোম ৰাজ্যলৈ মাটিৰ মূৰ্ত্তি নিৰ্মাণ কৰা মানুহক লৈ অহা হৈছিল আৰু আহোম ৰাজ্যত জাক-জমকতাৰে দুৰ্গা পূজা কৰা হৈছিল।

মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ, ৰাজেশ্বৰ সিংহৰ পিছৰ পৰা স্বৰ্গদেউসকলৰ দুৰ্বলতা, মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ আন্দোলনৰ ক্ৰমবিকাশ, বিভিন্ন ৰাজনৈতিক, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক কাৰণত শাক্তধৰ্মৰ যি উত্তাল তৰঙ্গময় স্ৰোত আছিল সেয়া লাহে লাহে দুৰ্বল হৈ আহে। আহোম ৰাজত্বৰ শেষৰফালে বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ উত্থানত শাক্ত ধৰ্মই কিছু স্তিমিত হৈ পৰিছিল।

কোচ ৰজাৰ সময়ত শাক্ত উপাসনা ঃ

কামৰূপৰ পশ্চিমাংশত অৱস্থিত কোচ ৰাজ্যৰ ৰজাসকল প্ৰথমৰ পৰাই শিৱ আৰু শক্তিৰ উপাসক আছিল। কোচ ৰাজ্যৰ প্ৰতিষ্ঠাতা বিশ্বসিংহ শিৱ আৰু দুৰ্গাৰ উপাসক আছিল। 'বিশ্বসিংহই নিলাচল পাহাৰৰ কামাখ্যা মন্দিৰ নিৰ্মাণ কৰায় আৰু ইয়াত পূজা-সেৱাৰ যথোচিত ব্যৱস্থা কৰি দিয়ে।'[11] বিশ্বসিংহৰ পুত্ৰ নৰনাৰায়ণ নিজে শাক্তধৰ্মী আৰু শাক্তধৰ্মৰ এজন শ্ৰেষ্ঠ পৃষ্ঠপোষক আছিল। গৌড়ৰ নৱাবৰ সেনাপতি কালাপাহাৰে ধ্বংস কৰি যোৱা কামাখ্যা মন্দিৰ নৰনাৰায়ণ আৰু ভাতৃ চিলাৰায়ে পুনৰ নিৰ্মাণ কৰায়। মন্দিৰৰ

প্ৰাণ প্ৰতিষ্ঠা উৎসৱত দুয়ো ভাতৃয়ে উপস্থিত থাকি এক লক্ষ বলি দি মন্দিৰৰ প্ৰাণ প্ৰতিষ্ঠা উৎসৱ পালন কৰে বুলি 'দৰং ৰাজবংশাৱলী'ত উল্লেখ আছে। মন্দিৰৰ পূজা-সেৱাৰ বাবে ১৪০ জন পাইকক তাম্ৰফলি দি বিভিন্ন কৰ্ম সম্পাদনাৰ কাৰণে নিয়োগ কৰে।

কামাখ্যা মন্দিৰত প্ৰৱেশ গৃহৰ বেৰত খোদিত শিলৰ ফলিৰ পৰা জনা যায় যে গুণশালী ৰজা নৰনাৰায়ণ কামাখ্যা দেৱীৰ উপাসক আছিল, তেওঁৰ গুণৱন্ত ভায়েক চিলাৰায়ে দেৱী পূজাৰ কাৰণে ১৪৮৭ শকত এই মন্দিৰ নিৰ্মাণ কৰিছিল।

নৰনাৰায়ণৰ পৰৱৰ্তী কোচ ৰজাসকলেও শিৱ আৰু শাক্তৰ উপাসক আছিল যদিও ধৰ্মীয় দিশত তেওঁলোক উদাৰ আছিল। শৈৱ-শাক্তৰ উপৰিও বৈষ্ণৱ ধৰ্মও সমমৰ্যাদা লাভ কৰিছিল। এই কোচ ৰাজ্যতে বৈষ্ণৱ গুৰু শংকৰদেৱ, মাধৱদেৱ, দামোদৰদেৱকে ধৰি বিভিন্ন বৈষ্ণৱ পণ্ডিতে নিজৰ বহু মূল্যবান সাহিত্যৰাজি ৰচনা কৰিছিল। খৃষ্টীয় ষোড়শ শতিকাৰ আদিভাগৰ পৰা সপ্তদশ শতিকাৰ আৰম্ভণিলৈকে কোচ ৰাজ্যত শাক্ত ধৰ্মৰ পয়োভৰ আছিল।

সামৰণি ঃ

প্ৰাগজ্যোতিষত নৰকৰ আগৰে পৰাই শাক্ত উপাসনাৰ ক্ষীণ সুতি এটা প্ৰবাহিত হৈ আছিল যদিও নৰকে প্ৰাগজ্যোতিষৰ অধিপতি হোৱাৰ পিছত শাক্ত উপাসনাৰ বিস্তৃতি লাভ কৰিলে। কেইবা হাজাৰ বছৰৰ পূৰ্বৰে পৰা অসমত শৈৱ আৰু শাক্ত অৰ্থাৎ শিৱ আৰু শাক্ত অৰ্থাৎ শিৱ আৰু দেৱী ভগৱতীৰ আৰাধনা চলিছিল। শিৱ মূলতঃ আছিল অনাৰ্যসকল দেৱতা। নৰকে শৈৱ উপাসকসকলক দিক্কৰলৈ খেদি প্ৰাগজ্যোতিষত শক্তিৰ আৰাধনা আৰম্ভ কৰিলে। নৰকৰ পিছত এই ভূখণ্ডত ৰাজত্ব কৰা বিভিন্ন ৰাজবংশ আৰু ৰজাসকলে শৈৱ আৰু শাক্তৰ উপাসনা কৰিছিল। কিছু ৰাজবংশই দেৱী ভগৱতীক কুলদেৱতা ৰূপে পূজা কৰিছিল। খ্ৰীঃ পঞ্চদশ শতিকাৰ পিছত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মই অসমৰ জনজীৱনত প্ৰসাৰ লাভ কৰিলে। শাক্ত ধৰ্ম, শৈৱ ধৰ্মৰ উপাসনাৰ লগতে শংকৰদেৱৰ প্ৰচাৰিত নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মই বিভিন্ন বাধা-বিঘিনিৰ মাজেৰে পথ অতিক্ৰম কৰিছিল। ❑

প্ৰসঙ্গ টীকা ঃ

১। *মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ*, ৫৫/১৩, পঞ্চানন তৰ্কৰত্ন সম্পাদিত
২। নিমজ্য ক্ষণমাত্ৰে প্ৰাগজ্যোতিষ পুৰংগতঃ
মধ্যগং কামৰূপস্য কামাখ্যা যত্ৰ নায়িকা (কালিকা পুৰাণ ৩৮/৯৫)
৩। হৰিনাথ শৰ্মা দলৈ, *অসমত শাক্ত সাধনা আৰু শাক্ত সাহিত্য*, পৃ. ২
৪। ঐ, পৃ. ২
৫। বিমল মজুমদাৰ, *পুৰাণৰ পৰিচয়*, পৃ. ৩০
৬। ঐ, পৃ. ৩১
৭। ৰমেশ বৰা, *প্ৰাচীন অসমত শাক্ত উপাসনা*, পৃ. ১৭৫
৮। বিমল মজুমদাৰ, *পুৰাণৰ পৰিচয়*, পৃ. ৩২
৯। *মহাভাৰত* সভা পৰ্ব, অধ্যায় ২৬, দ্ৰোণ পৰ্ব, অধ্যায় ২৬
১০। হৰিনাথ শৰ্মা দলৈ, *অসমত শক্তি সাধনা আৰু শাক্ত সাহিত্য*, পৃ. ৩৩
১১। হৰিনাথ শৰ্মা দলৈ, পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৫৪

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কাকতি, বাণীকান্ত ঃ *পুৰণি কামৰূপৰ ধৰ্মৰ ধাৰা*, বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১২
গোস্বামী, উপেন্দ্ৰনাথ ঃ *বৈষ্ণৱ ভক্তিধাৰা আৰু সন্ত-কথা*, মণি-মাণিক প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, সপ্তম সংস্কৰণ, ২০১২
দাস, উমেশ ঃ *সাহিত্য সংস্কৃতি মুকুৰ*, সাহিত্য চ'ৰা, অসমীয়া বিভাগ, কোকৰাঝাৰ চৰকাৰী মহাবিদ্যালয়, ২০১৪
বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা ঃ *দেৱী*, সাহিত্য প্ৰকাশ, ট্ৰিবিউন বিল্ডিংছ, গুৱাহাটী, পঞ্চম প্ৰকাশ, ২০০৭
মজুমদাৰ, বিমল ঃ *পুৰাণৰ পৰিচয়*, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০০২
শৰ্মা, তীৰ্থনাথ ঃ *ভক্তিবাদ*, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ২০১১
শৰ্মা দলৈ, হৰিনাথ ঃ *অসমত শক্তি সাধনা আৰু শাক্ত সাহিত্য*, পদ্মপ্ৰিয়া লাইব্ৰেৰী, নলবাৰী, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০০৭
হাজৰিকা, পৰীক্ষিত ঃ *শ্ৰী শ্ৰী চণ্ডী*, ডালিমী প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ১৯৯৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দুটা দশকত অসমীয়া ভাষালৈ অহা পৰিৱৰ্তন ঃ এক সমাজভাষাতাত্ত্বিক আলোচনা

ড° কাকলি গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
✆ ৮০১১০০০৬৭০

১.০ মানৱ জীৱনৰ ভাৱৰ আদান-প্ৰদানৰ বাবে ভাষা অত্যাৱশ্যকীয় অংগ। অন্যান্য বৈশিষ্ট্যৰ দৰে ভাষিক গতিশীলতা এটা ভাষাৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য। প্ৰকৃততে সময় পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে প্ৰতিটো ভাষালৈ বিভিন্ন পৰিৱৰ্তন আহে। পাৰিপাৰ্শ্বিক প্ৰভাৱৰ লগতে বিভিন্ন সামাজিক সাংস্কৃতিক কাৰণে ভাষা এটালৈ পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই আনে। ভাষা আৰু পৰিৱৰ্তন সম্পৰ্কে ফাৰ্ডিনাণ্ড ডি চচ্যুৰে কৈছে—

"Time changes all things, there is no reason why language should escape this universal law."[1]

বাঁৱতী নদীৰ পানী যিদৰে আৱদ্ধ হৈ থাকিব নোৱাৰে, ঠিক একেদৰেই জীৱন্ত ভাষা এটাও কেতিয়াও একেখিনি বৈশিষ্ট্যৰ মাজতেই আৱদ্ধ হৈ থাকিব নোৱাৰে। গতিশীলতা তথা পৰিৱৰ্তনশীলতাই পুৰণি বৈশিষ্ট্যক নতুন ৰূপত উপস্থাপন কৰে। পৰিৱৰ্তন অবিহনে এটা ভাষাৰ মৃতপ্ৰায় অৱস্থা হয়। ভাষাবিধ Rosalie Maggioই ভাষাৰ এনে অৱস্থা প্ৰত্যক্ষ কৰি কৈছে যে—

"If there's one thing consistent about language it is that it is constantly changing. The only languages that do not change are those whose speakers are dead."[2]

গতিকে দেখা যায় যে পৰিৱৰ্তন ভাষাৰ জীৱন্ত অৱস্থাৰ বাবে অনস্বীকাৰ্য। ব্যৱহাৰ তথা পৰিৱেশৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি এই পৰিৱৰ্তন আহে। অন্যথা ভাষা এটা মৃত অৱস্থালৈ ধাবিত হয়। অসমীয়া ভাষালৈ বিভিন্ন কাৰণত সময়ৰ সোঁতত বিভিন্ন পৰিৱৰ্তন অহা দেখিবলৈ পোৱা যায়। যুগ যুগ বিভিন্ন কাৰণত যিদৰে পুৰণি অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপ সলনি হৈ আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপ পাইছিল ঠিক একেদৰেই আধুনিক অসমীয়া ভাষাৰ বাটকটীয়া অৰুণোদয়-জোনাকী যুগৰ ভাষাৰ পৰা অতি সাম্প্ৰতিক আধুনিক অসমীয়া ভাষাটো বিভিন্ন পৰিৱৰ্তন স্পষ্ট ৰূপত দেখা পোৱা যায়। বিশেষকৈ একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দুয়োটা দশকত সামাজিক, সাংস্কৃতিক তথা মূল্যবোধ পৰিৱৰ্তনৰ ফলত অসমীয়া ভাষাত কিছুমান খৰতকীয়া পৰিবৰ্তন লক্ষ্য কৰা যায়। এই পৰিৱৰ্তনে ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক উভয় ধৰণৰ ফলাফল কঢ়িয়াই অনা দেখা যায়।

২.১ একবিংশ শতিকাৰ যোৱা দুটা দশকত অসমীয়া ভাষালৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহ বিভিন্ন কাৰণত সংঘটিত হৈছে। এই পৰিৱৰ্তনসমূহ ভাষাটোৰ মূল গাঁঠনিলৈও প্ৰশ্ন উত্থাপিত কৰা দেখা হৈছে। সামাজিক, সাংস্কৃতিক, শৈক্ষক বিভিন্ন দিশত অহা এই

পৰিৱৰ্তনসমূহক আমি বিভিন্নধৰণে ভাগ কৰিব পাৰোঁ। সেইবোৰ এনেধৰণৰ—

২.১.১. নৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰকাশভংগী

২.১.২. ডিজিটেল মিডিয়াৰ-প্ৰভাৱ

২.১.৩. সামাজিক মাধ্যম বা চ'ছিয়েল মেডিয়াৰ প্ৰভাৱ

২.১.৪. অন্য ভাষাৰ আধিপত্য

২.১.৫. সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তন/মূল্যবোধৰ পৰিৱৰ্তন

২.১.১. অসমীয়া ভাষালৈ পৰিৱৰ্তনৰ বতাহজাক বোৱাই অনা প্ৰধান কাৰকেই হ'ল নৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰকাশভংগী। সাধাৰণতে ভাষা এটালৈ পৰিবৰ্তন দুই ধৰণে আহে আভ্যন্তৰীণ ৰূপত আৰু বাহ্যিক ৰূপত। আভ্যন্তৰীণ পৰিৱৰ্তন নিৰ্দিষ্ট এখন সমাজত বসবাস কৰা এটা গোটৰ জৰিয়তে সম্পাদিত হয় আৰু বাহ্যিক পৰিৱৰ্তন এটা ভাষাৰ ওপৰত আন এটা ভাষাৰ প্ৰভাৱৰ ফলত সংঘটিত হয়। নৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰকাশভংগী আভ্যন্তৰীণ পৰিৱৰ্তনৰ অন্তৰ্গত। এই পৰিৱৰ্তনক আমি কিছুমান ভাগত ভাগ কৰি দেখুৱাব পাৰোঁ—

২.১.১.১. ধ্বনিতত্ত্ব আৰু ৰূপতত্ত্ব

২.১.১.২. শব্দভাণ্ডাৰ

২.১.১.৩. টেবু বা নিষিদ্ধ শব্দৰ প্ৰয়োগ

২.১.১.৪. শব্দৰ সানমিহলি/মিশ্ৰিত ভাষা

২.১.১.৫. বাক্যগঠন প্ৰণালী

২.১.১.১. ভাষা এটাৰ প্ৰাথমিক ৰূপটো ধ্বনিতত্ত্বৰ আৰু ৰূপতত্ত্বৰ মাজত লুকাই থাকে। বৰ্তমান সামাজিক আৰু শৈক্ষিক পৰিৱেশে অসমীয়া ভাষাৰ ধ্বনিতাত্ত্বিক আৰু ৰূপতাত্ত্বিক দিশলৈও পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই অনা দেখা যায়। বিভক্তি, নিৰ্দিষ্টবাচক প্ৰত্যয়, সৰ্বনাম, বিশেষ, কাল আদি ধ্বনিতত্ত্ব আৰু ৰূপতত্ত্ব সৰু সৰু উপাদানসমূহ আধুনিক অসমীয়া নৱপ্ৰজন্মৰ মুখত পৰি পৰিৱৰ্তিত ৰূপ লাভ কৰাৰ লগতে ই বিকৃত ৰূপ লাভ কৰিছে। প্ৰকৃত অৰ্থত এই ৰূপবোৰো অস্তিত্বৰ গৰাহত। উদাহৰণস্বৰূপে—

বিভক্তি - শুদ্ধৰূপ— মই কালিলৈ গুৱাহাটীলৈ যাম।

ব্যৱহাৰিক ভুল ৰূপ— মই কালি গুৱাহাটী যাম।

নিৰ্দিষ্টবাচক প্ৰত্যয়—মোৰ ল'ৰাজনী

বৰ ভাল— ব্যৱহাৰিক ভুল ৰূপ

মোৰ ল'ৰাটো বৰ ভাল— শুদ্ধ ৰূপ

মোৰ ছোৱালীজনী বৰ ভাল— শুদ্ধ ৰূপ

এই ভুল কেতিয়াবা উদ্দেশ্যপ্ৰণোদিত কেতিয়াবা নজনাকৈ ভাষাজ্ঞান নথকাৰ বাবে ভুল। যোৱা কেইবছৰ মানত 'মতা মাছ' 'মাইকী মাছ'ৰ বিতৰ্কও ইয়াৰপৰা ভিন্ন নহয়।

পুৰণি অসমীয়া ভাষাত লিংগ অনুযায়ী পুৰুষ আৰু নাৰীৰ মাজত নামৰ ভিন্নতা আছিল। বহুসময়ত ব্যক্তিগৰাকীৰ নামেই নাৰী নে পুৰুষ সেই কথা স্পষ্ট কৰি দিছিল। কিন্তু বৰ্তমানৰ এনে বহু নাম প্ৰচলিত যাৰ সহায়ত লিংগ নিৰ্ধাৰণ কৰা সম্ভৱ নহয়। যেনে— ৰূপজ্যোতি, নৱজ্যোতি, জোনাক, জিকমিক ইত্যাদি।

নাম চুটি কৰাৰ প্ৰৱণতাৰ বাবেও বহুসময়ত লিংগ নিৰ্ধাৰণ কৰা টান হৈ পৰে। উদাহৰণস্বৰূপে— অভি বুলিলে মাতিলে আপুনি অভিজিতক মাতিছে নে অভিলাষাক মাতিছে বা জ্যোতি বুলি মাতিলে জ্যোতিমাক মাতিছে নে জ্যোতিষ্মানক মাতিছে নিৰ্ণয় কৰিব নোৱাৰে। ইয়াৰ বাহিৰেও অসমীয়া ভাষাত স্বৰধ্বনি হিচাপে ব্যৱহাৰ হোৱা ই, ঈৰ পাৰ্থক্যহীনতা লক্ষ্য কৰা যায়। বহুসময়ত 'ঈ'ব ব্যৱহাৰ বাদ দিয়াৰ দৰে হৈছে।

সেইদৰে অসমীয়া ভাষাৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাকৰোঁতা 'ৱ' ধ্বনিটোও বৰ্তমান বহুতৰ বাবে এলাগী 'ৱ' ধ্বনিৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰৰ সংশয়ৰ বাবে ইয়াৰ ব্যৱহাৰ কমি অহা দেখা গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে— পৰিৱৰ্তন - পৰিবৰ্তন

ভুৱন - ভুবন

২.১.১.২. ভাষা এটাৰ শব্দসমূহ শব্দভাণ্ডাৰ মাজত সংৰক্ষিত হৈ থাকে। সময়ৰ সোঁতত প্ৰতিটো ভাষালৈ নতুন নতুন শব্দৰ আমদানি ঘটা দেখা যায়। অসমীয়া ভাষাও ইয়াৰ পৰা পৃথক নহয়। ইন্দো ইউৰোপীয় পৰিয়ালৰ আধুনিক ভাৰতীয় আৰ্য ভাষাৰ অন্তৰ্গত অসমীয়া ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰত যিমানধৰণৰ বিচিত্ৰতা দেখিবলৈ পোৱা যায় আন আধুনিক ভাৰতীয় আৰ্যভাষাত ইমান বিচিত্ৰতা হয়তো দেখা পোৱা নাযায়। অসমীয়া ভাষাত আৰ্য হিন্দী, মাৰোৱাৰী, বিহাৰী, বঙালী আদি ভাষাৰ লগতে বৰো, ৰাভা, মিছিং, তিৱা, দেউৰী আদি অনাৰ্য ভাষাৰো প্ৰভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। একবিংশ শতিকাৰ যোৱা দুটা দশকত এই উভয় শ্ৰেণীৰ ভাষাৰ মিশ্ৰিত প্ৰভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। বিশেষকৈ নৃগোষ্ঠীয় ভাষাসমূহৰপৰা অসমীয়া আৰু নৃগোষ্ঠীয় ভাষ্য মিশ্ৰিত নৃগোষ্ঠীয় উপভাষাৰ বিভিন্ন শব্দই অসমীয়া ভাষাৰ ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰক সমৃদ্ধ

কৰিছে। অৱশ্যে এই শব্দসমূহে সাংবিধানিক স্বীকৃতি লাভ কৰা নাই।

একবিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণীৰ কালছোৱাৰপৰা অসমীয়া সমাজৰ নৱপ্ৰজন্মৰ মাজত কিছুমান শব্দ নতুনকৈ চৰ্চিত হ'বলৈ আৰম্ভণী কৰিছিল। প্ৰথম অৱস্থাত সমীহজনিত কাৰণত এই শব্দসমূহ মুকলিকৈ ব্যৱহাৰ কৰা নহৈছিল যদিও বৰ্তমান সময়ত ইয়াৰে কিছু শব্দই ব্যাপক জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ বিপৰীতে একেসময়তে উদ্ভৱ হোৱা কিছুমান শব্দ বৰ্তমানো মুকলিকৈ ব্যৱহাৰ কৰা নহয়। উদাহৰণস্বৰূপে— কামোৰ, বিন্দাচ, বে, আবে এইকেইটা শব্দ সমসাময়িভাৱেই সৃষ্টি হৈছিল। বিন্দাচ আৰু কামোৰে জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰি জনসমাজত মুকলিকৈ স্বীকৃত হোৱাৰ লগতে অভিধানতো এই শব্দ দুটাই স্থান কৰিলে। কিন্তু একেধৰণে সৃষ্টি হোৱা বে, আবে সীমিত পৰিসৰৰ মাজত ৰৈ গ'ল। সেইদৰে বৌদ্ধিক মহলত 'শ্যেকচপীয়েৰ নে চ্যেকচপীয়েৰ' এই লৈ হোৱা বিতৰ্কও শব্দভাণ্ডাৰত সৃষ্টি হোৱা বিভ্ৰান্তিৰ অন্য এক উদাহৰণ।

ইয়াৰ বাহিৰেও মোবাইল ফোনৰ আগমনৰ লগে লগে অসমীয়া ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰলৈও নতুন নতুন শব্দৰ আগমন ঘটিল। মোবাইল এছএমএছৰ চুটি ভাষাই ইংৰাজী ভাষাৰ দৰে অসমীয়া ভাষাৰ শব্দও চুটি কৰিবলৈ বহুসমূহ শব্দবোৰ বিকৃত কৰি পেলোৱাৰ দৰে অৱস্থা হ'ল।

ভাষাবিধ Jodd Rutumanএ মানুহৰ প্ৰকৃতি সম্পৰ্কে কৈছে—

"It is the things in common that make relationships enjoyable, bit it is the little differences that make them interesting."[3]

অসমীয়া আধুনিক মানুহৰ ক্ষেত্ৰতো একেটা কথাই প্ৰযোজ্য। শব্দবোৰ বেছি উপভোগ্য আৰু ব্যৱহাৰৰ সুবিধালৈ চাই চুটি কৰাৰ বাবে বহুতো শব্দ বহুসময়ত বুজি পোৱাই টান হৈ পৰে।

২.১.১.৩ টেবু বা নিষিদ্ধ শব্দৰ ব্যৱহাৰেও অসমীয়া ভাষাক নতুন মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। ভাষাত টেবুৰ ব্যৱহাৰ সম্পৰ্কে কোৱা হৈছে—

"Word taboo, also called taboo language, language taboo or linguistic taboo is a kind of taboo that involves restricting the use of words or other parts of language due to social constraints."[4]

অৰ্থাৎ সমাজত মুকলি যিবোৰ শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰিব নোৱাৰি সেই শব্দবোৰেই টেবু। অসমীয়া সমাজত এনেধৰণৰ বহুতো টেবু শব্দৰ সৃষ্টি হৈছে যিবোৰ শব্দই কিছু অসমীয়াৰ স্খলিত মূল্যবোধৰ আঁহি দাঙি ধৰাত সহায় কৰিছে।

২.১.১.৪. শব্দৰ সানমিহলি অসমীয়া ভাষাৰ এক নতুন উপাদান। এনে সানমিহলিৰ ফলত এনে এক মিশ্ৰিত ভাষাৰ সৃষ্টি হৈছে যে একেটা বাক্যতে অসমীয়া, হিন্দী, বঙালী, ইংৰাজী আদি বিভিন্ন ভাষাৰ শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। ব্যৱহাৰ কৰোঁতা বা ভাষ্য কওঁতাই ইচ্ছাকৃতভাৱে আৰু বহুসময়ত নজনাকৈ এই শব্দবোৰৰ ব্যৱহাৰ কৰে। আধুনিকতাৰ নামত বহুত নতুন শব্দ আমি গ্ৰহণ কৰাৰ লগতে অসমীয়া ভাষাৰ শব্দৰ লগত ইয়াৰ সংমিশ্ৰণ ঘটাওতে এক প্ৰকাৰ মিশ্ৰিত অসমীয়া ভাষাৰ সৃষ্টি হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে— মোৰ বহুত ছাৰা ফ্ৰাচটেচন হৈ গৈছে বে।

ইয়াত ইংৰাজী, হিন্দী, অসমীয়া, বঙালী আদি বিভিন্ন ভাষাৰ শব্দ ব্যৱহাৰ কৰি বাক্যটো কোৱা হৈছে। বৰ্তমান পৰিস্থিতিত এনে বাক্যই শ্ৰোতাৰ মুখত সুলভ। শুদ্ধ অসমীয়া বাক্য ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বহীনতাৰ ফলতে এনে পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হোৱা দেখা গৈছে।

২.১.১.৫ একবিংশ শতিকাৰ এই দশককেইটাত বাক্য গঠন প্ৰণালীলৈও কিছু পৰিৱৰ্তন অহা দেখা যায়। সানমিহলি ভাষা, ধ্বনি উচ্চাৰণৰ পাৰ্থক্য, অথালি পথালিকৈ বিসংগতিপূৰ্ণ গাঁঠনিৰে অসমীয়া বাক্য গঠন হ'বলৈ ধৰিছে। বাক্যপ্ৰণালী বহুসময়ত সহজ-সৰল কৰিবলৈ বিচৰা হৈছে যদিও এনে বাক্যই সুবিধাৰ লগতে অসুবিধাবো সৃষ্টি কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

"এই ৰিকি, মেংগ'ৱাৰীলৈ যাবা।" (এই ৰিক্সা, আমবাৰীলৈ যাবানে?) একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথমছোৱাত নৱপ্ৰজন্মৰ মাজৰ খুবকৈ জনপ্ৰিয় এই বাক্যফাঁকিৰ দৰে আৰু বহুতো বাক্য একেসময়তে সৃষ্টি হোৱা দেখা গৈছিল। ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ গৈ অসমীয়া ভাষাক ইংৰাজী কৰাৰ প্ৰৱণতাই এনে বাক্য সৃষ্টিত সহায় কৰিছিল।

ইয়াৰ বাহিৰেও মান্য লিখিত ভাষাতকৈ অসমৰ বিভিন্ন অঞ্চলৰ কথিত ভাষাইও লিখিত ভাষাৰূপত বাক্যত স্থান পাইছে। বিশেষকৈ আধুনিক অসমীয়া গল্প-উপন্যাসত এনেধৰণৰ পৰিৱৰ্তন লক্ষ্য কৰা যায়।

এইদৰে দেখা যায় যে ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্ব, শব্দভাণ্ডাৰ, মিশ্ৰিত ভাষা, বাক্যগঠন প্ৰণালী আদিৰ জৰিয়তে অসমীয়া মানুহৰ বিশেষকৈ নৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰকাশভংগীৰ পৰিৱৰ্তন হৈছে।

এই পৰিৱৰ্তনে অসমীয়া ভাষালৈ নতুন বৈশিষ্ট্য। কঢ়িয়াই আনিলেও অসমীয়া ভাষাটোক সংকটাপন্ন অৱস্থালৈ থেলি দিয়াৰ ক্ষেত্ৰতো সহায় কৰিছে।

২.১.২. অসমীয়া ভাষালৈ পৰিৱৰ্তন অনাৰ ক্ষেত্ৰত ইলেকট্ৰনিক মিডিয়াৰ ভূমিকাও গুৰুত্বপূৰ্ণ। প্ৰকৃততে হঠাৎ ঢৌৰ দৰে অহা ব্যক্তিগত বাতৰি প্ৰতিষ্ঠান বা নিউজ চেনেল, এফ.এম. ৰেডিঅ' আদিয়ে অসমীয়া ভাষাৰ পৰিৱৰ্তনৰ গতিটোক বেছি খৰতকীয়া কৰি তুলিছে। অনভিজ্ঞ, শুদ্ধ অসমীয়া ভাষাৰ জ্ঞান নথকা বহুজনৰ বাবে এই মাধ্যমসমূহৰ জৰিয়তে বিসংগতিপূৰ্ণ বাতৰি পৰিৱেশনৰ লগত মিশ্ৰিত ভাষাৰ কথনভংগীৰ জৰিয়তে অসমীয়া মানুহৰ মাজলৈ ভাষাৰ ভুল ৰূপ এটা কঢ়িয়াই নিয়াত সহায় কৰিছে। ছপা-মাধ্যমৰ জৰিয়তে এনে ভুল হয় যদিও ইলেকট্ৰনিক মেডিয়াৰ তুলনাত নগণ্য।

২.১.৩. সামাজিক মাধ্যম বা ছ'চিয়েল মেডিয়া যেনে ফেচবুক, ইনষ্টাগ্ৰাম আদিৰ জৰিয়তেও অসমীয়া ভাষালৈ পৰিৱৰ্তন অহা দেখা যায়। ফেচবুকৰ ভাষাই বহুসময়ত আমাক বিভ্ৰান্ত কৰাও দেখা যায়। কোনো লোকে যদি অসমীয়া ভাষাটো সঠিক আৰু শুদ্ধৰূপত উপস্থাপন কৰিছে বেছিভাগেই বানান, বাক্যগাঁঠনিৰ ভুলেৰে ভাৰাক্ৰান্ত কৰি অসমীয়া ভাষাক বিশ্বদৰবাৰত মেলি দিছে। ফেচবুকৰ জৰিয়তে বহুতো নতুন লেখকৰ সৃষ্টি হৈছে। কিন্তু বহুসময়ত লিখনিৰ মানদণ্ডই হতাশ কৰিছে। বিশেষকৈ সামান্য সৌজন্যতাবোধকণো ৰক্ষা নকৰি প্ৰকাশ কৰা ভাষাই বহুসময়ত বিপদৰো সন্মুখীন কৰাইছে।

বিশেষকৈ এই সামাজিক মাধ্যমসমূহে অসমীয়া কিতাপ পঢ়া মানুহৰ সংখ্যা ক্ৰমাৎ কমাই আনিছে। কিতাপৰ জগত বুলি জনাজাত পাণবজাৰতে স্বয়ং কিতাপৰ আদৰ কমিছে। ১৯৫৮ চনত স্থাপিত 'বাণী প্ৰকাশ'ৰ দৰে কিতাপৰ প্ৰতিষ্ঠানত কিতাপৰ সলনি বিক্ৰী হৈছে মোবাইল হেণ্ডচেট। অসমীয়া ভাষা ছপা পুথিৰ বাবে ইয়াতকৈ দুৰ্ভাগ্য হয়তো নাই। অসমীয়া ভাষাৰ ছপা পুথি পঢ়া মানুহৰ অভাৱ হোৱা মানেই ক্ৰমান্বয়ে অসমীয়া ভাষালৈ অহা অনীহাৰ কথাই সূচায়। এনে পৰিস্থিতিত এটা ভাষা জীৱন্ত তথা গতিশীল ৰূপত কিমান দিন টিকি থাকিব সন্দেহৰ বিষয়।

ফেচবুকত ব্যক্তিগত ফটো বা অন্য বিষয় আগবঢ়াবলৈ যিবোৰ বাক্য ব্যৱহাৰ কৰা হয় সেই বাক্যবোৰেও প্ৰকৃততে কি বুজাবলৈ চেষ্টা কৰিছে সেই লৈ সন্দেহ থাকি যায়। ধ্বনি, বানানৰ ভুলেৰে ভাৰাক্ৰান্ত এই পোষ্টসমূহ দেখিলে অসমীয়া ভাষাৰ দুৰ্যোগৰ ছবিখন চকুৰ আগত ভাঁহি উঠে। যেনে—

খাং বুলি কোলে খাওঁেই আৰু

দৃঢ়তাপূৰ্ণ বেটিঙেৰে অৰ্জন কৰা কেৰিয়াৰৰ প্ৰথমটো শতক ইনভেলিদ ঘোষণা।

২.১.৪. অসমীয়া ভাষাৰ ওপৰত অন্য ভাষাৰ আধিপত্যইও অসমীয়া ভাষালৈ শংকা কঢ়িয়াই অনা দেখা যায়। ২০১১ চনৰ লোকপিয়ল অনুসৰি অসমত অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰ ৪৮.৩৮ শতাংশ। অৰ্থাৎ অসমৰ চৰকাৰী ভাষা অসমীয়া ভাষা হোৱা স্বত্বেও অসমত বসবাস কৰা আধাতকৈও কম মানুহে অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰ কৰে। অসমীয়া ঠাইত বৰ্তমান বঙালী ভাষাই নিজৰ আধিপত্য জন্মাবলৈ সক্ষম হৈছে। বাকী হিন্দী, বিহাৰী আদি ভাষাৰ প্ৰাধান্যও কম নহয়। এনে পৰিস্থিতিয়ে আমাক আকৌ উনবিংশ শতিকাৰ ভাষা লোপ বা বিংশ শতিকাৰ ভাষা আন্দোলনৰ কথা সোঁৱৰাই যায়। অসমীয়া মানুহৰ নিজৰ ভাষাটোৰ প্ৰতি অনীহাৰ ফলতে এনে অৱস্থাৰ সৃষ্টি হৈছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই যথাৰ্থভাৱেই কৈ গৈছে—

"ঢেঁকীটোৰ এমুৰে তুমি উঠি আছা, সিমূৰে তোমাৰ মাতৃভূমি। তুমি ওপৰলৈ উঠিলে মাতৃভূমি তললৈ যাব। মাতৃভূমিক ওপৰলৈ তুলিব খুজিছা যদি, তুমি তোমাক সৰুটি কৰি তললৈ নিয়াঁ।"

বৰ্তমানৰ পটভূমিত এই কথাষাৰ হৃদয়ংগম কৰিলেহে অসমীয়া ভাষাৰ অস্তিত্ব ৰক্ষা কৰাৰ চেষ্টা চলাব পৰা যাব।

আহৰণৰ যোগ্যতাৰ বাবে ভাষা বিভ্ৰাটৰ সৃষ্টি হোৱা দেখা যায়, যি অসমীয়া ভাষালৈ পৰিৱৰ্তন আনিছে। উদাহৰণস্বৰূপে আজি কিছু বছৰৰ আগত এজন বিদ্বান লোকৰ অভিজ্ঞতাৰ কথা ক'ব পাৰি। এই ব্যক্তিজনে এদিন পাণবজাৰৰ পৰা জালুকবাৰীস্থিত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়লৈ কোনো বিশেষ সকামত যাব লগা হ'ল। তেওঁ বাছেৰে গৈ জালুকবাৰীৰ বিশ্ববিদ্যালয়ত সোমোৱা পথটোৰ সন্মুখত নামি এজন ৰিক্সাৱালাক সুধিলে, "ভাই, বিশ্ববিদ্যালয়লৈ যাবানে।" ৰিক্সাৱালাজনে বহু সময় মুখলৈ ভেবা লাগি চাই থাকিল। তেওঁ আকৌ সুধিলে, "বিশ্ববিদ্যালয়লৈ নোযোৱা নেকি?" উত্তৰত ৰিক্সাৱালাজনে ক'লে, "আপুনি কোৱা ঠাইডোখৰ মই চিনি নাপাওঁ।" তেতিয়া তেওঁ ক'লে, "কিয় তুমি ইউনিভাৰচিটি চিনি নোপোৱা?" ৰিক্সাৱালাজনে হাঁহি মাৰি ক'লে, "অ' তাকেই নকয় কিয়, ইউনিভাৰচিটিলৈ যাব।"

— এই ঘটনাটোৱে প্ৰমাণ কৰে যে ভাষা যিদৰে আহৰণ কৰা হয় ব্যৱহাৰো সেই ধৰণেই হয়। ৰিক্সাৱালাজন অশিক্ষিত যদিও তেওঁ শ্ৰৱণ ক্ষমতাৰ জৰিয়তে সকলোৰে মুখত শুনি থকা 'ইউনিভাৰচিটি' শব্দটোহে তেওঁ গ্ৰহণ কৰিছে।

মূল্যবোধৰ পৰিৱৰ্তনৰ ফলতো ভাষালৈ পৰিৱৰ্তন আহিছে। যদিও সকলো ভাষ্য সমান সেয়া লাগিলে ইংৰাজীয়ে হওক বা অসমীয়াই হওক। যিকোনো ভাষা শিকাৰ অধিকাৰ সকলোৰে থাকে। কিন্তু নিজৰ ভাষাৰ প্ৰতি হীনমান্যতাবোধৰ বাবে বহুসময়ত অসমীয়া ভাষা এলাগী হৈছে। শিক্ষাৰ মাধ্যম ইংৰাজীয়ে হওক অথবা অসমীয়াই হওক তেওঁ প্ৰকৃত জ্ঞান লাভ কৰাটোহে গুৰুত্বপূৰ্ণ। আজিৰ প্ৰতিযোগিতাৰ যুগত আন্তৰ্জাতিক ভাষা হিচাপে ইংৰাজী ভাষাৰ জ্ঞান প্ৰয়োজনীয়। কিন্তু ইংৰাজীক উচ্চ ভাষা জ্ঞান কৰি পিতৃ-মাতৃয়ে সন্তানক মাতৃভাষা অসমীয়া ভাষাৰ সামান্য জ্ঞানখিনিও নিদিয়াটো দুৰ্ভাগ্যজনক। নিজৰ সন্তানে অসমীয়া ভাষাৰ একোবেই নাজানে অথবা অসমীয়া ভাষা ক'ব নাজানে বুলি কোৱাতো গৌৰৱৰ কথা নহয়, লজ্জাৰহে বিষয়। পৰিৱৰ্তিত মূল্যবোধে এচাম অসমীয়াৰ মনত বহুওৱা এনে চাপে অনাগত ভৱিষ্যতৰ লগতে অসমীয়া ভাষাক ধ্বংস কৰিবলৈও যথেষ্ট। মাতৃভাষাৰ জ্ঞান লাভ কৰাতো প্ৰতিটো শিশুৰ প্ৰাথমিক অধিকাৰ। কিন্তু এনে মানসিকতাৰ বাবে তেওঁলোকক ইয়াৰপৰা বঞ্চিত কৰা হৈছে।

২.১.৫. পুৰণি প্ৰজন্ম আৰু নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত মানসিক আৰু সাংস্কৃতিক মূল্যবোধৰ পৰিৱৰ্তনৰ বাবেও ভাষা ব্যৱহাৰৰ প্ৰণালীলৈ পাৰ্থক্য আহিছে। ভাষা ব্যৱহাৰৰ ধৰণ, কথা বতৰাৰ স্থিতি আদিলৈ লক্ষ্য কৰিলে দুয়োটা প্ৰজন্মৰ মাজত ব্যৱধান স্পষ্টকৈ দেখা যায়। বিশেষকৈ স্বকীয় সাংস্কৃতিক উপাদানতকৈ অন্য ভাষা সংস্কৃতিৰ উপাদানক গ্ৰহণ কৰা মানসিকতাই এই ব্যৱধান স্পষ্ট কৰিছে। ছট পূজা, নৱৰাত্ৰি, কৰৱাছট আদি পালনৰ লগে লগে নতুন সাংস্কৃতিক উপাদানৰ লগতে বিভিন্ন ভাষিক উপাদানৰো আমদানী ঘটিছে।

ইয়াৰ বাহিৰেও এই দশক দুটাত অসমীয়া ভাষাত সৃষ্টি হোৱা ভিডিঅ' গীতত অসমীয়া ভাষাক প্ৰথম সময়ত সুন্দৰকৈ উপস্থাপিত কৰা হৈছিল যদিও বৰ্তমান দৃষ্টিকটু কিছুমান ভিডিঅ'ত ব্যৱহাৰ কৰা ভাষাই অসমীয়া ভাষাৰ লগতে অসমীয়া জাতিটোকো হেয় প্ৰতিপন্ন কৰা যেন অনুভৱ হয়। উদাহৰণস্বৰূপে—

'ৱাশ্বিং পাউদাৰ নিৰমা'

'ডিস্ক' ভণ্টী নানাচিবা বেয়া লাগে'। ইত্যাদি।

অৱশ্যে ইয়াৰ মাজতে বিভিন্নজনে সৎ প্ৰচেষ্টাৰে অসমীয়া ভাষা তথা সংস্কৃতি ৰক্ষাৰ বাবে যত্নপৰ হৈছে।

৩.০. বিভিন্ন কাৰণত একবিংশ শতিকাৰ দুয়োটা দশকত অসমীয়া ভাষালৈ বিভিন্ন পৰিৱৰ্তন অহা দেখা যায়। ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক বিভিন্ন বৈশিষ্ট্যৰ সমাহাৰেৰে অসমীয়া ভাষালৈ অহা এই পৰিৱৰ্তনসমূহে ভাষাটোক সমৃদ্ধ কৰাৰ লগতে ভাষাটোক দোষদুষ্টও কৰিছে। শব্দভাণ্ডাৰত নতুন শব্দৰ প্ৰৱেশ ঘটিছে কিন্তু ই ভাষাটোক কিমান সমৃদ্ধ কৰিছে ই সন্দেহৰ আৱৰ্তত। অসমীয়া মানুহৰ অন্য ভাষা আহৰণৰ প্ৰতি ধাউতি বাঢ়িছে কিন্তু নিজৰ মাতৃভাষাটো শুদ্ধ আৰু সঠিকভাৱে উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্ব কমি আহিছে। অসমীয়া ভাষা আগতকৈ সহজ-সৰল ৰূপত উপস্থাপিত হৈছে। ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্বৰ ক্ষেত্ৰত পাৰ্থক্য আহিছে। সৰলীকৰণৰ নামত বহুত বস্তু উপেক্ষিত হৈছে।

৪.০. গতিশীলতা ভাষাৰ ধৰ্ম। কিন্তু গতিশীলতা প্ৰদান কৰি ভাষাটো বিকৃত কৰাৰ অধিকাৰ কাৰো নাথাকে। যোৱা দুটা দশকত অসমীয়া ভাষাত বিভিন্নধৰণৰ সৃষ্টিশীল আৰু স্থায়ী কাম সম্পাদিত হৈছে। এচামে যিদৰে ভাষা ৰক্ষাৰ বাবে অহৰহ চেষ্টা চলাই আছে, ঠিক একেদৰে আন এচামে ভাষা ধ্বংস যজ্ঞত অৰিহণা যোগাইছে। অসমীয়া ভাষা ৰক্ষা কৰাৰ দায়িত্ব প্ৰতিজন অসমীয়াৰ। এই প্ৰচেষ্টাক ভালদৰে গ্ৰহণ কৰিলে অসমীয়া ভাষাই বিশ্বদৰবাৰত এক অন্যতম ভাষা হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰিব। ❑

পাদটীকা ঃ

১। Google
২। Google
৩। Google
৪। Google

প্ৰসংগপুথি ঃ

১। গোস্বামী, উপেন্দ্ৰ নাথ ঃ অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ, সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ, বৰুৱা এজেন্সী, গুৱাহাটী, পুনৰ মুদ্ৰণ, ২০০৮ চন
২। পাঠক, ৰমেশ ঃ অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাস, পৰিৱৰ্দ্ধিত আৰু সংশোধিত সংস্কৰণ, অশোক বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, পঞ্চম প্ৰকাশ, চেপ্টেম্বৰ, ২০০৮ চন
৩। মৰল, দীপাংকৰ ঃ উপভাষা বিজ্ঞান, বনলতা, গুৱাহাটী, তৃতীয় পৰিৱৰ্দ্ধিত সংস্কৰণ, নৱেম্বৰ, ২০০৭ চন

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

আধুনিক অসমীয়া কবিতাত লোক-সাংস্কৃতিক সমল

ড° উৎপলা দাস

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

সাহিত্যৰ এটা বিশিষ্ট অংগ হৈছে কবিতা। অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱ অসমীয়া কবিতাত স্পষ্ট। বিশেষকৈ লোকসাহিত্যৰ সাধুকথাবোৰৰ কিছু অংশক বাদ দি বাকী অংশক গীতিময় কবিতা বুলিব পাৰি। অৱশ্যে এই কথাষাৰ বিশ্বজনীন। পৃথিৱীৰ আন আন বৰেণ্য কবিসকলৰো বহুতেই লোকসাহিত্যৰ সমলেৰে নিজৰ সৃষ্টিৰাজিক অমৰ কৰাৰ উদাহৰণ পোৱা যায়। এই ক্ষেত্ৰত আধুনিক অসমীয়া কবিতাও ব্যতিক্ৰম নহয়। প্ৰতি গৰাকী কবিয়েই লোক-সংস্কৃতিৰ সমলক নিজা জ্ঞান, অভিজ্ঞতাৰে মনোৰমকৈ প্ৰকাশ কৰিব পাৰিছে। অসমৰ লোক-সংস্কৃতি বিনন্দীয়া প্ৰকৃতি,পৰিৱেশ, আচাৰ- বিচাৰ, ৰীতি-নীতিৰে সমৃদ্ধ আৰু ইয়াৰ বিশ্বজনীনতাক নুই কৰিব নোৱাৰি। সেয়েহে আধুনিক অসমীয়া কবিতাত লোকসাহিত্যৰ পৰা বুটলি লোৱা সমলবোৰে স্বদেশ আৰু স্বজাতিৰ স্বাভিমানক অতি সুন্দৰকৈ দাঙি ধৰাৰ লগতে বিশ্ব সাহিত্যৰ লগতো সংযোগ স্থাপন কৰিব পাৰিছে। আধুনিক কবিতাৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰিবলৈ যাওঁতে আধুনিক যুগৰ বাটকটীয়াসকল আৰু তেওঁলোকক সুস্থ বাতাবৰণ প্ৰদান কৰা কবিসকলৰ কবিতাকো বিচাৰ কৰি চাব লাগিব। সাহিত্যৰ বিচাৰত প্ৰতিটো যুগেই তাৰ পূৰ্বৱৰ্তী যুগৰ ওচৰত ঋণী হোৱাৰ লগতে উত্তৰ যুগৰ দিক নিৰ্ণায়ক হয়। এক কথাত ক'বলৈ গ'লে কবিসকল হ'ল সমাজৰ একান্ত প্ৰহৰী। সমাজৰ সকলো দিশ তথা পৰিৱৰ্তনক কবিয়ে শব্দৰ মায়াজালেৰে বাংময় ৰূপত দাঙি ধৰে। সামাজিক দায়বদ্ধতাৰ বাবেই এগৰাকী কবিয়ে লোকসংস্কৃতিক প্ৰাণত প্ৰতিষ্ঠা কৰি আগবাঢ়ি যায়। যি কবিয়ে লোকসংস্কৃতিক সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে; তেনে কবিৰ কবিতাই পাঠকৰ অন্তৰত বৰঘৰ সাজিছে। যিদৰে ৰোমাণ্টিক কবিসকলে প্ৰকৃতিৰ বুকুলৈ প্ৰত্যাৱৰ্তন কৰি নিজ আৱেগক প্ৰকাশ কৰিছিল; ঠিক তেনেদৰে আধুনিক যুগৰ এচাম কবিয়েও লোকসংস্কৃতিৰ পৰা আহৰিত সমলেৰে নিজা সৃষ্টিক গাম্ভীৰ্যতা প্ৰদান কৰিছিল। ফলত এই শ্ৰেণীৰ কবিতাবোৰ জনপ্ৰিয় হোৱাৰ উপৰিও এটা জাতি তথা এখন সমাজকো প্ৰাণময়তাৰে দাঙি ধৰিব পাৰিছিল।

সূচক শব্দ ঃ লোকসাহিত্য, লোকসংস্কৃতি, অসমীয়া কবিতা

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
বি. বৰুৱা কলেজ, গুৱাহাটী-৭, অসম
✆ ৯৭০৬১৬১৭২২
✉ utpaladas70@gmail.com

আৰম্ভণি ঃ

লোককবিতাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া সংস্কৃতি অতিকৈ চহকী। বিহুগীত, বনগীত, বিয়ানাম, আইনাম, মাউত গীত, দেহ বিচাৰৰ গীত, টোকাৰী গীত, জিকিৰ-জাৰি, বাৰমাহী গীত, নৈদানিক গীত, বেলাদ, বদন বৰফুকনৰ গীত, কমলা কুঁৱৰীৰ গীত, ফুলকোঁৱৰৰ গীত, মণিকোঁৱৰৰ গীত, জনা গাভৰুৰ গীত, নিচুকনি গীত, ধাইনাম আদি। তেনেদৰে

জনজাতীয় জীৱনৰ মিচিং ঐনিতম, ডিমাছা গীত, বৈসাগু গীত হাইদাং গীত আদিকো সামৰা হয়। তদুপৰি লোককাহিনী, যোজনা-পটন্তৰ, লোক-প্ৰথা, লোক-কলাই ওপচাই তোলা বৰ্ণাঢ্য সংস্কৃতিৰ পথাৰখন কবি শিল্পীৰ আকৰ্ষণৰ থলী। এইখন পথাৰকে চহাই-মৈয়াই কবিয়ে সাম্প্ৰতিক সময়তো পাহৰিব পৰা নাই লোকজীৱনৰ সেই নিৰ্ভেজাল মাদকতা। এই বিষয়ে ৰবীন্দ্ৰনাথেও কৈ গৈছে —

'যে আছে মাটিৰ কাছাকাছি
সে কবিৰ বাণী লাগি
কাণ পেতে আজি।'

যিটো বাটেৰে 'জোনাকী'ৰ যোগেদি অসমীয়া সাহিত্যলৈ ৰমন্যাসিক ভাৱধাৰাৰ আগমন ঘটিছিল; ঠিক একেদৰেই 'ৰামধেনু'ৰ মাজেৰে অসমীয়া সাহিত্যলৈ আধুনিকতাৰ আগমন ঘটিছিল। অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত আধুনিকতাৰ ধাৰণাটো সাধাৰণতে পাশ্চাত্যৰ পৰা আমদানিকৃত বুলি ধৰি ল'ব পাৰি। অসমীয়া কবিতাৰ ক্ৰমবিৱৰ্তনত আধুনিকতা হ'ল সময়ৰ প্ৰৱল আহ্বানস্বৰূপ। দৰাচলতে চল্লিশৰ পৰৱৰ্তী সময়ত নতুনকৈ প্ৰকাশ লাভ কৰা 'জয়ন্তী' (১৯৪৩)ৰ পাততে পৰম্পৰাত পৰিৱৰ্তনৰ শিহৰণেৰে প্ৰতিবাদী চেতনা সম্বলিত অসমীয়া কবিতাত নতুনত্বৰ প্ৰতিধ্বনি বাজি উঠিছিল। ১৯৪৩ চনৰ নবেম্বৰ মাহত প্ৰকাশ পোৱা 'জয়ন্তী'ত ভৱানন্দ দত্তই নাচিকেতা ছদ্মনামেৰে লিখা 'ৰাজপথ' নামৰ কবিতাটিৰ মাজেৰেই আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ জয়যাত্ৰা আৰম্ভ হয় যদিও সমৃদ্ধিশালী ৰূপ লাভ কৰিব পৰা নাছিল । অৱশ্যে বাস্তৱধৰ্মী পৰিধানেৰে আবৃত, বৈপ্লৱিক সমাজ-চিন্তাৰ দ্বাৰা উদ্বুদ্ধ 'জয়ন্তী'ৰ কবিতাই বিষয়লৈ অভিনৱত্বৰ সঞ্চাৰ কৰিছিল। জয়ন্তীয়ে বাস্তৱবাদআৰু প্ৰগতিবাদী চিন্তাক কাব্য-সাধনাত জীণ নিয়াৰ পৰা পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ সৃষ্টিৰে আধুনিকতাৰ দুৱাৰ মুকলি কৰি 'ৰামধেনু'ৰ কাৰণে আৰ্হি প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে। এই সময়ক ভৱানন্দ দত্ত, অমূল্য বৰুৱা, আব্দুল মালিক, হেম বৰুৱা বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য, নৱকান্ত বৰুৱা, কেশৱ মহন্ত, অজিত বৰুৱা আদিৰ দৰে কালজয়ী কবিৰ জন্ম হয়।

অসমীয়া নতুন কবিতাৰ সংশয় আৰু সন্ধানৰ কালডোখৰতে কবি হেম বৰুৱাৰ আবিৰ্ভাৱ হৈছিল। ৰমন্যাসিক কবিতাই আমুৱাই পেলোৱা অথচ এটা মনোমত নতুন পথৰ সন্ধান নোপোৱা কবি আৰু পাঠকৰ বাবে হেম বৰুৱাৰ কবিতাত আছিল নতুন দিশৰ সম্ভেদ। তেওঁৰ কবিতাত বাস্তৱৰ প্ৰতিৰূপ অতি সৰল প্ৰকাশভংগীৰে বৰ্ণনা কৰিছে। তদুপৰি প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ প্ৰয়োগ পদ্ধতিৰ প্ৰথমটো বীজ এইবোৰ কবিতাতে দেখা যায়। তাতে খোপনি লৈ পৰৱৰ্তী চাম কবিয়ে আধুনিক কবিতাৰ জয়যাত্ৰা আৰম্ভ কৰে (হাজৰিকা, ২০০৬)। হেম বৰুৱা 'জয়ন্তী' যুগৰ কবি হ'লেও তেওঁৰ কাব্যই পৰিপূৰ্ণতা লাভ কৰে 'ৰামধেনু' যুগতহে। কবি আৰু কাব্য সমালোচক নলিনীধৰ ভট্টাচাৰ্যই হেম বৰুৱাৰ কাব্য সৃষ্টি সম্পৰ্কে সঠিকভাৱে কৈছে—'তেওঁৰ কবিতাৰ বিষয়বস্তু, সামাজিক দিশ আৰু এলিয়ট আৰ্হিৰ প্ৰকৰণৰ কেৱল ঐতিহাসিক গুৰুত্বই যে আছে এনে নহয়, সামাজিক বিচাৰত কেইটামান কবিতা কালোত্তীৰ্ণ হোৱাৰ লক্ষণো আছে'। কবি হেম বৰুৱাৰ কাব্য জীৱনৰ প্ৰতি থকা গভীৰ সহানুভূতি আৰু আশাবাদৰ বলিষ্ঠ সুৰ শুনা যায়। ৰোমান্টিক বিৰোধী চিত্ৰকল্প, মিশ্ৰিত বাকভংগী আৰু মুক্তক ছন্দৰ সফল প্ৰয়োগ হেম বৰুৱাৰ কাব্য সৃষ্টিৰ মূল সম্পদ। হেম বৰুৱাৰ কবিতাত লোক-জীৱনৰ সুৰ বিয়পি আছে। সেই সমূহত জনজীৱনৰ সুখ-দুখ, হা-হুমুনিয়াহ আদিও প্ৰাঞ্জল ৰূপত প্ৰকাশিত হৈছে।

হেম বৰুৱাৰ 'মমতাৰ চিঠি' এটা কালোত্তীৰ্ণ কবিতা। 'মমতাৰ চিঠি' কবিতাটি আৰম্ভ হৈছে এজৰা পাউণ্ডৰ 'The River Merchant's Wife: a letter' কবিতাটিৰ শেষৰ শাৰীকেইটাৰ উদ্ধৃতিৰে। ইয়াৰ পৰা পোনে পোনে জানিব পাৰি কবি পাউণ্ডৰ সেই কবিতাৰ দ্বাৰা প্ৰবলভাৱে অনুপ্ৰাণিত হৈছে। কিন্তু হেম বৰুৱাৰ কবিতাৰ পাঠত 'The River Merchant's Wife' ৰ প্ৰভাৱৰ স্বত্বেও দুয়োটা কবিতাৰ তাৎপৰ্য বেলেগ। দৰাচলতে 'The River Merchant's Wife' কবিতাটো পাউণ্ডৰ নিজা কবিতা নহয়; তেওঁ অনুবাদহে কৰিছে। ইয়াৰ মুল ৰচক হ'ল প্ৰখ্যাত চীনা কবি Li Po বা Li Bai। এজৰা পাউণ্ডে অনুবাদ কৰা লি পোৰ কবিতাত সাউদৰ পত্নীৰ অবিচল প্ৰেম আৰু মনৰ অধীৰতাক পাউণ্ডে অতুলনীয় ৰূপত প্ৰকাশ কৰিছে আৰু পাউণ্ডৰ কবিতাৰ শাৰীয়ে হেম বৰুৱাক চুই গৈছে—

If you are coming down through the narrows of the river Kiang
Please let me know beforehand.
And I will come out to meet you
As far as Cho-fu-Sa.

মোৰে শপত,

তুমি যিদিনা উলটি আহিবা, মোক আগতীয়াকৈ জনাবাঁ
দেই। মই ভোগদৈয়েদি ভটিয়াই গৈ বুঢ়া লুইতৰ
বুকুৰ পৰা তোমাক ৰিঙিয়াই মাতিম,— তুমি যিদিনা
উলটি আহিবা।মোক আগতীয়াকৈ জনাবলৈ নেপাহৰিবাঁ।

উপৰোক্ত শাৰীকেইটাৰ হুবহু মিল থাকিলেও কবিতাৰ বাকী অংশত কবিৰ স্বকীয়তা লক্ষণীয়। মুল চীনা কবিতাত ক'তো স্বামীৰ লগত বিচ্ছেদৰ যন্ত্ৰণাৰ কথা প্ৰকাশ কৰা নাই, নিজৰ নিঃসংগতা আৰু স্বামীৰ প্ৰতি থকা অনুৰাগৰ কথাহে কৈছে; তাকো পোনপটীয়া নহয়। অৱশ্যে চীনা কবিতাটোও চিঠিৰ দৰে উপস্থাপন কৰা হৈছে। হেম বৰুৱাৰ 'মমতাৰ চিঠি'ও চিঠিৰ দৰে আৰম্ভ কৰা হৈছে —

'মৰমৰ ঃ
এয়া মম এডাল জলাই লৈছোঁ। আজি বহু দিনৰ
মূৰত তোমালৈ চিঠি লেখোঁ বুলি।'

কিন্তু কবিতাটোৰ বাকী অংশৰ থলুৱা পৰশ মন কৰিবলগীয়া—

মই তোমালোকৰ ঘৰলৈ নকৈ আহিবৰ দিনা, আকাশৰ
মেঘৰ মোহনাত হালধীয়া জোনটো নাওখন হৈ আমাকযে
ৰিঙিয়াই মাতিছিল তৰাৰ দেশলৈ।
মই লোৱা কঁকালৰ ৰঙা ৰিহাখনলৈ তুমি বাৰু তেনেকৈ
কিয় একেথৰে চাইছিলা ?

ইয়াত মমতাৰ পাৰিবাৰিক জীৱনৰ আৰম্ভনিৰ বতৰা সুন্দৰকৈ পোৱা গৈছে। ন কইনা হৈ নিজৰ ঘৰৰ পৰা স্বামী গৃহলৈ অহা এগৰাকী তেনেই সাধাৰণ গ্ৰাম্যাঞ্চলৰ সহজ-সৰল ছোৱালীৰ ৰূপত মমতাক অংকন কৰা হৈছে, যিয়ে দাম্পত্য জীৱনৰ এবুকু কল্পনা লৈ নিজ ঘৰ ত্যাগ কৰি স্বামী গৃহলৈ আহিছিল—

সেইদিনা মন-সাগৰত মোৰ এৰি অহা আৰু
আহি পোৱা অলেখ ঢউৰ কঁপনি জাগিছিল ।তোমাৰ জানো
এইবোৰ কথা মনত নাই ?

এই শাৰীবোৰত মমতাৰ কথা-বাৰ্তা, পিন্ধন-উৰন, আশা-আকাংশা সকলোতে অসমৰ গাঁৱৰ সততে দেখা এগৰাকী নৱবিবাহিতা কইনাৰ মনৰ ভাৱ প্ৰকাশিত হৈছে । কবিতাটোত যে কেৱল এগৰাকী নাৰীৰ মনৰ ভাৱেই প্ৰকাশিত হৈছিল তেনে নহয়; বৰং অসমীয়া পৰিয়ালৰ সংস্কাৰো জিলিকি আছে—

'আমাৰ দেউতাই যে চিঠিত লিখিছিল ঃ "আই তই নতুন
ঘৰত হাঁহি-মাতি থাকিবি।"

পৰিয়ালকেন্দ্ৰিক সংস্কাৰ, সামাজিক আচৰণ আদিৰ লগতে জাতীয় উৎসৱ পৰম্পৰাৰো উল্লিখন মন কৰিবলগীয়া—

' পুনঃ-এইবাৰ বুজিছা, মাঘৰ বিহুৰ মেজিৰ জুইকুৰা বৰ
ৰঙাকৈ জলিছিল।'

অসমৰ পৰম্পৰা লোকসাংস্কৃতিক পৰশৰ লগতে ভাৰতীয় নীতি-আদৰ্শ ফুটি উঠিছে—

(কেতিয়াবা মোৰযে ইমান খং উঠে,—
তুমি নাই নহয়, সে কাৰণে।)

দৰাচলতে হেম বৰুৱাৰ কবিতাটো পঢ়িলে এনে লাগে মমতাৰ স্বামী প্ৰবাসলৈ যোৱা নাই বৰং চিৰদিনৰ বাবে তাইক এৰি অজান দেশলৈ গুচি গৈছে। কবিতাটিত মমতাই পিন্ধা বগা সাজযোৰেই তাই স্বামীহাৰা হোৱাৰ প্ৰমাণ বহন কৰিছে। বিধবা নাৰীৰ কৰুণ বিননি ভাঁহি থকা 'মমতাৰ চিঠি' বৰুৱাৰ সৰ্বসময়ৰ সৰ্বশ্ৰেষ্ঠ কবিতা। কবিতাটিত ব্যৱহৃত 'কাতিৰ কুঁৱলী, পদুলিৰ তল-সৰা শেৱালীবোৰ, কঁকালৰ ৰঙা ৰিহাখন, আই, পুৰাণৰ সাধু, জেঠমহীয়া দেউতাৰ বছেৰেকীয়া, ডালিম গুটি যেন দাঁত, বগা সাজ, ভোগদৈয়েদি ভটীয়াই গৈ বুঢ়া লুইতৰ, ৰিঙিয়াই মাতিম, মাঘৰ বিহুৰ মেজিৰ জুই, আইতাৰ ক'লী ছাগলী আদি লোকজীৱনৰ পৰা বুটলি লোৱা সমলে কবিতাটিকঅসমৰ জাতীয় আবেগৰ লগত একাত্মীয়তা স্থাপন কৰাৰ লগতে জনমানসৰ অতি আপোন হৈ পৰিছে।

হেম বৰুৱাৰ কবিতাত বিহুগীত, বনগীত আদিৰ প্ৰাণ চঞ্চলা কৰা সুৰ নিহিত হৈ থকা দেখা যায়। কবিৰ দৃষ্টিত আধুনিকতাই মানুহক বাস্তৱৰ লগত মোকাবিলা কৰিবলৈ শিকাইছে যদিও সৰল মন তথা সততাক হত্যা কৰিবলৈ শিকোৱা নাই। প্ৰেমৰ প্ৰবল শক্তিয়ে সকলো কঠিনতাক নিঃশেষ কৰিব পাৰে। অশুভ শক্তি যিমানেই শক্তিশালী নহওঁক কিয়, সত্যৰ ওচৰত তাৰ পৰাজয় নিশ্চিত। তেনে এক সুস্থ চিন্তা আৰু গভীৰ বিশ্বাসৰ বাবেই সৃষ্টি হৈছিল—

'তোমাৰ মৰমৰ চেনাই ঐ
দিখৌ নৈ এৰিব পাৰোঁ মই
আৰু বহুত নৈ এৰিব পাৰোঁ ।

কবিতা কেইশাৰীৰ মাজত বিহুগীতৰ চিনাকী সুৰ বাজি আছে -'দিখৌ নৈ এৰিব পাৰোঁ মই লাহৰি/জাঁজী নৈ এৰিব

পাৰোঁ/তোমাক ঐ লাহৰি এৰিব নোৱাৰোঁ/নেখায়ো থাকিব পাৰোঁ। একেটা কবিতাতে আশীৰ্বাদৰ ৰূপটো অৱতাৰণা কৰি কবিয়ে লিখিছে—

'তুমি কুশলে থাকা, সোণ
মূৰৰ চুলি চিঙি আশীৰ্বাদ কৰিছোঁ'

বহাগৰ বিহুৰ সময়ত অসমৰ আকাশ-বতাহ মুখৰিত হৈ থাকে- এবাতি নহৰু/এবাতি পনৰু/এবাতি খুতুৰা শাক/মোৰৰ চুলি চিঙি আশীৰ্বাদ কৰিছোঁ/গৃহস্থ কুশলে থাক।

আধুনিক কবিগৰাকীয়ে সেই দশকৰ ক্ষয়িষ্ণু সমাজ, ক্লান্তি, অৱসাদ, সংশয়, অস্থিৰ মানুহৰ বুকুৰ বতৰা দকৈ উপলব্ধি কৰিব পাৰিছিল। তেনে এক জৰ্জৰ পৰিৱেশতো তেওঁ লোকসমাজৰ গৰ্ভলৈ উভটি চাইছে। লোকসমাজৰ পৰা বুটলি অনা তেওঁৰ শব্দই কবিতাৰ বিষয়বস্তু আৰু অনুভূতি প্ৰকাশত এক সুকীয়া ৰূপ লাভ কৰিছে, য'ত কৰুণতাৰ লগতে বাজি আছে সম্ভাৱনাৰ অজেয় গান—

'কালিদাস, তুমি কোন
অলকাৰ পলাতক কবি ? ডাৱৰ দেখি উন্মাদী ?
তোমাৰ কাব্যবেদীত আমাৰ জীৱন অৰ্চনা
সৰি পৰা মদাৰৰ ফুল
(... গুৰুতো নেলাগে, গোসাইতো নেলাগে
থাকে তল ভৰি সৰি ...)'

যুদ্ধবিধ্বস্ত সামাজিক পৰিৱেশত মানুহৰ সুকুমাৰ অনুভূতিৰ মূল্যায়ন কৰিবলৈ গৈয়েই আধুনিক কবিগৰাকীয়ে অভুক্তা, বিগত যৌৱনৰ প্ৰতি কটাক্ষ কৰিয়েই বিহুগীতৰ 'কেলৈ ফুলিলি ৰূপহী মদাৰ ঐ/কেলৈ পেলালি কলি/গুৰুতো নেলাগে, ভকতত নেলাগে/থাক তল ভৰি সৰি' কলিটি ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ঠিক একেদৰে বৰুৱাৰ 'যাত্ৰাৰ শেষ নাই' নামৰ বহু জনপ্ৰিয় কবিতাটোত 'তোমালৈ চাওঁতে জপনা দেওঁতে/বিন্ধিলে অঘৈয়া হুলে' আৰু 'বহো তাঁতৰ পাটত চকু আলিবাটত/মাকো সৰি সৰি পৰে' দুটাকৈ বিহুগীতৰ কলি প্ৰতিধ্বনিত হৈছে। কবিতাটিত কবিয়ে আহিনৰ ভৰ দুপৰীয়া এহাল কৃষক দম্পত্তিৰ উলাহত থৌকি-বাথৌ হিয়াৰ আবেগক প্ৰকাশ কৰিছে—

ভৰদুপৰীয়া ভদাইৰ আগচোতালত
দোৰপতি থৰক বৰক, মাকো সৰি সৰি পৰে

যদিও আধুনিক যুগে মানুহক নগৰমুখী কৰিছিল, তথাপি যেন অসমৰ গ্ৰাম্যাঞ্চলৰ পৰিৱেশলৈ কোনো পৰিৱৰ্তন অহা নাছিল। চৌপাশৰ সেউজীয়াৰ মাজত এটি সুন্দৰ জীৱনে যেন তেতিয়াও সকলোকে আকৰ্ষণ কৰি আছিল। সেয়ে হয়তো কবিয়ে লিখিছিল—

নতুন পুৱাত, কাকিনী তামোলৰ শ্যামলীকা
ধানে আমাৰ পথাৰ শুৱাব।

এই কবিতাটিত 'আগবাৰী শুৱনি কাকিনী তামোল/পাছবাৰী শুৱনি পাণ' লোকগীতৰ পৰশ স্পষ্ট। অসমীয়াৰ গৃহস্থালীত তামোল-পাণ, গাই-দমৰা, চোতাল-ভঁৰাল, তাঁত শাল আদিবোৰ এৰাব নোৱাৰা অংগ। একেদৰে ধানেৰে শুৱনি পথাৰ আৰু গছে-ফলে শুৱনি বাৰীও লোকজীৱনৰ অংশবিশেষ। কবিয়ে নিজে পাৰ কৰা শৈশৱৰ দিনৰ ছবি আৰু অসমীয়া অনুভূতিক আধুনিকতাৰ মাজেৰে অতি সংযতভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে। দৰাচলতে কোনো লেখকেই ইচ্ছাকৃতভাৱে লোক-সাংস্কৃতিক সমল ব্যৱহাৰ নকৰে। কবিৰ প্ৰাণত সঞ্চিত হৈ থকা অভিজ্ঞতাবোৰেহে পৰিৱেশ পৰিস্থিতিৰ ব্যাখ্যা দাঙি ধৰিবলৈ যাওঁতেই পাৰ ভাঙি বৈ আহে। ফলত এনে কবিতাই কোনো এটা দিশক পোহৰাই তোলাৰ উপৰিও জাতি আৰু সমাজৰ প্ৰহৰী হৈ পৰে।

যান্ত্ৰিক সভ্যতাই আধুনিক যুগত পৰম্পৰাগত আবেগ, বিশ্বাস, মূল্যবোধ আদিক থানবান কৰি পেলোৱাৰ উপক্ৰম হৈছিল। সেয়েহে সচেতন জনসমাজত অস্থিৰতা আৰু শূণ্যতা শিপাবলৈ ধৰে। এনে পৰিস্থিতিত আধুনিক যুগৰ সংবেদনশীল কবিকূলৰ অন্তৰ জগত হাহাকাৰ কৰি পূৰ্ণতাৰ সন্ধানত শব্দৰ নিজৰা বোৱাবলৈ বাধ্য হৈ পৰে। তেনে এক চিন্তাৰ ফচল 'ক্ৰমশঃ' নামৰ কবিতাটো। আধুনিক যুগৰ অন্যতম শ্ৰেষ্ঠ কবি নবকান্ত বৰুৱাই লোকসাহিত্যৰ সমলেৰে অংকন কৰিছে আধুনিক সমাজৰ জৰ্জৰতা। উল্লিখিত কবিতাটিত অসমীয়া জনজীৱনৰ অতি জনপ্ৰিয় সাধুকথা 'বাঘ আৰু কেকোঁৱা'ৰ বাৰী কোঁৱৰৰ চৰিত্ৰ, 'তেজীমলা সাধু'ৰ তেজীমলা চৰিত্ৰ, 'চিলনী জীয়েকৰ সাধু'ৰ চিলনীৰ জী, কমলা কুঁৱৰী, জলকোঁৱৰ আদি চৰিত্ৰক আদৰি আনিছে এনেদৰে—

ইয়াৰে ৰজাৰে, বাৰীকোঁৱৰৰ সাধুকথা
আমি যুগ যুগ ধৰি নতুন গঢ়েৰে গঢ়িছো
তেজীমলা মৰি ফুলকলি হয়

ৰাজকোঁৱৰৰ সোণৰ কাঠিত
পাতালপুৰীৰ ৰাজকুঁৱৰীৰ টোপনি ভাঙে
ওপৰত কাৰ পাখিৰ শব্দ- কলৰ ড্ৰেগন
তাঁতৰ শালত চিলনীৰ জী চক খাই উঠে ।

আধুনিক বণিকী সভ্যতাই সৃষ্টি কৰা শোষণৰ জীয়া ছবি অংকিত হৈছে। একেদৰে পানীৰ অভাৱত মৃতপ্ৰায় হৈ পৰা প্ৰজাক ৰক্ষা কৰিবলৈ ৰজাই নিজ ভাৰ্য্যা কমলা কুঁৱৰীক কিদৰে পুখুৰী খান্দি তাত উছৰ্গা কৰিছিল সেই কাহিনীৰ গইণা লৈ কবিয়ে লিখিছে—কমলা কুঁৱৰী কমলা কুঁৱৰী

জলকোঁৱৰৰ সপোন মিছানে?
পানী ক'ত?
পানী কিমান হ'ল
স্বৰ্গদেউ নাই সময়ো যে নাই
আমাকেই কোৱা
পানী বা কিমানে হ'ল!
কমলা কুঁৱৰী বুৰি গ'ল।
কমলা কুঁৱৰী বুৰি গ'ল আৰু
ইতিহাস জুৰ পৰি ৰ'ল মাথো।

কবিৰ দৃষ্টিত আধুনিক যুগৰ সভ্যতাই মানুহৰ জীৱনৰ পৰা প্ৰাণৰস শুহি লৈ গৈছে; আধুনিক জনজীৱনক মাথো দিছে এখন শুকান-মৰুভূমি আৰু কাঁইটীয়া পৃথিৱী। কিদৰে আনৰ অভিসন্ধিত পৰি কমলা কুঁৱৰীয়ে নিৰ্মম মৃত্যুক সাৱতিব লগীয়া হ'ল সেই প্ৰসংগৰে আজিৰ বণিকী সভ্যতাই দিয়া মানৱীয়তাৰ অপমৃত্যুৰ কথাকে কোৱা হৈছে। ঈৰ্ষা, ষড়যন্ত্ৰ আদিবোৰ তেনেই সাধাৰণ হৈ পৰিল। মানুহৰ সৰলতাবোধ যেন ক'ৰবাত হেৰাই যাবলৈ ধৰিলে। কবিগৰাকীৰ কবিতাত ক'ৰবাত যদি 'তেজীমলাৰ সাধু' আন ক'ৰবাত 'ফুলকোঁৱৰ, মণি কোঁৱৰৰ আৰু কৰবাত একেবাৰে নিভাজ লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ। লোকসমাজৰ প্ৰতি থকা অসীম প্ৰীতিৰ বাবেই কবিৰ ভাৱবোৰে বাৰে বাৰে লোকভাষাৰ আশ্ৰয় লৈছে। যেনে—

বাপা, তুমি অন্ধ কামসিকতাৰ দৰে কথা কৈছা দে'
গামছাত আঁচুফুল লাগবোই ।নহলি মৰা ঢাকা
মৰা ঢাকা কাপুৰহে/হ'ব ।

বৰুৱাৰ 'ক্ষেত্ৰজ' নামৰ এই কবিতাটিত নামনি অসমত ব্যৱহৃত লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ মনকৰিবলগীয়া ।

আধুনিক কবিতা কাননৰ এটি চিনাকী নাম অজিত বৰুৱা। কবি বৰুৱাৰ বিখ্যাত কবিতা 'জেংৰাই ১৯৬৩'ত বিহুগীত সুৰীয়া আবেদন এটাই কবিতাটোৰ অন্তৰ্গাথনি তৈয়াৰ কৰিছে। কবিতাটিত যেন ক'ব নোৱাৰাকৈয়ে কবিৰ আজন্ম শুৱনি গাওঁখনে ভুমুকি মাৰিছে। কবিতাটিত ব্যৱহৃত শব্দ, উপমাবোৰ- 'ভাতৃ অনল - এহিসে ক্ষণত ... হৈবা কৰুণাময় ...।' আৰু 'কিনো জুয়ে লগা চকু ... ... ভাবি চালে—লিলিমাই এই জীৱনত একো নাই ... ...'। সোঁৱণশিৰীৰ চৰ, ম'হৰ শিঙৰ ঘণ্টা, নাৱৰ টিঙত, জলকুঁৱৰীৰ গীত,গঙা-চিলনী আদিয়ে কবিতাটিত বিখ্যাত কৰি তোলাই নহয় লোকজীৱনৰ কাষ চপাই নিছে।

লোকমন এটাৰ অধিকাৰী হোৱাৰ বাবেই লোকচিত্ৰই শব্দৰ শৰীৰি ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিছে বীৰেশ্বৰ বৰুৱাৰ কবিতাত—

মুদৈ তোমাৰ ধেমালী এৰা
সিপাৰত মোৰ এৰাল বাথান
ইপাৰত মই অভুক্ত পৰবাসী

বৰুৱাৰ আন এটা কবিতাত অনুৰণিত হৈছে, 'কাম চৰাইৰ ৰঙা ঠোঁট/তাতে দিলে সেন্দুৰ ফোঁট/পিতাদেউ পিতাদেউ দূৰলৈ নিদিবি মোক' বোলা জনপ্ৰিয় বিয়াগীতৰ সুৰ আৰু ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰি কবিয়ে লিখিছে—

'পিতাদেউ পিতাদেউ, দূৰলৈ নিদিবি মোক
হে মোৰ দুহিতা, তোমাৰ আঙুলিয়ে যেতিয়া হালধি
বঢ়োঁতে পটা গুটিত চেপা খায়, মই কিদৰে অনুভৱ কৰোঁ
তোমাৰ অন্তঃকৰণে যেতিয়া সজাৰ
চৰাইটিৰ বাবে, নিৰবে কান্দে, মই কিদৰে অনুভৱ কৰোঁ
সেই কান্দোন ।

আংগিক আৰু বিষয়ৰ অভিনৱত্বৰে নীলমণি ফুকনে খেল-ধেমালিৰ গীত এটিৰ আধাৰত লিখিছে—

ফুলবাৰীলৈ যাম
ফুলবাৰীত তোৰ কোন আছে
টুনি চৰাইবোৰ আছে
কি কৰিবিগৈ তেনে তাত
পথাৰলৈ যাম

নীলমণি ফুকনৰ সৰ্বহ লোক-মন এটাই ক্ৰিয়া কৰি থকাৰ উমান পোৱা যায় আৰু তাতেই তেওঁৰ শিল্পসাধনা। লোককল্প দৃষ্টিও তেওঁৰ অন্য এক অভিনৱ প্ৰকাশ। অসমৰ চহা জীৱনৰ লগত সংপৃক্ত হৈ লোকগাঁথা, লোককথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, কিম্বদন্তীক মন্থন কৰি তেওঁ আধুনিক কাব্যশৰীৰ নিৰ্মাণ কৰিছে,

যিদৰে কৰিছিল স্পেনিছ কবি গাৰ্থিয়া লৰকাই। লৰকাক এবাৰ সোধা হৈছিল —'কবিকূলৰ পথ তোমাক কোনে দেখুৱালে? উত্তৰত লৰকাই কৈছে — নৈ, নিজৰা আৰু প্ৰাচীন গাঁথা।

নিজ দেশৰ লোকসংস্কৃতিৰ লগত গঢ়ি উঠা আজন্ম সম্পৰ্কই কবি মানসত চিত্ৰ হৈ ৰয়। ফুকনৰ কবিতাত 'কৃষ্ণাইৰ মূৰৰে বকুল ফুল এপাহি/নিয়ৰ পাই মুকলি হ'ল ঐ গোবিন্দাই ৰাম' হুচৰী গীত ফাঁকিৰ সংস্পৰ্শত বিভিন্ন সময়ত ইংগিত স্পষ্ট হৈছে কৃষ্ণ জন্মৰ সংকেতত 'বকুলে মেলক পাহি কৃষ্ণ উপজিব আজি ৰাতি'। ইয়াৰ উপৰিও— দুয়োখন দুৱাৰ মেলি থবি/দুয়োটা বাতিত সজাই থবি/দুবাতি মঙহ হালধি সানি/দুয়োটা চকুত জ্বলাই থবি সাতপুৰুষীয়া চকু পানী। আমাৰ হুচৰি গীতত থকা- 'এটা বাতিত নহৰু/এটা বাতিত পনৰু/এটা বাতিত খুতৰা শাক/মুৰৰ চুলি চিঙি আশীৰ্বাদ কৰিছোঁ/গৃহস্থ কুশলে থাক' বুলি ৰাইজে গৃহস্থক দিয়া আশীৰ্বাদ ফাঁকিৰ অৱতাৰণা মনকৰিবলগীয়া। ফুকনৰ কবিতাত লোক-সাংস্কৃতিক সমল ভৰপূৰ ভাৱে উপলব্ধ। টোকাৰী গীতৰ ছন্দ, নিচুকনি গীত, গীতিময় বাকভংগী, নানান পৌৰাণিক আখ্যানৰ চৰিত্ৰ, ছন্দৰীতি, ভাবভাষা আদি বিষয়বস্তুৰ লগত সুন্দৰভাৱে ৰজিতা খাই আছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

আচাৰ্য, প্ৰদীপ (২০০৬); আধুনিক অসমীয়া কবিতাত প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্প ঃ প্ৰয়োগ আৰু সিদ্ধি; অৰ্চনা পূজাৰী (সম্পাঃ), অসমীয়া কবিতাৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ (পৃঃ ১৮১-১৮৬)ত প্ৰকাশিত; গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন

আহমেদ, এম. কামালুদ্দিন (২০১৪); সাহিত্যৰ অভিব্যক্তি; গুৱাহাটী ঃ বান্ধৱ

গগৈ, মৃণাল কুমাৰ (২০১৩); একবিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত অসমীয়া কবিতাৰ স্বৰূপ-বৈশিষ্ট্য; অৰবিন্দ ৰাজখোৱা (সম্পাঃ), অসমীয়া কাব্য পৰিক্ৰমা (পৃঃ ৩৪৬-৩৫৫)ত প্ৰকাশিত; লখিমপুৰ ঃ দত্ত প্ৰকাশন

গোস্বামী, মালিনী আৰু আহমেদ, কামালুদ্দিন (সম্পাঃ) (২০০৯); আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ তিনিটা স্তৰ ; গুৱাহাটী ঃ অসমীয়া বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়

ঠাকুৰ, নগেন (২০০৬); সমাজ বাস্তৱতাৰ পটভূমিত অসমীয়া কবিতাৰ শেহতীয়া ধাৰা; অৰ্চনা পূজাৰী (সম্পাঃ), অসমীয়া কবিতাৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ (পৃঃ ১৩২-১৩৮)ত প্ৰকাশিত । গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

ৰংমিলিৰ হাঁহি ঃ এক পৰ্যালোচনা

ড° অনু ৰাণী দেৱী

সহকাৰী অধ্যাপিকা
অসমীয়া বিভাগ
বি বৰুৱা কলেজ, গুৱাহাটী-৭
৮৮২২৪৪২৫১০
anurani1975@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

বিভিন্ন নৃগোষ্ঠীয় প্ৰজাতিৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীয়ে উত্তৰ-পূব ভাৰতত বসবাস কৰি আহিছে। এই জনগোষ্ঠীসমূহৰ কিছুমানে ভৈয়ামত আৰু কিছুমানে পাহাৰত বসবাস কৰে। বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতি তথা উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলীয় ঐক্য-সংহতি গঠনত এই লোকসকলৰ যথেষ্ঠ অৰিহণা আছে। জনগোষ্ঠীয় মূলৰ এজন অন্যতম লিখক 'ৰংমিলিৰ হাঁহি'ৰ স্ৰষ্টা ৰং বং তেৰাং। কাৰবি জাতিৰ গৌৰৱ ৰং বং তেৰাঙে মাতৃভাষা কাৰবিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ ৰচনা কৰাৰ উপৰিও অসমীয়াতো ভালেমান গল্প-উপন্যাস ৰচনা কৰিছে। তেওঁৰ প্ৰায়বোৰ গল্প-উপন্যাসৰ মাজেদি কাৰবি সমাজৰ চিত্ৰ ফুটি উঠিছে। তেখেতৰ বিখ্যাত উপন্যাস 'ৰংমিলিৰ হাঁহি'য়ে ইতিমধ্যে বিভিন্ন বঁটা পাবলৈ সক্ষম হৈছে। বৰণ্যে সাহিত্যিক ৰং বং তেৰাঙৰ প্ৰতিখন গ্ৰন্থই অসমীয়া লোকক পোহৰৰ বাট দেখুৱাইছে বুলি ক'ব পাৰি। এইজনা সাহিত্যিকে অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতি পদলৈ নিৰ্বাচিত হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

ৰং বং তেৰাং, উপন্যাস, কাৰবি, জনজাতি

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনজাতিৰ জীৱন ধাৰণৰ প্ৰণালী বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ আৰু স্বকীয়। এই বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ বিভিন্ন জনজাতিৰ জীৱন চিন্তাৰ বিচিত্ৰতাক উপন্যাসে সামৰি ল'বৰ চেষ্টা কৰিছে। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ কেইটামান নিৰ্দিষ্ট জনজাতিৰ জীৱনৰ পটভূমিতহে গল্প-উপন্যাসৰ সৃষ্টি হৈছে। ৰজনীকান্ত বৰদলৈদেৰে যি সময়ত মিচিং জনজীৱনক লৈ 'মিৰি জীয়ৰী' ৰচনা কৰিছিল, সেই সময়ত অসমীয়া উপন্যাসৰ যাত্ৰা আৰম্ভ হৈছিলহে মাথোন। ৰজনীকান্ত বৰদলৈদেৱে দেখুৱাই দিয়া পথেৰে বিভিন্নজনে খোজ দিলে। সেইসকলৰ ভিতৰত বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা, তৰুণ চন্দ্ৰ পামেগাম, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য, অমূল্য বৰুৱা, কৈলাশ শৰ্মা, লুম্বেৰ দাই, যতীন মিপুন, স্বৰ্ণ বৰা, য়েছে দৰজে ঠংচি, জয়ন্ত ৰংপি, যাদৱ ফুকন, পৰমানন্দ ৰাজবংশী, ৰং বং তেৰাং উল্লেখনীয়। জনজাতীয় লিখকসকলৰ লগতে অজনজাতীয় বহুতো লিখকে বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ বিভিন্ন জনজাতিৰ জীৱন আৰু সামাজিক পটভূমিত উপন্যাস ৰচনা কৰিছে।

০.২ বিষয় অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

জনজাতীয় জীৱন ভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাসৰ বিচাৰ বিশ্লেষণ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ।

প্ৰখ্যাত লেখক ৰং বং তেৰাঙৰ 'ৰং মিলিৰ হাঁহি' উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা জনজাতীয় জীৱন, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, সুখ-দুখ, প্ৰেম-প্ৰণয়, সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশ, ভাষা আদি বিচাৰ কৰি উপন্যাসখনৰ প্ৰতিচ্ছবি বৰ্তমান সমাজক অৱগত কৰোৱাই হৈছে অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

আলোচনা পত্ৰখনৰ পদ্ধতি হিচাবে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হ'ব আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস মুখ্য সমল হিচাবে ৰং বং তেৰাঙৰ 'ৰং মিলিৰ হাঁহি' উপন্যাসখন, গৌণ সমল হিচাবে উপন্যাসখনৰ আলোচনা সম্বলিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, আলোচনী আদিত প্ৰকাশিত বিভিন্ন প্ৰবন্ধৰ সহায় লোৱা হ'ব।

১.০০ উপন্যাসখনৰ বিষয়বস্তু ঃ

বিংশ শতিকাৰ প্ৰাকস্বাধীনতাকালীন সময়ছোৱাত সহজ-সৰল কাৰবি মানুহখিনিলৈ অহা পৰিৱৰ্তন, কাৰবি পাহাৰৰ বিভিন্ন ৰং, বিভিন্ন সময় আৰু বিভিন্ন বাতাবৰণ। ৰং বং তেৰাঙে নিজৰ সৃষ্টিৰ কঠিয়াতলী হিচাবে ব্যৱহাৰ কৰিছে। 'ৰংমিলিৰ হাঁহি'ৰ কাহিনীভাগ উপন্যাসিকে আগবঢ়াই নিছে ৰংমিলি গাঁৱৰ ছাৰবাছা অৰ্থাৎ গাঁওবুঢ়া ছাৰইক তেৰাঙৰ মাজেদি। কাৰবি জাতিৰ অতি মৰমৰ বৰপানী কাৰবি লাংপিৰ পাৰৰ ৰংমিলি গাঁৱক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই উপন্যাসখনৰ কাহিনীটো গঢ় লৈ উঠিছে। ন-পুৰণিৰ সংঘাতেই উপন্যাসখনৰ উপজীব্য। ইংৰাজসকল অসমলৈ শাসন কৰিবলৈ অহাৰ পিছতেই খৃষ্টধৰ্ম প্ৰচাৰৰ বাবে বিংশ শতিকাত কাৰবি আংলঙলৈ মিছনেৰীসকল আহে। তেওঁলোকে কাৰবি আংলঙত গীৰ্জাঘৰ এটি নিৰ্মাণ কৰি ল'ৰা-ছোৱালীখিনিক শিক্ষিত কৰিবলৈ বিচাৰিছিল। এচাম কাৰবি লোকে ইয়াৰ বিৰোধিতা কৰিলে আৰু আন এচামে অতি সহজে মানি ল'লে, নিজৰ ল'ৰা-ছোৱালীৰ স্কুলত পঢ়ুৱালে। আধুনিক শিক্ষাৰে শিক্ষিত এচাম কাৰবি লোকে কাৰবি আংলঙত সুকীয়া দৰবাৰ গঠন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে আৰু তেওঁলোকক সহায়ৰ হাত আগবঢ়ায় অনা কাৰবি কিছুমান লোকে।

উপন্যাসখনৰ নায়ক ছাৰইক তেৰাঙে সমাজৰ পৰম্পৰাগত নিয়মক সন্মান জনাইছে আনহাতে সমাজলৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহ তেওঁ সম্পূৰ্ণৰূপে মানি ল'ৰ পৰা নাই যদিও উপেক্ষাও কৰা নাই। তেওঁ নিজে খৃষ্ট ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা নাই, কিন্তু খৃষ্ট ধৰ্মত দীক্ষিত হোৱা লোকক বেয়া দৃষ্টিৰে চোৱা নাই। ছাৰইক তেৰাঙে তেওঁৰ একমাত্ৰ পুত্ৰ হেমাইৰ ভৱিষ্যতৰ কথা ভাবি তাক দেৰিকৈ হ'লেও কামপুৰত ধনেশ্বৰ মাষ্টৰৰ ঘৰত থৈ পঢ়ুৱাইছে। বিহেনৰূৰ হাৱেছিকে ছাৰইকৰ কাম-কাজবোৰ ভাল পোৱা নাছিল। সমাজলৈ নতুন সভ্যতাৰ পোহৰ আনিব খোজা সকলক তেওঁ সমাজৰ শত্ৰু হিচাবে গণ্য কৰিছে। ছাৰইকৰ পৰিৱৰ্তনকামী চিন্তাৰ বাবে তেওঁক ৰংমিলি গাঁৱৰ ছাৰবাছা পদৰ পৰা আঁতৰাবলৈ ষড়যন্ত্ৰ কৰিছিল। হাবেছিকে ভবামতে কাম হ'ল। এদিন বিচাৰ পাতি ছাৰইকক ছাৰবাছা পদৰ পৰা আঁতৰাই তেওঁ মনৰ আশা পূৰ্ণ কৰিলে। ছাৰইকৰ পিছত ছিংনত তেৰাঙ ৰংমিলিৰ ছাৰবাছা হ'ল যদিও সকলোৱে ছাৰইককে ছাৰবাছা বুলি মানি থাকিল। এই কথাটোত অপমানিত হৈ ছিংনতে ছাৰইকৰ ঘৰত জুই দিছিল যদিও ৰাইজৰ চেষ্টাত ব'ৰঘৰটো ৰক্ষা পৰিল। পিছত ছিংনত তেৰাঙে নিজৰ ভুল বুজিব পাৰি ছাৰইকৰ ওচৰত ক্ষমা প্ৰাৰ্থনা খুজিলে। বিহেনৰূৰ হাবেছিকিৰ কুকৰ্মৰ কথা গম পাই ৰজা লিন্দপে তেওঁক হাবে পদৰ পৰা ক্ষমতাচ্যুত কৰিলে। ইয়াৰ লগতে ঔপন্যাসিকে এটা সুন্দৰ প্ৰেম কাহিনী উপন্যাসখনত অংকন কৰিছে। যিটো প্ৰেম কাহিনী পাশ্চাত্য প্ৰভাৱত গঢ়ি উঠা প্ৰেমৰ কাহিনী নহয়। 'জনজাতীয় জীৱন ভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাস'ত ড° অজিৎ শইকীয়াই 'ৰংমিলিৰ হাঁহি'ৰ বিষয়ে কৰা এক মন্তব্য সমীচিনযোগ্য—"ৰংমিলিৰ হাঁহিৰ অতি উল্লেখযোগ্য দিশ হৈছে ইয়াৰ ৰচনাৰীতি আৰু ভাষা যাৰ বাবে ক্ৰমাৎ হেৰাই যাব ধৰা কাৰবি সমাজ বুৰঞ্জীৰ পৰা বুটলি অনা বিভিন্ন চিত্ৰবোৰ লেখকে ইয়াত ৰেহা লগাই গাঁথি দিব পাৰিছে। অমফু আৰু ছেং তেৰণৰ ভালপোৱা, বিহেনৰূপৰ হাবেছিক আৰু ৰংমিলিৰ ছাৰইকৰ বিভেদ ইত্যাদি হৈছে এই চিত্ৰবোৰ আঁৰি থোৱা আলম মাত্ৰ। লেখকৰ ভাষা সাৱলীল আৰু আকৰ্ষণীয়। কাৰবিসকলৰ ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন, খাদ্যভাস, ঘৰ-দুৱাৰ, গীত-মাত, পাহাৰী প্ৰকৃতি আদিৰ যথাযথ চিত্ৰ ফুটাই তুলিবলৈ লিখকে যত্নৰ ত্ৰুটি কৰা নাই. উপন্যাসৰ মূল ঘটনাৱলীৰ লগতে আনুষাংগিক সকলো কথাকে লেখকে বেছ আন্তৰিকতাৰে ৰূপায়ণ কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে।"[১]

১.০১ উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰ ঃ

উপন্যাসখনৰ অন্যতম উপাদান চৰিত্ৰ। উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকে প্ৰায়বোৰ চৰিত্ৰ নিজৰ সমাজৰ পৰা বুটলি আনিছে। 'ৰংমিলিৰ হাঁহি'ৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ হিচাবে ছাৰবাছা ছাৰইক তেৰাঙৰ নাম নামকে প্ৰথমতে ল'ব পাৰি। কাৰবি সমাজৰ সকলো নীতি-নিয়ম ৰক্ষা কৰি যুগৰ লগত সমানে

খোজ মিলাই যোৱা ছাৰইক তেৰাঙক আধুনিক সমাজৰ সচেতন প্ৰতিনিধি হিচাবে ঔপন্যাসিকে অংকন কৰিছে। তেওঁ নিজেই অশিক্ষিত যদিও নতুন চাম ল'ৰা-ছোৱালীৰ বাবে এখন স্কুল খোলাৰ কথা চিন্তা কৰিছে। এই কথা হাবেছিকক কওঁতে হাবেছিকে তীব্ৰ প্ৰতিবাদ জনাইছে। খৃষ্ট ধৰ্মত দীক্ষিত লৰেন্সৰ পৰামৰ্শ মতে হেমাইক কামপুৰত পঢ়িবলৈ পঠিয়াইছে। হয়তো ছাৰইকৰ এনে উদাৰতা কাৰবি সমাজৰ মংগল। ঝুম খেতিয়ে গাঁৱৰ মানুহখিনিৰ অভাৱ পূৰণ কৰিব নোৱাৰাত গাঁৱৰ মুৰব্বী হিচাবে ছাৰইকে পানী খেতি কৰাৰ কথা ৰাইজৰ লগত আলোচনা কৰিছে। কিন্তু পানীখেতিৰ বাবে থকা মাটিখিনি হাবেছিকে নেপালীক বেছি দিয়া বুলি গম পোৱাত কথাটো সিমানতে থাকিল। জিৰছং বা ডেকাচাঙৰ দৰে পুৰণি অনুষ্ঠান এটা জীয়াই ৰখাটো অতি কষ্টকৰ বুলি ছাৰইকে উপলব্ধি কৰিছে—"সময়ে নিজে নিয়মবোৰ সলাব। ল'ৰা-ছোৱালীয়ে স্কুলত নপঢ়িলেও জিৰকেদাম নোহোৱা হ'বই।"[২]

গাঁওখনৰ মঙ্গলৰ বাবে ছাৰইকে চ'জুন পূজা, হাচ্ছা-কেকন নৃত্য আদি অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰিছে। মানুহখিনিক বনৰীয়া হাতীৰ আক্ৰমণৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ নগাঁৱৰ পৰা বন্দুক কিনি আনিছে। কাৰবি আংলঙত সুকীয়া দৰবাৰ গঠন হোৱাত তেওঁ আনন্দিত হৈছে। সহজ-সৰল ছাৰইক তেৰাং হাবেছিকৰ ষড়যন্ত্ৰৰ বলি হৈও কোনো প্ৰতিবাদ কৰা নাই, বৰং ছিংনত তেৰাঙক তেওঁ ক্ষমা কৰি দিছে। গাঁওত কিবা কাজিয়া হ'ব বুলি ভাবি তেওঁ ছোৱালী অমফুক ৰংমান্দু গাঁৱলৈ বিয়া দিছে। চৰিত্ৰটোৰ ক্ষেত্ৰত মনকৰিবলগীয়া কথাটো হ'ল যে ছাৰইকে গাঁৱৰ বিভিন্ন সমস্যাসমূহত গুৰুত্ব থিকে দিছেই কিন্তু সমস্যাসমূহ সমাধানৰ পদক্ষেপ ল'ব পৰা নাই। তেওঁ ভাবিছে সমাজখনত নিজে নিজে নতুন সভ্যতাৰ পোহৰ পৰিব আৰু অন্ধকাৰ আঁতৰি যাব। সংস্কাৰপন্থী ছাৰইকক প্ৰত্যেকটো কাম-কাজত বাধা প্ৰয়োগ কৰি আহিছে প্ৰাচীন পৰম্পৰাক সাৰটি থকা হাবেছিকহঁতৰ দৰে এচাম লোকে। যিয়েই নহওঁক ছাৰইক তেৰাং পৰম্পৰাগত কু-সংস্কাৰ আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ পৰা ওলাই অহা এক ব্যতিক্ৰমী চৰিত্ৰ।

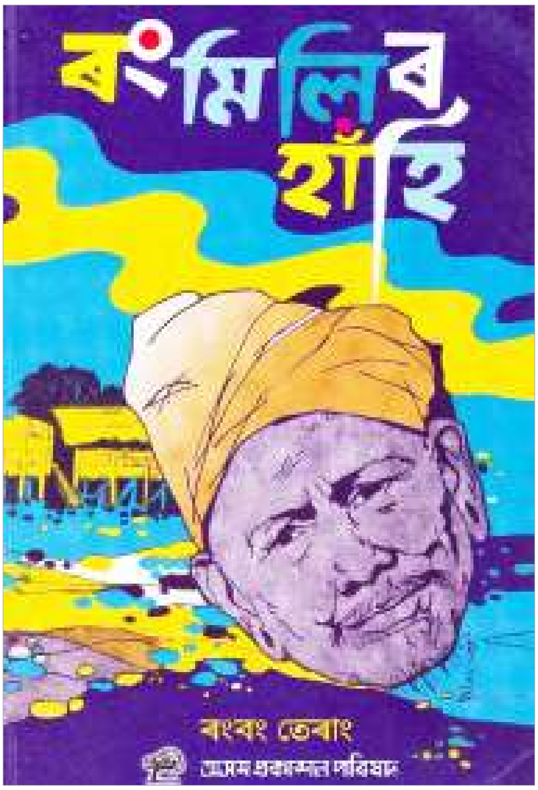

ছাৰইকৰ বিপৰীতে চৰিত্ৰ হিচাবে নাম ল'ব পাৰি হাবেছিকৰ। ক্ষমতা পাই অত্যাচাৰী হৈ উঠা এই চৰিত্ৰটোৱে উপন্যাসখনত যেনেদৰে সংঘাতৰ সৃষ্টি কৰিছে, তেনেদৰে অশুভ শক্তিৰ প্ৰতিভূ হিচাবে পৰিগণিত হৈছে। তেওঁ খৃষ্টান ধৰ্মত দীক্ষিত হোৱা লোকসকলক দেখিব নোৱাৰিছিল। ৰাইজৰ নিৰাপত্তাৰ কথা চিন্তা নকৰি নেপালীবোৰৰ ওচৰত মাটিবোৰ বিক্ৰী কৰি দিছিল। স্বাৰ্থপৰ হাবেছিকে চমাংকান উৎসৱত ৰংমিলি দলক শ্ৰেষ্ঠ বঁটা দিয়াৰ পৰা বঞ্চিত কৰি কৈছিল 'ছাৰইকে যদি দুটাল গা-ধন দি মোৰ ভৰিত মূৰ দোঁৱাইহি, তেন্তে এই শ্ৰেষ্ঠ সন্মান দিব পাৰো।'[৩]

ষড়যন্ত্ৰকাৰী হাবেছিকেও এদিন অন্যায়ৰ ফল পালে। ক্ষমতাৰ লোভত অন্ধ হাবেছিকৰ দৰে মানুহ প্ৰত্যেক সমাজত আছে। অনুশোচনাত দগ্ধ হাবেছিকৰ শেষত যি আত্মপলব্ধি হৈছে সিয়ে চৰিত্ৰটোৰ উত্তৰণ ঘটাইছে। উপন্যাসখনৰ বৈশিষ্টপূৰ্ণ চৰিত্ৰটো হৈছে লৰেন্স হান্সেৰ। তেওঁ যুগৰ লগত সমানে খোজ মিলাই আগবাঢ়ি গৈছে। মিছনেৰীসকলে প্ৰচাৰ কৰা খৃষ্ট ধৰ্ম তেওঁ গ্ৰহণ কৰিছে যদিও খৃষ্ট ধৰ্ম গ্ৰহণ নকৰা লোকসকলৰ লগতো ভাবৰ আদান-প্ৰদান কৰিছে। ছাৰইকৰ ল'ৰা হেমাইক পঢ়ুৱাবলৈ তেওঁ উৎসাহ দিছে। কাৰবি আংলঙত সুকীয়া দৰবাৰ গঠন কৰাৰ ক্ষেত্ৰতো তেওঁ আগ-ভাগ লৈ ৰাজনৈতিক চেতনাবোধৰ পৰিচয় দিছে।

ছাৰইক তেৰাঙৰ পুত্ৰ হেমাইক উপন্যাসখনৰ শেষৰ ফালে দেখা গৈছে সি আগৰ সহজ-সৰল হেমাই হৈ থকা নাই। সময়ৰ পৰিৱৰ্তনত হেমাই সলনি হৈছে, সি লৰেন্সক মিঠাইৰ পৰিবৰ্তে ফাউন্টেন পেন বিচাৰিছে। কানি বা বৰবিহে কেনেদৰে মানুহৰ জীৱন দুৰ্বিসহ কৰি তুলিছিল সেয়া ঔপন্যাসিকে ফুটাই তুলিছে লিন্দকৰ চৰিত্ৰটোৰ যোগেদি। উপন্যাসখনৰ ত্ৰিকোণ প্ৰেমৰ চৰিত্ৰকেইটা হ'ল—অমফু, ছেংতেৰণ আৰু ৰফং। অমফুক লৈ ৰফং আৰু ছেং তেৰণৰ কাজিয়া হৈছিল। সেয়েহে দেউতাকে অমফুক ৰমান্দুলৈ বিয়া দিব খোজাত তাইৰ হিয়াত বেদনা থাকিলেও ৰংমিলিৰ মংগলৰ বাবে সঁচা অন্তৰৰ ছেং তেৰণৰ ভালপোৱাক নেওচি নিজৰ স্বাৰ্থকো ত্যাগ কৰিছে। আনহাতে গাঁওবুঢ়াৰ পত্নী কাছাং ৰং হাংপী, অমফুৰ বান্ধৱী কাদম, লিন্দকৰ পত্নী কাৰেং, হাবেছিকৰ পত্নী আদি চিৰ পৰিচিত গ্ৰাম্য কাৰবি নাৰী চৰিত্ৰ। উপন্যাসখনৰ প্ৰতিটো চৰিত্ৰই কাৰবি সমাজৰ ঐতিহ্যশীল আৰু পৰিৱৰ্তনশীল চেতনাক বহন কৰিছে। চৰিত্ৰবোৰ জীৱন্ত ৰূপৰ বাবে উপন্যাসখন পঢ়াৰ সময়ত পাঠকে ৰংমিলি গাঁৱত অবাধ বিচৰণৰ মাদকতা অনুভৱ কৰে।

১.০২ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত সমাজ ঃ

নীতি-নিয়ম আৰু আচাৰ অবিহনে কোনো এখন সমাজ জীয়াই থাকিব নোৱাৰে। ৰং বং তেৰাঙৰ সৃষ্টিশীলতাৰ ভিত্তিয়েই হ'ল কাৰবি সমাজখন। তেওঁৰ লেখনিৰ জুমুঠি গঢ় লৈ উঠিছে কাৰবি পাহাৰৰ সহজ-সৰল মানুহখিনি। কাৰবি জনজীৱনৰ পৰিৱৰ্তনশীল বাস্তৱৰ ঘটনাক্ৰমৰ বৰ্ণনাৰাজিৰে 'ৰং মিলিৰ হঁাহি' উপন্যাসখন গঢ় লৈ উঠিছে। এই উপন্যাসখনৰ মাজেদি কাৰবি লোকসকলৰ সামাজিক, আৰ্থিক আৰু ধৰ্মীয় জীৱনৰ আচাৰ-বিচাৰ, ৰীতি-নীতি, ধ্যান-ধাৰণা, সংঘাত-ব্যাঘাত, আশা-আকাঙ্খা আদিৰ বিভিন্ন চিত্ৰ ফুটি উঠিছে। প্ৰাচীন পৰম্পৰা অনুযায়ী কাৰবি সমাজখন পাঁচখন লংৰিত বিভক্ত।

প্ৰতিখন লংৰিত একোজন ৰজাই শাসন কৰিছিল। ৰজাৰ তলত থাকে পিন্‌পসকল আৰু তাৰ পিছত থাকে হাবেসকল আৰু হাবেসকলৰ পিছত গাঁৱৰ ছাৰবাছা বা গাঁওবুঢ়া। উপন্যাসখনত দেখা গৈছে ৰংমিলি গাঁৱৰ গাঁওবুঢ়া ছাৰইক তেৰাং। অন্যান্য বিষয়াসকলে কিবা দোষ কৰিলে ৰজাই 'কিদ্' বা বাৰ্তা পঠিয়াই পঠিয়াই বিচাৰ কৰে। উপন্যাসখনতো হাবেছিক দোষী সাব্যস্ত হোৱাত ৰজাই কিদ্ পঠিয়াই তেওঁক হাবেছিক পদৰ পৰা অব্যাহতি দিছে।

কাৰবি লোকসকলৰ সামাজিক জীৱনত প্ৰভাৱ পেলোৱা অনুষ্ঠানটো হ'ল জিৰকেদাম বা ডেকাচাং। জিৰকেদামত ডেকাসকল তিনিবছৰ সদস্য হয় আৰু জীৱনৰ লাগতিয়াল কৰ্মৰাজিৰ প্ৰশিক্ষণ তেওঁলোকে এই অনুষ্ঠানতে লয়। জিৰছঙৰ বৰ্ণনাও উপন্যাসত আছে—"জিৰছং হ'ল কাৰ্বি সমাজ জীৱনৰ মূল সপোন। গছজোপাৰ শীতল ছাঁ, কাষত ডেকা চাং আৰু ৰংমিলি—এই তিনিওৱে অবিখণ্ডিত ৰূপ হ'ল ৰংমিলি গাঁওখন, ৰংমিলিৰ সমাজখন।[৪] জিৰছঙৰ 'ক্লেংছাৰপ' আৰু 'ক্লেংদুন'ৰ মাজত হোৱা মতানৈক্যৰ মীমাংসা কৰি আহোতে ছাৰইকে জিৰকেদাম অনুষ্ঠানৰ সমাপ্তিৰ কথা মনতে ভাবিছে। জিৰছং অনুষ্ঠানটো যে সময়ৰ লগত খাপ নাখায় সেই কথাও ছাৰইক তেৰাঙে উপলব্ধি কৰিছে।

কাৰবি জনজীৱনৰ সৈতে মদ অপৰিহাৰ্য। তেওঁলোকৰ ঘৰলৈ আলহী, অতিথি আহিলে মদেৰে আপ্যায়ন কৰে। কাৰবি উৎসৱ-অনুষ্ঠানত মদৰ ব্যৱহাৰ সম্পৰ্কে ঔপন্যাসিকে সুন্দৰকৈ বিশ্লেষণ কৰিছে—"ফটিকা আৰু লাওপানী কাৰ্বি কৃষ্টিৰ স'তে এৰাব নোৱাৰা সম্পৰ্ক। জন্ম, মৃত্যু, বিবাহ এই ত্ৰিকাৰ্যৰ বাবে ফটিকা আৰু লাওপানী অপৰিহাৰ্য। কাৰ্বি জীৱনৰ হাঁহি আৰু চকুপানী যেন লাওপানীৰ অপূৰ্ব মায়াজালতহে বন্দী।[৫] অন্যান্য বস্তুৰ কথাও উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা যায়।

১.০৩ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত সাংস্কৃতিক বৈচিত্ৰ্য ঃ

'ৰং মিলিৰ হাঁহি'ৰ কাহিনী ভাগ আগবঢ়াই নিওতে ঔপন্যাসিকে কাৰবি সমাজৰ বিভিন্ন উৎসৱ-পাৰ্বনৰ বৰ্ণনা দিছে। কৃষিজীৱী কাৰবি জনজাতিৰ প্ৰায়বোৰ উৎসৱ, পূজা-পাৰ্বন কৃষিৰ লগত জড়িত। ৰংমিলি গাঁৱৰ ৰাইজৰ মংগল কামনা কৰি ছাৰইক তেৰাঙে ছ'জুন পূজা অনুষ্ঠিত কৰিছে। পূজাৰ সামৰণিত সকলো ৰাইজে একেলগে মদ-ভাত আনন্দ মনেৰে পূজা উৎসৱৰ পৰা বিদায় মাগিছে।

কাৰবি সমাজলৈ বহু পৰিৱৰ্তন আহিছে যদিও ছাৰইক তেৰাঙে পুৰণি পৰম্পৰাক পাহৰি নগৈ পুতেক হেমাইক স্কুলত ভৰ্তি কৰি দিয়াৰ আগে আগে এভাগ হেমফু দেৱতাৰ পূজাৰ আয়োজন কৰিছে। এই পূজাই হেমাইৰ ভৱিষ্যত জীৱনৰ কথাকে ক'ব। পূজাত বলি দিয়া কুকুৰাৰ নাড়ীবোৰ পৰীক্ষা কৰি পুৰোহিতে ছাৰবাছাক ক'লে—"আজি পাত পেলাওঁতেই বুজিছিলোঁ। নাড়ী ভুঁৰুৱেও সেই কথাকেই কৈছে। অছাই জীৱনত নিশ্চয় উন্নতি কৰিব পাৰিব।"[৬]

জনজাতীয় সমাজ ব্যৱস্থাত উৎসৱ-পাৰ্বনৰ বিশেষ

গুৰুত্ব আছে। এনে উৎসৱৰ মাজেদি সামাজিক আদান-প্ৰদান, মানৱীয় সম্পৰ্কৰ বহিৰ্প্ৰকাশ ঘটে। মৃতকৰ আত্মাৰ সৈতে সম্পৰ্কীয় অনুষ্ঠানক কাৰবি লোকসকলে চমাংকান বোলে। ৰং বং তেৰাঙে উপন্যাসখনৰ বত্ৰিশ নম্বৰ অধ্যায়ত চমাংকানৰ বিস্তৃত বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে।

'চমাংকান' উৎসৱত ব্যৱহৃত হোৱা প্ৰতীক জাম্বলী আথনটোৱে ৰংমিলি দলৰে গৌৰৱ অক্ষুন্ন ৰাখিছে। তেনেদৰে উপন্যাসখনৰ পঁচিশ নম্বৰ অধ্যায়ত আমি দেখা পাওঁ কাৰবিসকলৰ সামাজিক জীৱনৰ লগত ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত 'হাচ্ছাকেকন নৃত্য'ৰ বৰ্ণনা। ধান ছপোৱাৰ আনন্দত গাঁৰৰ ৰাইজে নৃত্য কৰিছে। নৃত্যৰ শেষত সকলোৱে দেৱতালৈ মদ তৰ্পণ কৰি আনন্দমনে মদ পান কৰিছে। কাৰবি লোকসকলৰ ত্যাগ আৰু একতাৰ এখন প্ৰতিচ্ছবিকে ৰং বং তেৰাঙে এই নৃত্যৰ জৰিয়তে দাঙি ধৰিছে।

ফাগুন মাহৰ শুক্লাষ্ঠমী তিথিত উদ্‌যাপন কৰা 'ব'লকেতৰ' পূজাৰ বিৱৰণ ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে তেত্ৰিশ অধ্যায়ত। পূজাৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হ'ল সমগ্ৰ লংৰিৰ মংগল কামনা কৰা। ৰাজপুৰোহিত কাথাৰ বুৰাই পুৰোহিত্য কৰা এই পূজাৰ সামৰণিত সকলোকে একেলগে বহি অন্নগ্ৰহণ কৰা বৰ্ণনা উপন্যাসখনত আছে—'এইয়া ভ্ৰাতৃত্বৰ মৰমসূচক সৌহাৰ্য্য। এনে সৌহাৰ্দ্য প্ৰদৰ্শন এই পূজাৰ আন এটি তাৎপৰ্য। কাৰবি সমাজ বুৰঞ্জীৰ ইয়ো নিশ্চয় অবিস্মৰণীয় অধ্যায়। ব'লকেতৰ অনুষ্ঠানৰ নিয়মবোৰ পালন কৰি দেৱতালৈ অন্ন তৰ্পণ কৰিলে আৰু ৰংছ'পিজই মিলি এক মহামিলনৰ অন্ন ভোজন কৰিলে।'[৭]

এইবোৰৰ উপৰিও কাৰবি লোকসকলৰ বিভিন্ন গীত-মাত, লোক কাহিনী, লোক বিশ্বাস উপন্যাসখনৰ মাজেদি নৈসৰ্গিক দৃশ্যৰাজিৰ মনোমোহা প্ৰকাশে ৰংমিলিৰ হাঁহিক জীৱন্ত ৰূপত উদ্ভাসিত কৰিছে। এই সম্পৰ্কত জিতাঞ্জলী বৰপূজাৰীৰ এটি মন্তব্য সমীচিনযোগ্য—'ৰংমিলি গাঁৰৰ মাজেদি কাৰবি সকলৰ জীৱনৰ দুখ-বেদনা, আশা-আকাঙ্খা, প্ৰেম-বিষন্নতাৰ প্ৰকৃত ছবি ফুটাই তোলাত উপন্যাসিক কৃতকাৰ্য হৈছে। জীৱন চিত্ৰৰ সফল ৰূপায়ণতে উপন্যাসৰ মূল অস্তিত্ব, শিল্পীয়ে যেনেকৈ ৰং তুলিকাৰে কেনভাচত জীৱনক চিত্ৰিত কৰে ঔপন্যাসিকেও তেনেদৰে উপন্যাসৰ জৰিয়তে জীৱনৰ সাৰ্থক ৰূপ প্ৰকাশৰ চেষ্টা কৰে। সেয়েহে কাৰবি সমাজৰ পাগঘৰৰ পৰা আৰম্ভ বহল দৃষ্টিভংগীৰে গোটেই কাৰবি জীৱনকে সামৰি লোৱা ৰংমিলিৰ হাঁহি নিঃসন্দেহে কাৰবি জীৱন ভিত্তিক সাৰ্থক উপন্যাস।'[৮]

১.০৪ উপন্যাসখনৰ ভাষা ঃ

উপন্যাসৰ প্ৰকাশ ৰীতিৰ মাধ্যম ভাষা। যেনেকৈ আত্মা অবিহনে মানুহ জীয়াই থাকিব নোৱাৰে, তেনেদৰে ভাষা অবিহনে উপন্যাস এখন সৃষ্টি হ'ব নোৱাৰে। জনজাতীয় জীৱনকেন্দ্ৰিক অসমীয়া উপন্যাসৰ ভাষা আৰু গদ্যৰীতিতো বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ অভিব্যক্তি দেখিবলৈ পোৱা যায়। ৰংবং তেৰাঙৰ ভাষা আৰু বৰ্ণনাদক্ষতা মনকৰিবলগীয়া। ৰং বং তেৰাঙে 'ৰং মিলিৰ হাঁহি'ত নিজৰ ভাষাৰ শব্দ প্ৰয়োগ কৰিছে, যাৰ ফলত উপন্যাসখনৰ ভাষা শ্ৰুতিমধুৰ হৈ পৰিছে — ছাৰবাছা, ছাৰথে, জিৰছং, ৰিকং, কাৰদম, জাম্বৰং ইত্যাদিকে ধৰি বিভিন্ন কাৰবি শব্দ প্ৰয়োগ কৰিছে যদিও উপন্যাসখন পঢ়ি যাওঁতে পাঠকৰ কোনো অসুবিধা নহয়, কাৰণ তেওঁ এইবোৰ শব্দৰ পাদটীকা ব্যৱহাৰ কৰিছে। অনা কাৰবি লোকসকলে কাৰবি লোকসকলৰ লগত সৌহাৰ্দ্য স্থাপন কৰিবলৈ কাৰবি ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে। 'ৰংমিলিৰ হাঁহি' উপন্যাসখনত চাহাবৰ মুখত কাৰবি শব্দ শুনি ছাৰইক তেৰাং অতি আনন্দিত হৈছে। মাতৃভাষাৰ প্ৰতি সকলোৰে এটা আকৰ্ষণ থাকে, গতিকে চাহাবৰ মুখত ইংৰাজীৰ লগত কাৰবি শব্দ শুনাত ছাৰইক আনন্দিত হোৱাটো স্বাভাৱিক। উদাহৰণ স্বৰূপে — 'কাৰদম কাৰদম্। আৰ ইউ ভিলেজ হেডম্যান?'[৯]

তেনেদৰে নেপালী সম্প্ৰদায়ৰ দিল বাহাদুৰৰ মুখত হিন্দী মিশ্ৰিত অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে—'এইজন মোৰ ভাই প্ৰেম বাহাদুৰ। আৰু এইজন অমৰ বাহাদুৰ, লংকাৰ পৰা আহিছে। এইচব বহুত গৰিব আছে।'

বৰ্ণনাৰ ক্ষেত্ৰত সহজ-সৰল ভাষা প্ৰয়োগ কৰাৰ উপৰিও উপন্যাসখনত উপমা, ৰূপক, চিত্ৰকল্প আদিৰ সংযোজন ঘটাত তেওঁৰ ৰচনাশৈলী অধিক আকৰ্ষণীয় হৈ উঠিছে—

উপমা ঃ 'জাকৰুৱা ম'হৰ চিনাকী গোন্ধৰ সৈতে তাৰ ডেকা জীৱনৰ মাদকতাৰ এক নিবিড় সম্বন্ধ আছে।'[১০]

চিত্ৰকল্প ঃ 'দেৱতাৰ স্তুতি মন্ত্ৰৰ ধ্বনিয়ে এক পবিত্ৰ পৰিৱেশ জগাই তুলিলে।'[১১]

উপমা, চিত্ৰকল্প আদিৰ উপৰিও তেওঁ পৰিৱেশ পৰিস্থিতি অনুযায়ী প্ৰশ্নবোধক, ভাববোধক, সম্বোধনসূচক বাক্যৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে। লেখকৰ মনৰ আবেগ-অনুভূতি প্ৰকাশ কৰাত এইবোৰ বাক্যই সহায় কৰে। এনেদৰে চিত্ৰকল্প, ব্যঞ্জনা, বিবিধ বাক্যৰ সমাহাৰেৰে তেওঁৰ চৰিত্ৰসমূহ জীৱন্ত হৈ উঠিছে। ভাষাৰ সৰলতাৰ বাবে উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰবোৰৰ কাষ চাপিবলৈ

পাঠকৰ যথেষ্ট সুবিধা হৈছে বুলি ক'ব পাৰি।

২.০০ সামৰণি ঃ

আলোচ্য উপন্যাসখনত দেখা গৈছে যে ঔপন্যাসিক ৰং বং তেৰাং নিজে কাৰবি লোক হোৱা বাবে উপন্যাসখনৰ মাজেদি কাৰবি সকলৰ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-অনুষ্ঠান, সমাজৰ অৰ্থনৈতিক অৱস্থা, উৎসৱ-পাৰ্বন, গীত-মাত প্ৰকাশিত হৈ উঠিছে। কালৰ প্ৰবহমান গতিত সহজ-সৰল জনজাতীয় সমাজ জীৱনলৈ অহা আমূল পৰিৱৰ্তনৰ ছবিও উপন্যাসখনৰ মাজেদি প্ৰকাশিত হৈছে। 'ৰং মিলিৰ হাঁহি' অকল সাহিত্য ৰসেৰে পূৰ্ণ কল্পলোক নহয়, ই প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ নিবিড় সংযোগৰ এক প্ৰতিফলন। ড° গৰিমা কলিতাই 'ৰং মিলিৰ হাঁহি' সম্পৰ্কত কৰা এক মন্তব্য গ্ৰহণযোগ্য—'ৰংমিলি প্ৰকৃততে James Hilton ৰ অমৰ উপন্যাস 'Lost Horizon' ত বৰ্ণিত ৰোমাঞ্চকৰ শ্বাংৰিলাৰ দৰে সতেজ, সচেতন আৰু সপ্ৰতিভ এক ভিন্ন অস্তিত্ব। সেউজীয়া প্ৰকৃতিৰ কোলাত গঢ় লৈ উঠা আদিম সমাজৰ প্ৰাথমিক গুণ বিশিষ্ট বিভিন্ন ৰঙৰ বৰ্ণিল সমাহাৰ আজিও একৈশ শতিকাৰ নাগৰিক সভ্যতাৰ তীখাৰ দৰে পৰিশীলিত আৰু পৰিমাৰ্জিত যান্ত্ৰিক কুচ-কাৱাজৰ আন্তৰিকতাৰ মাজত সুদূৰ ৪০ দশকৰ পটভূমিত ৰচিত কাৰবি পাহাৰৰ 'ৰংমিলি' এক স্থিৰ কল্প কথাৰ দৰে স্থিত।'[১২] ❑

প্ৰসঙ্গসূত্ৰ ঃ

১। অজিৎ শইকীয়া, জনজাতীয় জীৱন ভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাস, পৃঃ ৩৩৬
২। ৰং বং তেৰাং ঃ ৰং মিলিৰ হাঁহি ঃ পৃঃ ৪১-৪২
৩। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ১৭৫
৪। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ২৭
৫। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ২৫
৬। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ৮৩
৭। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ১৮৩
৮। জিতাঞ্জলী বৰপূজাৰী, অসমীয়া উপন্যাসত জনজাতীয় জীৱন, পৃষ্ঠা ঃ ১২৮
৯। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ৫২
১০। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ৪
১১। উল্লিখিত, পৃষ্ঠা ঃ ১৯
১২। গৰিমা কলিতা 'কল্পকথা'ৰ আৰম্ভণি, প্ৰাৰম্ভিক সামাজিক সপোন, পৃষ্ঠা ঃ ৮৮

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

(ক) **মুখ্য উৎস ঃ** তেৰাং ৰং বং, ৰং মিলিৰ হাঁহি, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ১৯৮১
(খ) **গৌণ উৎস ঃ**
১। ঠাকুৰ নগেন (সম্পাদিত) এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ-২০০০
২। পাটৰ পদ্ম, জনজাতি সমাজ সংস্কৃতি, ভবানী অফছেট এণ্ড ইমেইজিং ছিষ্টেমছ প্ৰাঃ লিঃ ৰাজগড়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৮
৩। বৰপূজাৰী, ড° জিতাঞ্জলী, অসমীয়া উপন্যাসত জনজাতীয় জীৱন, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৯
৪। বৰা, পবিত্ৰ ডেকা খনীন্দ্ৰ কুমাৰ (সম্পাদিত) সমন্বয়ৰ ৰূপকাৰ ৰং বং তেৰাঙৰ অভিনন্দন গ্ৰন্থ, ডিফু, গান্ধীবস্তি, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯
৫। শইকীয়া, ড° অজিৎ, জনজাতীয় জীৱন ভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাস, সাৰদা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ-২০০৫

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

বিশেষ চাহিদামুক্ত শিশুসকলৰ সমস্যা আৰু বাধামুক্ত বিদ্যালয়ৰ ধাৰণা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন (শিৱসাগৰ জিলাৰ বিশেষ উল্লেখেৰে)

ড° শ্বহিদুল আহমেদ
সহকাৰী অধ্যাপক
আমগুৰি মহাবিদ্যালয়, শিৱসাগৰ,
পিন-৭৮৫৬৮০
৭০০২৯৭০৬৫০
sahidtpsc@gmail.com

মৃদুস্মিতা তালুকদাৰ
সহকাৰী অধ্যাপিকা
দেওমৰনৈ শিক্ষণ মহাবিদ্যালয়
পিন-৭৮৪১৪৭
৯৩৬৫০০৫৬৯৮

সাৰাংশ ঃ

বিশেষ চাহিদাযুক্ত, শিশুৰ শিক্ষা বৰ্তমানৰ ব্যৱস্থাটোক অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ শিক্ষা বুলি অভিহিত কৰা হয়। অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ শিক্ষাৰ সফলতা নিৰ্ভৰ কৰে স্কুলৰ লগত জড়িত ব্যক্তিসকলৰ মন-মানসিকতা আৰু সদিচ্ছাৰ ওপৰত। ইয়াৰ উপৰিও বিদ্যালয়ত থাকিবলগীয়া সা-সুবিধাখিনিও এই শিক্ষাৰ সফলতাত বহু পৰিমাণে অৰিহণা যোগায়। আমাৰ গৱেষণাৰ মুল উদ্দেশ্য আছিল, বিশেষ ভাৱে চাহিদাযুক্ত শিশু সকলে বিদ্যালয়ত সন্মুখীন হোৱা সমস্যাসমূহৰ অধ্যয়ন কৰাৰ লগতে বাধামুক্ত বিদ্যালয়ত থাকিবলগীয়া সা-সুবিধাখিনিৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা। আমাৰ গৱেষণাৰ কাৰণে শিৱসাগৰ জিলাৰ আমগুৰি আৰু ডিমৌ শিক্ষাখণ্ডৰ মুঠ ১০ খন বিদ্যালয়ৰ পৰা নমুনা গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। নমুনা গ্ৰহণ কৰা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ সংখ্যা আছিল মুঠ ২৩ জন। এই গৱেষণাৰ পৰা আমি বিশেষ চাহিদা থকা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে বিদ্যালয়ত সন্মুখীন হোৱা সমস্যাসমূহৰ বিষয়ে অৱগত হোৱাৰ লগতে বাধামুক্ত বিদ্যালয়ত থাকিবলগীয়া বিভিন্ন সা-সুবিধাৰ বিষয়েও জানিব পাৰিলোঁ।

বীজ শব্দ ঃ বিশেষ চাহিদামুক্ত শিশু, সমস্যা, বাধামুক্ত বিদ্যালয়, অসম

আৰম্ভণি ঃ

যিসকল শিশুৰ ইন্দ্ৰিয় ক্ষমতা বুদ্ধি বা শাৰীৰিক ক্ষমতা তথাবৈশিষ্ট, ভাব বিনিময় ক্ষমতা, সামাজিক দক্ষতা অৰ্থাৎ দেহ মানসিক আৰু সামাজিক সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰত ইমানেই ভিন্ন প্ৰকৃতিৰ তথা বৈষম্যমুক্ত যাৰ কাৰণে তেওঁলোকক বিশেষ প্ৰশিক্ষণ তথা বিশেষ শিক্ষা বা বিশেষ শিক্ষণ-শিকণ ব্যৱস্থাৰ প্ৰয়োজন হয়। বিশেষ ভাবে প্ৰয়োজন মুক্ত শিশুসকলক আমি বহল ভাবে তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰো— (i) প্ৰতিভাসম্পন্ন শিশু (ii) বাধাগ্ৰস্ত শিশু (iii) আৰু সামাজিক ভাবে পিছপৰা বা বঞ্চিত হোৱা বা একাষৰীয়াকৰণ শিশু।

বিশেষ ভাবে চাহিদামুক্ত শিশুসকলৰ শিক্ষাৰ ব্যৱস্থা অধ্যয়ন কৰিলে পৰিলক্ষিত হয় যে, এই শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ ধাৰণা সময়ৰ সৈতে পৰিৱৰ্তন হৈ আছে। অতীত বুৰঞ্জীৰ পৃষ্ঠা লুটিয়ালে দেখা যায় যে প্ৰথম অৱস্থাত বিশেষ ভাবে চাহিদা যুক্ত শিশু সকলৰ

শিক্ষা ব্যৱস্থাক বিশেষ শিক্ষা (Special Education) বুলি অবিহিত কৰিছিল।

পিছৰ পয্যায়ত বিশেষ শিক্ষা আন এটা নামেৰে নামকৰণ কৰা হ'ল—মুলধাৰা (Mainstreaming)। এই ব্যৱস্থাত অক্ষমতামুক্ত বা বাধাগ্ৰস্ত শিশুসকলক নিয়মীয়া শিক্ষা ব্যৱস্থাতে শিক্ষা প্ৰদান কৰাৰ ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। ইয়াৰ বাবে প্ৰথমে কিছুমান বিশেষ বিদ্যালয় প্ৰতিষ্ঠা কৰি অক্ষমতামুক্ত বা বিশেষ প্ৰয়োজনমুক্ত বা বাধাগ্ৰস্ত শিশুসকলক শিক্ষাৰ মুল ধাৰালৈ অনাৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰি তোলা হৈছিল। এনেদৰে প্ৰস্তুতি লাভ কৰা শিশুসকলক সেই বিশেষ শিক্ষাৰ পৰিস্থিতিৰ পৰা নিয়মীয়া সাধাৰণ শিক্ষা ব্যৱস্থালৈ অনা হৈছিল আৰু সাধাৰণ শিশুৰ লগত একেলগে শিক্ষা লাভৰ সুযোগ দিয়া হৈছিল। ১৮৫১ চনত আমেৰিকাৰ চিকিৎসক ছেমুৱেল গ্ৰিডলি হৱ (Samuel Gidley Howe) এ এই ধাৰণাটো প্ৰথম উদ্ভাৱন কৰিছিল।

বিশেষ চাহিদাযুক্ত, শিশুৰ শিক্ষাৰ বৰ্তমানৰ ব্যৱস্থাটোক অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ শিক্ষা বুলি অভিহিত কৰা হয় (Inclusive education) অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ শিক্ষা হ'ল কোনো বৈষম্য নৰখাকৈ সকলো শাৰীৰিক, সামাজিক আৰু মনোভাবমূলক বাধাসমূহ আতৰাই বিশেষ প্ৰয়োজনযুক্ত শিশুসকলক সাধাৰণ শিশুৰ লগত বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত অংশ গ্ৰহণৰ সুযোগ সুবিধা প্ৰদান কৰা। শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত অন্তৰ্ভুক্তিকৰণে অক্ষমতা, সক্ষমতা, শিকনৰ বিশেষ অসুবিধা, লিংগ, বৰ্ণ, শ্ৰেণী পৰিবাৰিক গঠন আৰু জীৱন শৈলী আদিৰ ক্ষেত্ৰত থকা পাৰ্থক্যক আওকান কৰি সকলোকে শিক্ষা লাভৰ সুযোগ প্ৰদান কৰা। এনে ধৰণৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাই বিশেষ প্ৰয়োজনযুক্ত শিশুসকলৰ আত্মবিশ্বাস বৃদ্ধি কৰাত সহায় কৰে। ই শিক্ষাৰ্থীৰ যোগাযোগ প্ৰক্ৰিয়া উন্নত কৰাৰ লগতে যোগাত্মক মনোভাৱ গঢ়ি তোলাত সহায় কৰে। ই শিক্ষাৰ্থী তথা শিশুৰ মনত 'I can do' মনোভাৱৰ বিকাশ সাধন কৰে।

অন্তৰ্ভুক্ত শিক্ষাৰ প্ৰধান লক্ষ্য হ'ল সকলোকে সমান মানদণ্ডৰ গুণগত শিক্ষা প্ৰদান কৰা। এজন শিশুৱে এনেকুৱা এখন স্কুলত শিক্ষাগ্ৰহণ কৰিবলৈ সুবিধা পাব লাগে, যিয়ে শিশুসকলক এক মুক্ত পৰিৱেশত নিজৰ চাহিদা আৰু প্ৰয়োজনৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি শিক্ষা লাভ কৰিব পাৰে। এই ক্ষেত্ৰত বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুসকলো উপস্থিত হ'ব নালাগে। বৰ্তমান সময়ত যদিও চৰকাৰৰ বিভিন্ন আঁচনি সমূহে বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশু সকলক স্কুলত নামভৰ্তি কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে তথাপিও সিহঁত কিমান খিনি সা-সুবিধা প্ৰদান কৰিব পাৰিছে তাত যথেষ্ঠ সন্দেহৰ অৱকাশ আছে।

বৰ্তমান সময়ত আমাৰ অসমত বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুসকল স্কুলত / বিদ্যালয়ত নামভৰ্তি কৰাইছে। কিন্তু স্কুলত তেওঁলোকে প্ৰকৃততে সা-সুবিধাখিনি পাই আছে নে। আমাৰ এই গৱেষণা হ'ল—বিশেষ প্ৰয়োজন থকা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসমূহে স্কুলত উপযুক্ত সা-সুবিধা পাইছেনে আৰু যদি নাই পোৱা তেন্তে সেই ক্ষেত্ৰত আমি কি কি ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিলে, বিশেষ প্ৰয়োজন থকা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে উপকৃত হ'ব পাৰে।

গৱেষণা পত্ৰৰ উদ্দেশ্য ঃ

১। বিশেষ প্ৰয়োজন থকা ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে (শ্ৰেণী VI - VIII) বিদ্যালয়ত কি কি অসুবিধা পাইছে তাৰ অধ্যয়ন কৰা।

২। বাধামুক্ত বিদ্যালয়ত থাকিব লগীয়া সুবিধা সমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ ৰাজ্যসমূহৰ ভিতৰত 'অসম' হ'ল অন্যতম। বৰ্তমান অসমত ৩১ খন জিলা আছে য'ত মাত্ৰ ৩ কোটি ৫০ লাখ মানুহে বসবাস কৰে। আমাৰ গৱেষণাটো উজনি অসমৰ শিৱসাগৰ জিলাত কৰা হৈছিল।

তথ্যৰ সংগ্ৰহৰ উৎস ঃ

যিকোনো বৈজ্ঞানিক অধ্যয়নৰ কাৰণে সদায় বাস্তৱ তথ্যৰ প্ৰয়োজন। তথ্য নোহোৱাকৈ কোনো বৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন সফল হ'ব নোৱাৰে। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰ খন প্ৰস্তুত কৰাত আমি যিবোৰ তথ্যৰ ব্যৱহাৰ কৰিছোঁ তাক আমি মূলত দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰো—(ক) প্ৰাথমিক তথ্য আৰু (খ) দ্বিতীয়ক তথ্য। প্ৰাথমিক তথ্যৰ কাৰণে আমি শিৱসাগৰ জিলাৰ আমগুৰি আৰু ডিমৌ শিক্ষাখণ্ডৰ মুঠ **১০** খন স্কুল নমুনা হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিলোঁ। নমুনা হিচাপে গ্ৰহণ কৰা বিদ্যালয়ৰ প্ৰতিজন বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুক আমাৰ গৱেষণাৰ নমুনা হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। মুঠ বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুৰ সংখ্যা আছিল **২৩** জন। প্ৰশ্নসূচী প্ৰয়োগৰ দ্বাৰা তথ্যবোৰ সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল। দ্বিতীয়ক তথ্যবোৰ পৰোক্ষ উৎসৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল যেনে কিতাপ, গ্ৰন্থ, আলোচনী ইত্যাদি।

সীমাবদ্ধতা ঃ

১। এই গৱেষণা কেৱল মাত্ৰ শিৱসাগৰ জিলাত সাঙুৰি লোৱা হৈছে।

২। নমুনা স্কুলবোৰ চৰকাৰী স্কুল আছিল। বেচৰকাৰী স্কুল ইয়াত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হোৱা নাছিল।

৩। এই গৱেষণা কেৱল মাত্ৰ VI শ্ৰেণীৰ পৰা VIII শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰী সকলৰ মাজত পৰিচালনা কৰা হৈছিল।

সাহিত্য পৰ্য্যালোচনা ঃ

Yazici, DN (2021) এ বিশেষ প্ৰয়োজন শিশুসকলে Covid-19 ৰ সময়ত স্কুলত কি কি সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈছিল তাৰ অধ্যয়ন কৰিছিল। গৱেষণাৰ শেষত গৱেষকে ব্যাখ্যা কৰিছিল যে বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশুৱে তেওঁলোকৰ শৈক্ষিক, সামাজিক দক্ষতা আৰু ভাষা বিকাশ সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়। এই গৱেষণাই প্ৰমাণ কৰিছিল যে অন্তৰ্ভুক্ত শিক্ষাৰ্থীসকলে তেওঁলোকৰ প্ৰযুক্তিৰ ব্যৱহাৰ, অনলাইন শ্ৰেণীত অংশগ্ৰহণ কৰা আৰু অনলাইন শ্ৰেণীত মনোযোগ বজাই ৰখাত অসুবিধাৰ সন্মুখীন হৈছিল। Anjum, S. etc all (2021) এ বিশ্ববিদ্যালয় পৰ্য্যায়ত বিশেষ প্ৰয়োজন শিশুসকলৰ ওপৰত এটা অধ্যয়ন কৰিছিল। অধ্যয়নৰ মূল বিষয়বস্তু আছিল "বিশেষ প্ৰয়োজন শিশু সকলে বিশ্ববিদ্যালয় শিক্ষা গ্ৰহণ কৰাত কি কি অসুবিধাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়"। গৱেষণাৰ শেষত গৱেষকে পাইছিল যে বিশেষ প্ৰয়োজন শিশুবোৰ সকলো ক্ষেত্ৰতে অন্য ছাত্ৰ-ছাত্ৰী সমূহৰ পৰা মহানুভূতি লাভ কৰিছিল। এই গৱেষণাত অন্য এটা তথ্যও পোহৰলৈ আহিছিল যে, যদিও বিশ্ববিদ্যালয় পৰ্য্যায়ত বিশেষ প্ৰয়োজন শিশু সকলৰ সুবিধাৰ কাৰণে বিভিন্ন সা-সুবিধা আছে, কিন্তু এই সা-সুবিধাখিনি পয্যাপ্ত পৰিমাণৰ নহয়। সম্পূৰ্ণ অন্তভুক্তিকৰণ প্ৰক্ৰিয়া এই শিক্ষাত ১০০ শতাংশ হোৱা নাই।

তথ্যৰ বিশ্লেষণ ঃ

বৈজ্ঞানিক অধ্যয়নৰ এটা বৈশিষ্ট্য হৈছে প্ৰণালীবদ্ধতা। আমাৰ গৱেষণাৰ তথ্যৰ বিশেষণ তলত প্ৰণালীবদ্ধ ভাৱে আগবঢ়োৱা হ'ল—

ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে বিদ্যালয়ত সন্মুখীন হোৱা সমস্যা সমূহ ঃ

১। বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশুৱে শিক্ষকে ক্লাছ কৰি থকা সময়ত স্থিৰ হৈ বহি থাকিবলৈ বা মনোযোগ দিবলৈ অসুবিধা পায়। যাৰ কাৰণে শিক্ষকে শিক্ষাদান কৰা বিষয় ইহঁতৰ বোধগম্য নহয়।

২। আমি নমুনা হিচাপে বাচিলো বা প্ৰায়বোৰ বিদ্যালয়ত বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিক্ষাৰ্থীসকলৰ বাবে অগম্য বুলি মত প্ৰকাশ কৰিছে, যিয়ে সহ-পাঠীসকলৰ লগত একে লগে শ্ৰেণীকোঠাত শিক্ষা গ্ৰহণ কৰাত বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সমূহে অসুবিধা পাই বুলি মত প্ৰকাশ কৰে।

৩। কিছুমান শিক্ষকে তেওঁলোকৰ শিক্ষাৰ্থীৰ বিকলাঙ্গতাৰ পৰিমাণৰ বিষয়ে অৱগত নহয়। এই পৰিস্থিতিয়ে শিক্ষক আৰু ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে দুয়োকে শিক্ষাদান আৰু শিক্ষা গ্ৰহণ প্ৰক্ৰিয়াত সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে।

৪। আন এটা সাধাৰণ সমস্যা হৈছে এক অপৰ্যাপ্ত পাঠ্যক্ৰম। বেছিভাগ শিক্ষা ব্যৱস্থাই সাধাৰণ বিকাশশীল শিক্ষাৰ্থীৰ বাবে পাঠ্যক্ৰম প্ৰস্তুত কৰে। এই সমূহ পাঠ্যক্ৰম প্ৰস্তুত কৰাত বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা শিশু সকলক বেছি গুৰুত্ব আৰোপ কৰা নহয়। সাধাৰণতে ব্যক্তি পাৰ্থক্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলৰ কাৰণে ব্যক্তিগত শিক্ষা আঁচনি প্ৰস্তুত কৰিব লাগে। কিন্তু আমাৰ বিদ্যালয়ৰ শিক্ষক সকলৰ উপযুক্ত প্ৰশিক্ষণ নথকাৰ কাৰণে এনে ব্যক্তিগত শিক্ষা আঁচনি প্ৰস্তুত কৰাত অসুবিধাৰ সন্মুখীন হয়।

৫। অধিকাংশ অভিভাৱকে তেওঁলোকৰ শিশুসকলৰ ভৱিষ্যতক লৈ শংকা প্ৰকাশ কৰিছিল। লগতে তেওঁলোক মত আগবঢ়াইছিল যে দুৰ্ভাগ্যবশতঃ মুল সুঁতিৰ সংস্কৃতি, বৈষম্য আৰু ষ্টেৰিও টাইপবোৰে (Stereotype) শাৰীৰিক আৰু মানসিক অক্ষমতা থকা আৰু সাধাৰণতে বিকাশশীল শিক্ষাৰ্থীসকলৰ মাজত বৃহৎ প্ৰতিবন্ধকতাৰ সৃষ্টি কৰিছে।

৬। অধিকাংশ অভিভাৱক আৰু বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশু সকলে মত প্ৰকাশ কৰিছিল যে বিদ্যালয়সমূহ শিক্ষাত অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ প্ৰক্ৰিয়া হোৱাৰ আগতেই নিৰ্মাণ কৰি উলিওৱা হৈছে। আৰু তাৰ কাৰণেই বিদ্যালয় সমূহৰ প্ৰতিটো বিল্ডিঙত ৰেম্প বা এলিভেটৰ নাই, স্টেণ্ডিং ডেস্ক নাই, বাথৰুম আৰু টইলেট লৈ যোৱা পদটো বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশুৰ কাৰণে দুৰ্গম।

বাধা বিহীন স্কুলৰ ধাৰণা ঃ

অন্তৰ্ভুক্তিকৃত শিক্ষাৰ সফলতা নিৰ্ভৰ কৰে। স্কুলৰ লগত জড়িত থকা ব্যক্তি সকলৰ মন-মানসিকতা আৰু সদিচ্ছাৰ ওপৰত। ইয়াৰ উপৰিও বিদ্যালয়খনত থাকিবলগীয়া সা-সুবিধাখিতিও এই শিক্ষাৰ সফলতা বহু পৰিমাণে নিৰ্ভৰ কৰে। তলত এখন বাধা বিহীন স্কুলৰ থাকিবলগীয়া বৈশিষ্ট্য সমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ল—

আন্তঃগাঠনি ক্ষেত্ৰত থাকিবলগীয়া সুবিধা সমূহ ঃ

১। CPWD য়ে প্ৰকাশ কৰা 'The Hand Book on Barrier foce Accessibility' ৰ মতে ভাৰতবৰ্ষত প্ৰায় ২ কোটিৰ অধিক শিশু বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা। ভাৰতবৰ্ষত থকা "The pensons with Disability Equal opportunety, Proleetion of Rights and Full Participation Act, 2016 ইত্যাদিয়ে ভাৰতবৰ্ষত থকা বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশুসকলৰ বিভিন্ন প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। এই আইন সমূহে ভাৰতবৰ্ষৰ চৰকাৰ আৰু স্থানীয় কৰ্তৃপক্ষক নতুন ঘৰ-দুৱাৰ সজাৰ ক্ষেত্ৰত কিছুমান নীতি-নিয়ম মানি চলিবলৈ বাধ্য কৰায়। কিন্তু বাস্তৱ ক্ষেত্ৰত দেখা যায় যে বিভিন্ন চৰকাৰী নিৰ্মাণ কাৰ্যত এই আইনসমূহৰ নীতি নিয়ম উপযুক্ত ভাৱে মানি নচলে। এই ক্ষেত্ৰত চৰকাৰ আৰু চৰকাৰী বিষয়া সমূহে আৰু উপযুক্ত ভাৱে কাম কৰাৰ হ'ল আছে।

১। স্কুলৰ প্ৰৱেশ — স্কুল বা বিদ্যালয়ৰ প্ৰৱেশ আকৰ্ষণীয় আৰু সহজে চিনাকীকৰণ কৰিব পৰা হ'ব লাগে। উপযুক্ত চাইন বৰ্ড, লাইট ইত্যাদি থাকিব লাগে। ইয়াৰ লগতে প্ৰৱেশ পথ সাধাৰণ আৰু বিশেষ ভাৱে প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলে ব্যৱহাৰ কৰিব পৰা বিধৰ হ'ব লাগে। বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলে আৰু সাধাৰণ শিশু সকলে যাতে এক প্ৰৱেশ পথ ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰে তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিব লাগে।

* বিদ্যালয়ৰ প্ৰৱেশত উপযুক্ত ৰেম্পৰ ব্যৱস্থা থাকিব লাগে।

* ৰাস্তা-পদুলি ত্ৰত্তুন্দ্ৰন্দ্ৰনস্তুনঙ্গঃন্ধড্ৰুন্তু বহল হ'ব লাগে থাকে প্ৰতিজন ল'ৰা-ছোৱালী সুবিধাজনক ভাৱে যাতায়াত কৰিব পাৰে।

* বিদ্যালয়ৰ শ্ৰেণী সমূহৰ ড্ডপ্সপ্সক্তজব্দ আৰু দ্ধ্বন্স্তুপ্সভ্র সমূহ বহল হ'ব লাগে আৰু সহজে খোলা-মেলা কৰিব পৰা বিধৰ হ'ব লাগে।

* শিশু সকলক স্কুলত অভিভাৱক সকল থোৱা আৰু নিবৰ সময়ত যাতে হুলস্থুলীয়া পৰিৱেশৰ সৃষ্টি নহয়
তাৰ বাবে এটা Waiting Shalter সাজিব লাগে।

* CC কেমেৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে যাতে কোনো ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ বিদ্যালয়ৰ প্ৰৱেশত অসুবিধাৰ সৃষ্টি হ'লে তাৰ উপযুক্ত সমাধান কৰিব পাৰে।

* সহজ আৰু চুটি Sign Board ৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে। লগতে Braille ৰ ব্যৱস্থাও থাকিব লাগে।

২। ক্লাছৰুমৰ বাহিৰৰ ব্যৱস্থা ঃ

ক্লাছৰুমৰ ভিতৰৰ দৰে ক্লাছ ৰুমৰ বাহিৰৰ সুবিধা খিনিও শিশুৰ শিক্ষাৰ ওপৰত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। বিদ্যালয়ৰ নিৰ্মাণ কাৰ্য্য চলি থকা অৱস্থাত বিদ্যালয়ৰ ক্লাছৰুমৰ বাহিৰত থাকিবলগীয়া সুবিধাসমূহ যাতে বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলে গ্ৰহণ কৰিব পাৰে তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিব লাগিব।

* 'কৰিদ'ৰ সমূহ যথেষ্ট বহল কৰিব লাগিব যাতে Wheelchair ব্যৱহাৰ কৰা ল'ৰা-ছোৱালী সমূহৰ একো অসুবিধা নহয়।

* Austistic Spectrum disorder থকা শিশু সকলৰ বাবে "Predictably Structure School Environ ment" থাকিব লাগে।

* মানসিক আৰু আচৰণগত সমস্যা থকা কিছুমান ল'ৰা-ছোৱালী কেতিয়াবা অকলে থাকি ভাল পায়। গতিকে তেনে শিশু সকলৰ কাৰণে তেনে ব্যৱস্থা থাকিব লাগে। (ক্লাছৰুমৰ বাহিৰত)

* বিদ্যালয়ৰ পাঠ্যক্ৰমৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ হ'ল খেলা-ধূলা। গতিকে বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুসকল যাতে বিদ্যালয়ৰ খেলা-ধূলা প্ৰক্ৰিয়াত অংশ গ্ৰহণ কৰিব পাৰে, তাৰ বাবে উপযুক্ত ব্যৱস্থা কৰিব লাগে।

এই ব্যৱস্থাই বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশুসকলক মানসিক শান্তি প্ৰদান কৰিব। ইয়াৰ উপৰিও খেল- ধেমালীৰ কাৰণে যেতিয়া 'equipment' ক্ৰয় কৰা হয়, তেতিয়া বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশু সকলৰ বাবে বিশেষ ভাৱে প্ৰস্তুত কৰা 'equipment' কিছুমান ক্ৰয় কৰিব লাগে।

৩। ট'য়লেট ঃ

বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশুসকলে সাধাৰণ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে ব্যৱহাৰ কৰা ট'য়লেট ব্যৱহাৰ কৰোঁতে অসুবিধাৰ সন্মুখীন হ'ব পাৰে। গতিকে সিহঁতৰ কাৰণে বিশেষ ট'য়লেটৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে।

* সিহঁতৰ বাবে তৈয়াৰ কৰিবলগীয়া ট'য়লেটৰ কালি 2000 mm x 1750mm হ'ব লাগে।

* ট'য়লেটৰ দৰ্জাৰ ব্যাস 90 mm হ'ব লাগে আৰু sliding open কৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে।

* ট'য়লেটৰ ফ্লৰ Slipresistant হ'ব লাগে।

* ট'য়লেটৰ ভিতৰত 'Horizontal Pall Bar' থাকিব লাগে, যাতে সিহঁতে সুবিধা জনক ভাবে তাত বহিব পাৰে আৰু প্ৰকৃতিক কাৰ্য সম্পাদন কৰিব পাৰে।

৪। টেকটাইল ফ্লৰ (Tactile Flooring) ঃ

টেকটাইল ফ্লৰ বৰ্তমান আধুনিক আন্তঃগাথনিৰ এক নতুন সংযোজন। টেকটাইল Slipresistmant ৰ বৈশিষ্ট আছে। এই ব্যৱস্থাৰ সহায়ত চকুত সমস্যা থকা বা অন্ধ শিশুৱে আন কোনো ব্যক্তিৰ সহায় নোলোৱাকৈ চলাচল কৰিব পাৰে।

৫। শিক্ষাদান পদ্ধতি ঃ

শিক্ষক সকলে শ্ৰেণীকোঠাত শিক্ষণ কাৰ্য সম্পাদন কৰি থকা সময়ত এটা কথা মনত ৰাখিব লাগিব যে, তেওঁৰ শিক্ষাদান প্ৰক্ৰিয়াই যাতে আটাইতকৈ দুৰ্বল শিশুকো স্পৰ্শ কৰে আৰু তেওঁৰ শিক্ষাৰ দ্বাৰা উপকৃত হয়।

* শিক্ষকে আধুনিক ICT সমাগ্ৰী, নতুন নতুন Software, learning material ব্যৱহাৰ কৰি শিশুক শিক্ষা প্ৰদান কৰিব লাগে। লগতে বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশু সকলৰ কাৰণে বিশেষ বিশেষ শিক্ষা-কৌশল আৰু পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰি সিহঁতৰ শিক্ষা (গুণগত) নিশ্চিত কৰিব লাগিব।

* শিক্ষকজনে শৈক্ষিক মূল্যায়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ গুৰুত্বপূৰ্ণ পদক্ষেপ ল'ব লাগিব। তেওঁ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ সকলৰ মুল্যায়ন কেৱল মাত্ৰ লিখিত পদ্ধতিত লোৱাৰ পৰিৱৰ্তে, মৌখিক পদ্ধতিও অৱলম্বন কৰিব লাগিব।

* বিদ্যালয়ৰ ৰন্ধাঘৰ বা Canteen বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলে যাতে বাধাবিহীন ভাবে উপযুক্তভাৱে ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰে তাৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে।

* গ্ৰন্থগাৰ আৰু পৰীক্ষাগাৰ সমূহ বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকলৰ কাৰণে ব্যৱহাৰ উপযোগী কৰি গঢ়ি তুলিব লাগে, যাতে ইয়াৰ ব্যৱহাৰ কৰি তেওঁলোক উপকৃত হয় আৰু সমাজত নিজকে প্ৰতিষ্ঠিত কৰিব পাৰে।

সামৰণি ঃ

বৰ্তমান সময়ত বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা থকা শিশু সকল সমাজত আটাইতকৈ অৱহেলিত হৈ আছে। চৰকাৰে বিভিন্ন ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিলেও, বৰ্তমান সময়লৈকে বিশেষ প্ৰয়োজনীয়তা শিশু সকলক আমি আমাৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাত অন্তৰ্ভুক্তিকৰণ কৰিব পৰা নাই। কেৱল মাত্ৰ শিক্ষক সকলৰ সক্ৰিয়তাই এই ক্ষেত্ৰত বিশেষ পৰিৱৰ্তন আনিব পাৰে বুলি বহুতো শিক্ষাবিদে ইতিমধ্যে ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে। সম্পূৰ্ণ অন্তৰ্ভুক্তিকৰণৰ কাৰণে শিক্ষকৰ লগতে বিষয়া, কৰ্মচাৰী, অভিভাৱক, চৰকাৰ, ৰাজনীতিবিদসকলৰ সৎ ভাবৰ প্ৰয়োজন আছে। বিদ্যালয়ৰ কৰ্মচাৰী তথা সদস্যসকলে এই ক্ষেত্ৰ বহু কৰিবলগীয়া আছে। এই গৱেষণা পত্ৰত উল্লেখ কৰা পৰামৰ্শ সমূহ বাস্তৱ ক্ষেত্ৰত প্ৰয়োগ কৰিব পাৰিলে সঁচাকৈ আমি বিশেষ প্ৰয়োজন থকা শিশু সকলৰ কাৰণে এখন বাধা বিহীন বিদ্যালয় (Barrier Prce School) গঢ়ি তুলিব পাৰিম। ❑

Reference -

Adair, B., Ullenhag, A., Keen, D., Granlund, M., and Imms, C. (2015). The effect of interventions aimed at improving participation outcomes for children with disabilities: a systematic review. Dev. Med. Child Neurol. 57, 1093-1104. doi: 10.1111/dmcn.12809

Advani, L. (2002). "Education : A Fundamental Right of Every Child Regardless of His/Her Special Needs". Journal of Indian Education; Special Issue on Education of Learners with Special Needs. New Delhi: NCERT.

Algozzine, Robert & Ysseldyke, James (2006). Teaching Students with Learning Disabilities.California:Corwin press. Alur, M. (2002). "Special Needs Policy in India", in S. Hegarty and M. Alue (eds), Education and Children with Special Needs: From Segregation to Inclusion. New Delhi : Sage.

Anita, B.K. (2000). Village Caste and Education. Jaipur : Rawat Publications.

Antil, L. R., Jenkins, J. R., Wayne, S.K., and Vadasy, P.F. (1998). Cooperative leairning : prevalence, conceptualizations, and the relation between research and practice. Am. Educ. Res. J. 35, 419–454. doi: 10.3102/00028312035003419

Antil, N. (2014), Inclusive Education: Challenges and Prospects in India, IOSR Journal of Humanities and Social Science, Volume 19, Issue 9, PP 85-89 e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN:2279-0845.www.iosrjournals.org www.iosrjournals.org

Applebee, A. (1998). Curriculum and Conversation : Transforming Traditions of Teaching and Learning. Reviewed by B. Day and T. Yarbrough, Journal of Curriculum Studies, 30 (3): 357-74.

Bailey, R., Armour, K., Kirk, D., Jess, M., Pickup, I., and Sandford, R. (2009). The educational benefits claimed for physical education and school sport : an academic review. Res. Papers Educ. 24, I-27. doi:10.1080/02671520701809817. Balasubramanian, K. (2004) The Helping Hand (A Short Story) about a Disabled Child). Hyderabed :Spark-India.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্য ঃ এটি বিশ্লেষণ

দুলেন হাজৰিকা
সহাকাৰী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
কৃষ্ণ কান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত
বিশ্ববিদ্যালয়, পিন-৭৮৭০২৩
৭০০২২০৩৬৪৭
dulenhazarika2@gmail.com

ড° ৰণ্টু দত্ত
সহকাৰী অধ্যপক, অসমীয়া বিভাগ
ত্যাগবীৰ হেম বৰুৱা মহাবিদ্যালয়
জামুগুড়ীহাট, কৰ্চানটোলা,
শোণিতপুৰ (অসম)-৭৮৪১৮৯
৮৪৭২৮৬১৩১১
rantudutta08@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

বিংশ শতিকাৰ প্ৰায় শেষৰ তিনিটা দশকৰ সময়চোৱাত অসমীয়া আধুনিক গীতৰ ধাৰাটোক সৃষ্টিধৰ্মিতাৰে অসমীয়া মানুহৰ সাংস্কৃতিক, সামাজিক, ঐতিহাসিক, প্ৰাকৃতিক আৰু ব্যক্তিগত জীৱনৰ আদৰ্শ,অনুভূতিৰ প্ৰকাশ কৰোঁতা এজন গীতিকাৰ হ'ল লীলা গগৈ। আকাশবাণীৰ স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত গীতিকাৰ লীলা গগৈয়ে তিনিখন গীতি-কবিতাৰ পুথি সাহিত্যৰ ভঁৰাললৈ আগবঢ়াই গৈছে। লীলা গগৈয়ে কেৱল অসমীয়া আধুনিক গীতি-সাহিত্যৰ ধাৰাটোলৈকে যে অৱদান আগবঢ়াইছিল এনে নহয়, অসমীয়া লোক-সংগীতৰ সংগ্ৰহ আৰু প্ৰচাৰৰ ক্ষেত্ৰতো তেখেতৰ অৱদান গুৰুত্বপূৰ্ণ। লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যৰ অন্যতম বিশেষত্ব হ'ল -গীতসমূহৰ মাজত অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ অভিব্যক্তিৰ প্ৰতিফলন। বিষয়ৰ বৈচিত্ৰ, লোক-জীৱনৰ আৱেগ অনুভূতি, গীতি-ব্যঞ্জক মধুৰতা আৰু ঐতিহ্য-প্ৰীতিয়ে লীলা গগৈৰ গীতক এনেদৰে সমৃদ্ধ কৰিছে যে তেখেতৰ গীতত অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ এনে এটি দিশ নাই যিটোক গীতেৰে চুই যোৱা নাই। অৰ্থাৎ লীলা গগৈয়ে যিকোনো ৰচনাৰ মাজেদি যিদৰে প্ৰতিমুহূৰ্তে অসমীয়া সমাজ-জীৱনক ধৰি ৰাখিব বিচাৰিছিল তেনেদৰে তেখেতে গীতকো এই ক্ষেত্ৰত এনে বৈশিষ্ট্যৰ সহজ অংশীদাৰ কৰি তুলিছিল। লোক-গীতৰ অপূৰ্ব ভংগীমা তথা শব্দৰে সজাই-পৰাই তোলা লোক-জীৱনৰ শব্দ-সুষমা আৰু অলংকাৰপূৰ্ণ মনোহাৰিত্বৰ বাবেই তেখেতৰ গীতসমূহে পাঠক-শ্ৰোতাক আকৰ্ষিত কৰে। লোক-সমাজ আৰু ঐতিহাসিক ঘটনাৰাজীয়ে লীলা গগৈৰ গীতক পটভূমি প্ৰদান কৰিছে। লোক-জীৱনৰ ভাব-ভাষা আৰু সুৰে তেখেতৰ গীতক অনন্যতা দান কৰি ৰাখিছে। এনে বৈশিষ্ট্যই লীলা গগৈৰ গীতক সমৃদ্ধ কৰিছে।

বীজ শব্দ ঃ লীলা গগৈ, গীতি-সাহিত্য,সমাজ-জীৱন।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

সাহিত্য সংস্কৃতিৰ ধাৰণাটো মানুহৰ বৌদ্ধিক বিকাশৰে পৰিণতি বুলি ক'ব পাৰি। মানুহৰ স্বাভাৱিক অনুভূতিবোৰৰ সমান্তৰালভাবেই সাংস্কৃতিক অনুভূতিবো বিকাশ সাধন হয়। 'সংগীত' মানুহৰ সাংস্কৃতিক মনটোৰে বহিঃপ্ৰকাশ। সভ্যতাৰ বিকাশৰ লগে লগে মানুহৰ ৰুচি-অভিৰুচিৰ পৰিবৰ্তন হ'ল আৰু লগে লগে সাংগীতিক মনটোৰ বিকাশ হ'বলৈ ধৰিলে। ফলস্বৰূপে সৃষ্টি হ'ল সংগীতৰ বিভিন্ন ধাৰাৰ। যান্ত্ৰিক সভ্যতাই গীতবোৰক নতুন ৰূপ প্ৰদান কৰিলে। বিভিন্ন মাধ্যমৰ দ্বাৰা গীতবোৰ বাণীবদ্ধ হ'ল আৰু গীতৰ বৈশিষ্ট্য অনুসৰি প্ৰত্যেকটো ধাৰাই স্বকীয় মৰ্যাদাৰে সুকীয়া পৰিচয়

লাভ কৰিলে। এই গীতবোৰৰ প্ৰত্যেকটো ধাৰাই মানুহৰ সাংস্কৃতিক, সামাজিক, ঐতিহাসিক, প্ৰাকৃতিক আৰু ব্যক্তিগত জীৱনৰ অনুভূতি, আদৰ্শ প্ৰকাশ কৰিলে। তাৰে ভিতৰত ঊনবিংশ শতিকাত জন্ম লাভ কৰা এটা সাংগীতিক ধাৰা হ'ল আধুনিক সংগীতৰ ধাৰা। আধুনিক সংগীতৰ জনকস্বৰূপ লক্ষ্মীৰাম বৰুৱাৰপৰা সাম্প্ৰতিক কাললৈকে অনেক গীতিকাৰে অসমীয়া আধুনিক গীতৰ ধাৰাটোলৈ অৱদান আগবঢ়াই গৈছে। অসমীয়া আধুনিক গীতৰ ধাৰাটোক সৃষ্টিধৰ্মিতাৰে অসমীয়া মানুহৰ সাংস্কৃতিক, সামাজিক, ঐতিহাসিক, প্ৰাকৃতিক আৰু ব্যক্তিগত জীৱনৰ অনুভূতি, আদৰ্শ প্ৰকাশ কৰোঁতা এজন গীতিকাৰ হ'ল লীলা গগৈ। লীলা গগৈৰ গীতসমূহৰ মাজেদি অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ ৰূপ-ছবি কেনেদৰে প্ৰকাশ ঘটিছে আৰু সেই প্ৰকাশে অসমীয়া গীতি-সাহিত্যক কেনেদৰে সমৃদ্ধ কৰিছে তাকে এনে অধ্যয়নৰ জৰিয়তে বিচাৰ কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ অভিব্যক্তি বুলিলে সমাজখনৰ ইতিহাস, লোক-জীৱনৰ মাত কথা, সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক চিন্তাধাৰাৰ প্ৰকাশ, কেনেধৰণৰ সামাজিক আৰু প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশে সমাজখন পৰিচালিত কৰি আহিছে বা ইয়াৰ পৃষ্ঠভূমি কেনেধৰণৰ এই সকলো কথা সামৰি লয়। লীলা গগৈৰ গীতত অসমীয়া সামাজিক-ৰাজনৈতিক ইতিহাস, সাংস্কৃতিক পৰম্পৰা কেনেদৰে প্ৰতিফলন ঘটিছে সেই সম্পৰ্কে এনে অধ্যয়ন দাঙি ধৰা হৈছে। তদুপৰি লীলা গগৈৰ অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ ছবি অংকিত গীতসমূহৰ আংগিক কলাকৌশল সম্পৰ্কেও অধ্যয়ন দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.০১ লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যৰ পৰিচয় ঃ

আধুনিক অসমীয়া গীতি-সাহিত্যক ভাৱ-ভাষা, লোক জীৱনৰ ৰূপ-ৰস, ঐতিহ্য চেতনা আৰু প্ৰাকৃতিক জীৱনৰ সমলেৰে সমৃদ্ধ কৰাসকলৰ ভিতৰত লীলা গগৈ (১৯৩০-১৯৯৪) অন্যতম। আকাশবাণীৰ স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত গীতিকাৰ লীলা গগৈৰ গীতি-কবিতাৰ পুথিসমূহ হ'ল গীতি মালঞ্চ (১৯৬৪), সোণালী (১৯৭৮), জোনাকৰ গীত (১৯৭৯)। লীলা গগৈয়ে কেৱল অসমীয়া আধুনিক গীতি-সাহিত্যৰ ধাৰাটোলৈকে যে অৱদান আগবঢ়াইছিল এনে নহয়, অসমীয়া লোক-সংগীতৰ পথাৰখনকো চহাই মৈয়াই শইচ ৰোপণ কৰি সেউজীয়া কৰি থৈ গৈছে। আধুনিক সমাজ-জীৱনৰপৰা ক্ৰমান্বয়ে হেৰাই যাবলৈ ধৰা ওমলা গীত, মণিৰাম দেৱানৰ গীত, বিভিন্ন ঘোষা বা ভকতি-নাম, টোকাৰী-নাম, দেহ-বিচাৰ গীত, লখিমী-সবাহৰ নাম, আইনাম, হুবচনী-পূজাৰ নাম, অপেচৰা-সবাহৰ নাম, ভেকুলী বিয়াৰ নাম, নিচুকনী গীত, নাহৰৰ গীত, চিকন সৰিয়হৰ গীত, ঘিণাই বৰফুকনৰ গীত, জয়মতী কুঁৱৰীৰ গীত, কমলা কুঁৱৰীৰ গীত, সেন্দুৰী-পমিলীৰ গীত, হুঁচৰিৰ গীত, নাঙলৰ গীত,যঁতৰৰ গীত, সাঁথৰ ইত্যাদি অসমৰ গাঁৱে-ভূঁয়ে সিঁচৰতি হৈ থকা লোক-গীতসমূহক সংগ্ৰহ কৰি প্ৰকাশ কৰিছিল। তাৰ ফচল স্বৰূপে লীলা গগৈয়ে *অসমীয়া লোক-গীত* (১৯৫৭) , *মণিৰাম দেৱানৰ গীত* (১৯৫৭), *জোনবাই এ এটি তৰা দিয়া* (১৯৬৮) শীৰ্ষক লোক-গীতি-কবিতা পুথি অসমীয়া গীতি-সাহিত্যৰ ভঁৰালক দি গৈছে। এফালে অসমীয়া লোক-গীতৰ সংগ্ৰহ আৰু আনফালে অসমীয়া আধুনিক গীতৰ সৃষ্টি, এই দুয়োটাতে লীলা গগৈ আছিল সিদ্ধহস্ত। লোক-গীতৰ ধাৰাটোৰ সৈতে নিৰৱচ্ছিন্নভাৱে জড়িত হৈ থকা আৰু লোক-গীতৰ ভাব-ভাষা-সুৰৰ আকৰ্ষণৰ বাবেই লীলা গগৈৰ গীতবোৰত লোক-গীতৰ ঠাঁচ এটা পৰিলক্ষিত হয়। লোক মনৰ খাপ খাব পৰাকৈ কোমল, ঘৰুৱা শব্দ-সুষমাৰ প্ৰয়োগ লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যৰ অন্যতম বিশেষত্ব।

অসমীয়া আধুনিক গীতৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰৰ ক্ষেত্ৰত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰই বিশেষ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। বিশেষকৈ বোলছবি, মঞ্চ, গ্ৰামোফ'নৰ পাছতে অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰই আধুনিক গীতৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰৰ বাবে এখন ক্ষেত্ৰ প্ৰদান কৰিলে; যাৰ জৰিয়তে বহু গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, কণ্ঠশিল্পী তথা সংগীতপ্ৰেমী শ্ৰোতাৰ জন্ম হ'ল। অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰই সাধাৰণ সংগীত-প্ৰেমী আৰু সংগীত চৰ্চাকাৰীৰ বাবে যি ক্ষেত্ৰ প্ৰদান কৰিলে তাৰ কাৰণেই অসমীয়া সংগীতে সুকীয়া বৈশিষ্ট্যৰে এটা স্বকীয় ধাৰা লাভ কৰিলে। লীলা গগৈ এনে এগৰাকী গীতিকাৰ যিগৰাকীয়ে অনাতাঁৰ মাধ্যমৰ জৰিয়তে তেখেতৰ দ্বাৰা ৰচিত গীতসমূহ প্ৰচাৰ কৰি অসমীয়া সংগীতজগতৰ সমৃদ্ধিত অৰিহণা আগবঢ়ালে। অসমীয়া লোক-কথা আৰু লোক-সংগীতৰ লগত নব্য সুৰৰ সংমিশ্ৰণ ঘটাই আধুনিক সংগীতলৈ নতুনত্ব আনিলে। স্বাধীনতাৰ পূৰ্বকালতে অসমীয়া সংগীতজগতৰ লগত পৰিচয় হৈ স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত অনাতাঁৰ কেন্দ্ৰৰ গীতিকাৰ হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰা লীলা গগৈৰ গীতবোৰ সাংগীতিক দিশৰপৰা যিপৰিচিতি আছে সেয়া একাষৰীয়া কৰিও কেৱল সাহিত্যৰ দিশৰপৰাও বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ। গীতি-সাহিত্যক সমৃদ্ধ কৰিব পৰা উপাদানৰ সমাহাৰ তেখেতৰ গীতত পোৱা যায়। সাহিত্যৰ অংগ হিচাপে লীলা গগৈয়ে

গীতৰ মাজেৰে অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিক তুলি ধৰিব বিচাৰিছে। অসমৰ প্ৰকৃতিজগতক মানৰ সমাজখনৰ সৈতে সাঙুৰি গীতবোৰ সজাই তুলিছে। লীলা গগৈয়ে সাহিত্যৰ অন্য বিধাসমূহ যেনে- উপন্যাস, কবিতা, প্ৰৱন্ধ আদিৰ জৰিয়তে লোক-সংস্কৃতিৰ অধ্যয়নক যিদৰে গৱেষণাৰ প্ৰৰ্যায়লৈ উন্নীত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল, ঠিক তেনেদৰে গীতসমূহৰ মাজেৰেও লোক-সংস্কৃতিক প্ৰতিফলন ঘটাবলৈ পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা চলাইছিল। সেয়ে তেখেতৰ গীতবোৰে অসমীয়া সাংস্কৃতিক উপাদানবোৰৰ লগতে লোক-মাতকথা, লোক-সুৰক তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যত অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ অভিব্যক্তি বিষয়ক অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ এনেধৰণৰ-

● লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যৰ পৰিচয় দাঙি ধৰি অসমীয়া গীতি-সাহিত্যলৈ তেখেতৰ অৱদান সম্পৰ্কে অধ্যয়ন দাঙি ধৰা।

● লীলা গগৈৰ গীতসমূহে অসমীয়া লোক-জীৱন তথা সমাজ-সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক ছবি আৰু গ্ৰাম্য জীৱনৰ ইতিহাস তথা অভিব্যক্তি ধৰি ৰখাত কেনেদৰে ভূমিকা পালন কৰিছে সেই সম্পৰ্কে আলোকপাত কৰা।

● লীলা গগৈৰ অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ ৰূপ-ছবি অংকিত গীতসমূহে অসমীয়া গীতি-সাহিত্যক কেনেদৰে সমৃদ্ধ কৰিছে তাক অধ্যয়নৰ জৰিয়তে মুল্যায়ন দাঙি ধৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

লীলা গগৈৰ গীতসমূহৰ মাজত অসমীয়া সমাজৰ অভিব্যক্তি বিচাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে গীতসমূহৰ মাজত অসমীয়া সমাজ-সাংস্কৃতিক ছবিখনৰ লগতে ৰাজনৈতিক-ঐতিহাসিক আৰু অন্যান্য বিভিন্ন দিশৰ সামগ্ৰিক ছবি এখন বিচাৰ কৰিবলগীয়া হয়। লীলা গগৈৰ গীতসমূহে অসমীয়া সমাজ-সাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপটটোক তুলি ধৰাত যি ধৰণৰ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে, তাক পোহৰলৈ অনাৰ ক্ষেত্ৰত এনে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে। তদুপৰি সাহিত্যিক তথা সাংস্কৃতিক কৰ্ম হিচাপে গীতে মানুহৰ মাজত জাতি-বৰ্ণ-ধৰ্মৰ পৰিধি ভাঙি এক সমন্বয় স্থাপন কৰাত গুৰুত্ব পায়। সাহিত্যিক-সাংস্কৃতিক সমন্বয়ৰ বাৰ্তাবাহক এনে গীতবোৰৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে অসমীয়া গীতি-সাহিত্যৰ নতুন নতুন দিশ উন্মোচন কৰাত এনে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যত অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ অভিব্যক্তি শীৰ্ষক গৱেষণা-পত্ৰৰ পদ্ধতি হিচাপে বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। লীলা গগৈৰ অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ ছবি অংকিত গীতসমূহৰ নিৰ্বাচিত অংশক ভাৱগত আৰু ৰূপগত দুয়োটা দিশৰ অধ্যয়নকে পৰিসৰে সামৰি লৈছে। গীতসমূহৰ মাজত সামাজিক ইতিহাসৰ লগতে সাহিত্যিক গুণৰাজিৰ বিচাৰ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

১.০১ লীলা গগৈৰ গীতত ইতিহাসৰ ৰূপছবি ঃ

লীলা গগৈয়ে অসম তথা ভাৰতৰ গৌৰৱ উজ্জ্বল ইতিহাস আৰু বিশেষ ঘটনা আৰু চৰিত্ৰক আধাৰ কৰি কিছুমান গীত ৰচনা কৰিছিল। এইবোৰৰ অনেকেই আহোম ৰাজত্বৰ সময়, স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময় আৰু দেশৰ বীৰ-বিৰাঙ্গনাৰ চৰিত্ৰ আৰু কাহিনীৰে ভৰা। এই চৰিত্ৰবোৰৰ ভিতৰত চুকাফা, গদাপাণি, জয়মতী, মূলাগাভৰু, লাচিত, মণিৰাম দেৱান, পিয়লি ফুকন, কনকলতা, মহাত্মা গান্ধী, নেতাজী আদি বিশেষভাবে উল্লেখযোগ্য। এনে চৰিত্ৰৰ উপৰি ঐতিহাসিক কাহিনীয়েও গীতবোৰৰ বিষয়বস্তু হিচাপে ঠাই পাইছে। লীলা গগৈয়ে অসমীয়া সাংস্কৃতিক জীৱনক তুলি ধৰিবলৈ সমসাময়িক সমাজখনৰ লগতে অসমীয়া প্ৰাচীন ইতিহাসৰো আশ্ৰয় লৈছিল। তাৰ জৰিয়তে অসমীয়া সমাজখনৰ স্বৰূপ দাঙি ধৰিব পাৰিছিল। অসমত আহোমসকলে সৰ্বাধিক ছশবছৰ ৰাজত্ব কৰাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত সেইসময়ৰ ইতিহাস, সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰিৱেশে বৰ্তমান সময়ৰ জনসাধাৰণৰ ওপৰত ক্ৰিয়া কৰা পৰিলক্ষিত হয়। লীলা গগৈৰ সাহিত্যত আহোম-যুগৰ ইতিহাস সম্বলিত অনেক ৰচনা পোৱা যায়। তেখেতৰ বিভিন্ন ৰচনাৰাজীলৈ লক্ষ্য কৰিলেই এই কথাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়। গীতো এই ক্ষেত্ৰত ব্যতিক্ৰম নহয়। লীলা গগৈৰ গীতি-সাহিত্যলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে- আহোম যুগৰ সমাজ-সংস্কৃতি, ৰাজনৈতিক পৰিৱেশ আৰু ঐতিহ্যই গীতিকাৰজনক আকৰ্ষিত কৰিছে। সেয়ে আহোম-যুগৰ ইতিহাসক বিভিন্ন ধৰণে আৰোপ কৰি গীতবোৰ সজাই তুলিছে।

'সৰগৰপৰা লাচিত ফুকনে
আকাশী বাণীৰে ক'লে;
সেই বাণী শুনি তপত বুকুত
শোণিতৰ সোঁত বলে।'

(লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী, পৃ.-৮০০)

উৰুঙা জেৰেঙা/ উৰুঙা উৰুঙা/ নামে বিষাদৰ ঢল / জয়াৰে কাহিনী / যুগলৈ বিয়পি / কলচীত জিলিকি ৰ'ল- শীৰ্ষক কলিটিত জয়মতীৰ ত্যাগৰ কাহিনী আৰু সেই ত্যাগে লোক-মনৰ মাজত কেনেদৰে প্ৰতিক্ৰিয়াৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে তাক গীতটিৰ মাজেদি প্ৰকাশ কৰিব বিচাৰিছে। ঐতিহাসিক চৰিত্ৰ 'জয়মতী'ক কৰুণতা, সাহস আৰু সৌৰ্য-বীৰ্যৰ প্ৰতীক হিচাপে গীতত অংকন কৰিছে। ঠিক একেদৰে ঐতিহাসিক চৰিত্ৰ মূলাগাভৰুৰ বীৰত্বব্যঞ্জক কাহিনীকো অসমীয়া মানুহৰ আগত দাঙি ধৰিছে। *মূলা গাভৰুৰ/ বুকুৰ সাহস/ শক্তি নাৰীৰ পূজ্য; দেশৰ কাৰণে / জাতিৰ কাৰণে / সেয়েহে ৰণৰ তুৰ্য*- গীতটিত অসমীয়া নাৰীৰ সাহসৰ এটি উদাহৰণ 'মূলাগাভৰু' তাক প্ৰতিপন্ন কৰিব বিচাৰছে।

দ্বিতীয় মহাসমৰ আৰু স্বাধীনতা আন্দোলনে সমকালীন সমাজখনত বাৰুকৈয়ে প্ৰভাৱ পেলাইছিল। এই প্ৰভাৱ সুদূৰপ্ৰসাৰী আছিল। কাৰণ বিংশ শতিকাৰ প্ৰথমাৰ্ধত ঘটা এইকেইটা ঘটনাৰ প্ৰভাৱ আজিও সাহিত্য-সংস্কৃতি তথা সমাজ আৰু ৰাজনীতিত পৰিলক্ষিত হয়। সাহিত্যৰ অন্তৰ্গত এটা ধাৰা হিচাপে গীতি-সাহিত্যৰো এই দুয়োটা ঘটনাৰ সৰ্বগ্ৰাসী প্ৰভাৱ দেখা যায়। দ্বিতীয় মহাসমৰৰ প্ৰভাৱ ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰপূৰ্বাঞ্চলতো পৰিছিল। কহিমালৈকে মহাসমৰৰ ধোঁৱা আৰু ছাঁয়ে গ্ৰাস কৰিছিল। *কহিমা দেখিছোঁ / দেখা নাই / মহাসমৰৰ ধোঁৱা আৰু ছাঁই। কহিমাৰ কথা জানিছোঁ/মুক্তিকামী মাতৃপ্ৰেমী / নেতাজীৰ বাণী শুনিছোঁ।* গীতফাকিত দ্বিতীয় মহাসমৰৰ এনে এটি দিনৰ কথাকেই ক'ব বিচাৰিছে। স্বাধীনতা আন্দোলনত অসমৰ অনেক লোকৰ শ্বহীদ হৈছিল। আন্দোলনত চৰমপন্থীসকলে ব্ৰিটিছসকলক খেদিবৰ নিমিত্তে অসমৰ গোলাঘাটৰ সৰুপথাৰত ৰেল বগৰাইছিল বুলি জনা যায়। ব্ৰিটিছসকলে তেনে অপৰাধত অভিযুক্ত কৰি কুশল কোঁৱৰক ফাঁচি দিছিল। তেনে এক ঐতিহাসিক ঘটনাক আশ্ৰয় কৰি লীলা গগৈয়ে গীত ৰচনা কৰিছে।[১] অসমৰ ইতিহাসত স্বাধীনতাৰ বাবে যুঁজি মৃত্যুবৰণ কৰা ঐতিহাসিক চৰিত্ৰক বিষয়বস্তু হিচাপে দাঙি ধৰিছে এনেদৰে-

টোকোলাই পাৰতে কুশল ফাঁচী গ'লে
অসমীৰ মুখলৈ চাই;
জেলৰে ভিতৰত আটায়ে কান্দিলে
ফাঁচীৰে বাতৰি পাই।

(*লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী*. পৃষ্ঠা-৮৫৪)

তদুপৰি অন্য ঐতিহাসিক চৰিত্ৰ জয়মতী, গদাপাণি, মণিৰাম দেৱান ইত্যাদিৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰি জনতাক দেশৰ হকে আগবাঢ়ি আহিবলৈ আহবান জনাইছে।

১.০২ লীলা গগৈৰ গীতত সমাজ-সাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপট ঃ

গীত হ'ল সমাজ-জীৱনৰ বস্তু। সেয়ে গীতত সমাজ একোখনৰ সামগ্ৰিক ছবিখন প্ৰতিফলিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। গীতিকাৰজন সমাজৰে একোজন ব্যক্তি। সেয়ে সেইজন ব্যক্তিৰ অনুভূতিও সমাজখনক বাদ দি পৰিচালিত নহয়। আধুনিক গীতত ব্যক্তি-জীৱনে ঠাই পায় বুলি কোৱা হয় যদিও সমাজখনক পৰিহাৰ কৰি কোনো গীতেই সৃষ্টি নহয়। সমাজ এখনৰ ছাঁ ব্যক্তিমনৰ ওপৰত পৰে অৰ্থাৎ সমাজে ব্যক্তিক গঢ় দিয়ে। সেয়ে সমাজ এখনৰ অতীত, বৰ্তমান আৰু ভৱিষ্যতৰ ঘটনাৰাজিৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱপুষ্ট হৈয়ে গীতিকাৰ এজনে . গীতৰ সৃষ্টি কৰে। সমাজখনৰ স্বৰূপ-প্ৰকৃতিয়ে ব্যক্তিমনৰ ওপৰত ক্ৰিয়া কৰে, ফলত ব্যক্তিয়ে তেনে অনুভূতিক গীতৰ ভাষাৰে প্ৰকাশ কৰে। সমাজক যি সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক বাতাবৰণে গতিশীলতা প্ৰদান কৰি আহিছে সেই একে বাতাবৰণে ব্যক্তিমনৰ ওপৰতো প্ৰভাৱ পেলায়। ফলত সেই বাতাবৰণ সাহিত্যৰো বাতাবৰণ হয়। গীত যিহেতু সাহিত্যৰ এটা অংশ সেয়ে সাংস্কৃতিক ছবি, ৰাজনৈতিক বাতাবৰণ, সমাজখনৰ অতীতৰ ছবি গীতিকাৰে তুলি ধৰে। অসমীয়া সমাজৰ নীতি-নিয়ম, লোকাচাৰ, সংস্কাৰ, জাতি-ভেদ, লোকবিশ্বাস ইত্যাদিয়ে অসমীয়া সমাজখনক অন্য সমাজতকৈ পৃথক কৰি তুলিছে। এইবিলাকৰ জৰিয়তেই অসমীয়া সমাজখনৰ সাংস্কৃতিক পৰিচয়ো পাব পাৰি। সমাজ আৰু সংস্কৃতি দুয়োটাৰ মাজত ঘনিষ্ঠ সম্বন্ধ আছে। সেয়ে সমাজখন তুলি ধৰিবলৈ যাওঁতে সংশ্লিষ্ট সমাজখনৰ সংস্কৃতি ওলাই পৰে বা অন্যধৰণে ক'লে সমাজ এখনৰ সাংস্কৃতিক মনটোক প্ৰতিফলন কৰিবলৈ যাওঁতে সমাজখনৰ স্বৰূপ ওলাই পৰে। তেনে বিভিন্ন সাংস্কৃতিক দিশসমূহক লীলা গগৈৰ গীতে দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে।

সংস্কৃতিৰ দুটা ফাল থাকে। এটা বাহ্যিক আৰু আনটো আভ্যন্তৰীণ। অসমীয়া বাহ্যিক সংস্কৃতিকো তেওঁলোকৰ মাত-কথা, সাজ-পাৰ, আ-অলংকাৰ, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, খাদ্যাভাস, জীৱন-ধাৰণৰ প্ৰণালীৰ জৰিয়তে চিনাক্ত কৰিব পাৰি। সাজপাৰ, অয়-অলংকাৰ সমাজ একোখনৰ সৌন্দৰ্য আৰু ব্যক্তিত্বৰো পৰিচায়ক। সমাজখনৰ অৰ্থনৈতিক দিশ, ঐতিহাসিক দিশ এইবোৰো সাংস্কৃতিক সমলসমূহে দাঙি ধৰে।

লীলা গগৈৰ গীতত অসমীয়া সাজপাৰ আৰু অয়-অলংকাৰৰ বিষয়ে দাঙি ধৰাৰ বিভিন্ন উদাহৰণ পোৱা যায়।

ক. *ডিঙিৰ সাতেসৰী / পাতে মেজাংকৰী / সোণৰ নেজেপতা বিৰি / ক'তনো এৰিলি / ৰূপহী গাভৰু / দেহাৰ চপাকলি চিৰী। (লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. পৃষ্ঠা- ৭৮৯)*

খ. *কাণৰে থুৰীয়া / উকা বাখৰুৱা/ ৰঙাকৈ জাংফাই কেৰু; ক'তনো এৰিলি / বুকুৰ ৰিহাখনি / সোণৰ লগুে কেৰু সৰু। -(লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. পৃষ্ঠা- ৭৮৯)*

গ. *আখৰৰ বাখৰে / সোণপতা জোনবিৰি, উপহাৰ পঠাওঁ মনে মনে /আবেগৰ সাতসৰী। - (লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. পৃষ্ঠা- ৭৯২)*

সমাজ এখনৰ সাংস্কৃতিক পৰিচয় প্ৰাপ্তিৰ বাবে উক্ত সমাজখনত পৰম্পৰাগত আৰু সাময়িকভাৱে চলি থকা উৎসৱ-অনুষ্ঠানে সহায় কৰে। বিভিন্ন সময়ত অসমীয়া আধুনিক গীতৰ গীতিকাৰসকলে অসমীয়া সমাজ জীৱন দাঙি ধৰিবলৈ উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ আশ্ৰয় লয়। লীলা গগৈৰ গীততো অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ অন্তৰ্গত বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ ছবিয়ে স্থান পালে। তাৰে ভিতৰত বিহু, বিবাহ, শংকৰদেৱে প্ৰবৰ্তন কৰা ভাওনা, তুচু পৰ্ব, কৰম পৰ্ব, আলি আই লিগাং ইত্যাদিৰ ছবিও দেখিবলৈ পোৱা গ'ল। *আজি মধুনিশা / মূৰত ওৰণি / আগত হোমৰ অগনি / ওৰণি তলত/ ছবি আছে যায় / কতনো নতুন পুৱণি-শীৰ্ষক গীত ফাকিত* অসমীয়া বিবাহ অনুষ্ঠানৰ ছবি দেখা গ'ল।

এটি গীতত গীতিকাৰে এই দেশৰ জয়ৰ হকে বুকুৰ তেজ দি আগবাঢ়ি আহি, দেশৰ গ্লানি উটুৱাই দিবলৈ আহ্বান জনাইছে। গীতিকাৰে কৈছে-

খৰ্গৰ সতে স্বৰ্গৰ পথ
আকৌ মুকলি কৰা,
বুকুৰ তেজেৰে গ্লানি উটুৱাই
ধুই লৈ য'ক ধৰা।

লীলা গগৈৰ 'এই নদী নিৰবধি', 'চিনাকি আকাশৰ অচিনাকি তৰালি', 'অযুত জোনাকী অচিন অচিন', 'এটি দুটি তৰা জ্বলে' আদি গীতত প্ৰকৃতিৰ ছবি আৰু 'ডিঙিৰ সাতেসৰী পাতে মেজাংকৰী', 'হাততো জেতুকা ভৰিতো জেতুকা', আদি গীতত সাংস্কৃতিক সমলেৰে অসমীয়া সাংস্কৃতিৰ ছবি এখন দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে।

এটি 'বঙলা'ৰ ছবি অংকন কৰি অসমীয়া মানুহৰ অৰ্থনৈতিক জীৱন প্ৰবাহক দাঙি ধৰিব বিচাৰিছে। ইংৰাজসকলৰ ৰাজত্বৰ সময়ছোৱাত অসমৰ সামাজিক তথা অৰ্থনৈতিক জীৱন অতি সংকটৰ ফাললৈ গতি কৰিছিল। দৈনন্দিন জীৱন নিৰ্বাহৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় অন্নৰ যোগাৰ কৰিবলৈকো যে অসুবিধা হৈছিল তাৰ ছবি এখন লীলা গগৈৰ গীতৰ জৰিয়তে পাব পাৰি। ছবিখনে অসমত ইংৰাজসকলৰ ৰাজত্বৰ সময়ৰ এখন ছবিৰ ইংগিত বহন কৰে।[২]

এইদৰে দেখা যায় যে লীলা গগৈৰ গীতত নৰ-নাৰীৰ প্ৰেম, ব্যক্তিগত আশা আকাংক্ষা, সমাজ-জীৱনৰ ছবি, অৰ্থনৈতিক ছবি আৰু লোক-সংস্কৃতিৰ সমলেৰে গীতবোৰ ভৰি আছে।

১.০৩ লীলা গগৈৰ গীতত ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপট ঃ

বৰ্তমান সময়ত দেখা যায় কোনো কোনো ৰাজনীতিবিদে বা তেনে এক শ্ৰেণীৰ নেতাই বিপ্লৱৰ নামত গীতিকাৰৰ ভাষাত 'শব্দৰ ফুলজাৰী' মাৰে আৰু সাধাৰণ জনতাৰ পৰা ৰাজনৈতিক মুনাফা আদাই কৰে। অসমীয়া আধুনিক গীতত তেনে ৰাজনৈতিক নেতা বা বিপ্লৱৰ নামত মিছা শ্লোগান দিয়া নেতাক সতৰ্ক কৰি দিছে এনেদৰে-

হে' বিপ্লৱী বন্ধুহঁত
গোৱা বিজয়ৰ গান ;
শব্দৰ ফুলজাৰি মাৰি
নেগাবা, নিদিবা শ্লোগান।

গীতিকাৰে একেটি গীততে গাঁৱলৈ ব'লা /বোকা পানী আছে / তেজ গলি হোৱা ঘাম /পানী গামোছাৰে পেট বান্ধি আছে /পৰিশ্ৰম অবিৰাম- এনেদৰে কৈ গ্ৰাম্য-জীৱনৰ দ্ৰৰিদ্ৰতাৰ সৈতে চিনাকি হৈ প্ৰকৃত ৰাজনীতিৰ দ্বাৰা জনসাধাৰণৰ উপকাৰ সাধিবলৈ ৰাজনীতিবিদৰ প্ৰতি আহবান জনাইছে। এই গীতটিত গীতিকাৰৰ ৰাজনৈতিক চেতনাৰ উমান পোৱা যায়। ৰাজনীতিৰ মেৰপাকত পৰি শাসনৰ নামত পুৰণি বৰ অসম ভাগ ভাগ হোৱাত গীতিকাৰে ক্ষোভ প্ৰকাশ কৰিছে, তাকে গীতত সাকাৰ ৰূপ প্ৰদান কৰিছে। গীতিকাৰে কৈছে যে -চেনেহৰ চিকুনী /অসমীৰ আইৰো /দেহা চিৰীচটা হ'ল। ইফালে শতৰু / সিফালে শতৰু / ক'তেনো তোৰে আপোন? সেই চিকুনী আই ভাগ ভাগ হৈ দেহাটো চিৰীছটা যেন হ'ল বুলি মনৰ দুখতে গীতত খেদ প্ৰকাশ কৰিছে। গীতটিত গীতিকাৰৰ ৰাজনৈতিক চেতনাৰ লগতে জাতীয় চেতনাৰো উমান পাব পাৰি।

*খৰ্গৰ সতে/ স্বৰ্গৰ পথ/ আকৌ মুকলি কৰা /বুকুৰ তেজেৰে/ গ্লানি উটুৱাই/ ধুই লৈ য'ক ধৰা।*গীতটিত আকৌ কৈছে- *আগবাঢ়া মোৰ/ দেশৰ জনতা/ সাহ বান্ধি দলে দলে/ ধ্ৰুৱ তৰা হই/ জয় আছে ৰই/ নেপাবা থমকি ৰ'লৈ।* - এই গীতটিত যদিও প্ৰত্যক্ষভাবে ৰাজনীতিৰ পটভূমি নাই যেন লাগে তথাপি গীতটিৰ ৰচনাত ৰাজনৈতিক পটভূমিয়ে যে ক্ৰিয়া কৰা নাই তাক নুই কৰিব নোৱাৰি। কাৰণ বৰ্তমান ৰাজনীতিৰ নামত হোৱা দুৰ্নীতিৰ বিপক্ষে থিয় দিবলৈকে যে গীতটিৰ মাজেদি আহ্বান জনাইছে তেনে এটি ভাবনাকে প্ৰতিফলন হৈছে।

লীলা গগৈৰ গীতত বিশ্ব ৰাজনীতিৰো প্ৰভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। দ্বিতীয় মহাসমৰৰ উত্তপ্ত ৰাজনৈতিক বাতাবৰণ আৰু ভাৰতীয় স্বাধীনতা সংগ্ৰামে দেশৰ সমাজ-জীৱনলৈ ভয়াৱহ পৰিস্থিতি কঢ়িয়াই আনিছিল। গীতিকাৰৰ ভাষাত দ্বিতীয় মহাসমৰৰ ধোঁৱা আৰু ছাঁইয়ে কহিমাকো চুই গৈছিল। তেনে এক ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপট দাঙি ধৰিছে এনেদৰে- *কহিমা দেখিছোঁ/ দেখা নাই / মহাসমৰৰ ধোঁৱা আৰু ছাঁই/ কহিমাৰ কথা জানিছোঁ /মুক্তিকামী মাতৃপ্ৰেমী / নেতাজীৰ কথা শুনিছোঁ/ সাম্ৰাজ্যবাদীৰ/ ৰক্ত তৃষাৰ / লেলিহান শিখা দেখিছোঁ / হেজাৰ জনৰ / বেজাৰ জড়িত /সমাধিৰ ফলি লেখিছোঁ। (লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী।* পৃষ্ঠা- ৮৩০)

১.০৪ লীলা গগৈৰ গীতত অসমীয়া লোকগীত আৰু বিশিষ্ট ব্যক্তিৰ প্ৰভাৱ ঃ

লীলা গগৈৰ গীতত লোক-কথা, লোকগীতৰ সুৰ আৰু ঐতিহ্যপ্ৰীতিৰ নিদৰ্শন পোৱা যায়। লীলা গগৈয়ে লোক-সাহিত্যৰ পৰা সমল আহৰণ কৰি ৰচনা কৰা অনেক গীত আছে। *'ৰ'দালি এ ৰ'দ দে/ আলি কাটি জালি দিম/বৰ পিৰা পাৰি দিম/ তাতে বহি ৰ'দালি/মন তোৰ ৰঙালি/ পোহৰ এচেৰেঙা দে।'* আকৌ, *'টুন টুন টুনী চৰাই/মোৰ ধান নেখাবি তোক দিম গোটা কৰাই।'* এনে ধৰণৰ গীতত ওমলা গীতৰ সুৰ আৰু কথাৰ স্পষ্ট চাপ পৰিলক্ষিত হয়। তদুপৰি ' জোনবাই এ এটি তৰা দিয়া', 'জোনাকী এ আহিবি ৰাতি' আদি গীতত নিচুকনি গীতৰ চানেকি দেখিবলৈ পোৱা যায়। ওমলা গীতৰ আৰ্হি গ্ৰহণ কৰি বহুতো গীত ৰচনা কৰিছে। *'টঙীঘৰৰ চাঙত বহি / ৰখোঁ পকা ধান ; হুৰ হুৰ বটা চৰাই /নেখাবি নেখাবি গুটি ধান; খাৰ যদি খা/তুঁহে পতান।'*শীৰ্ষক গীতটি ওমলা গীতৰ কথা আৰু সুৰৰ প্ৰলেপ দেখা যায়।

কোনো বিশেষ ব্যক্তিৰ কৰ্মপ্ৰেৰণাৰেও লীলা গগৈয়ে কিছু গীত ৰচনা কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। গীতিকাৰজনে পূৰ্বজ ব্যক্তিৰ জীৱন আৰু কৰ্মৰাজীক গীতেৰে প্ৰকাশ কৰে। চাওলুং চুকাফা, শংকৰদেৱ, মহাত্মা গান্ধী, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ প্ৰশস্তিৰ উদাহৰণ পোৱা যায়। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ প্ৰশস্তি সম্বলিত এটি গীতত বেজবৰুৱাৰ দেশপ্ৰেম আৰু দেশৰ প্ৰতি থকা অৱদানৰ কথা সোঁৱৰাই দি বেজবৰুৱাৰ জয়গান গাইছে।

জয়তু লক্ষ্মীনাথ
চিকুনি দেশতে আপুনি উপজি
মাতিলা সুৱদি মাত।

(লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. পৃষ্ঠা- ৮০৫)

১.০৫ লীলা গগৈৰ গীতৰ আংগিক কলাকৌশল ঃ

লীলা গগৈৰ গীত সাহিত্যিক সৌন্দৰ্যৰে পৰিপূৰ্ণ। ভাৱগত আৰু ৰূপগত এই দুয়োটা দিশতে লীলা গগৈৰ গীতৰ বৈচিত্ৰ পৰিলক্ষিত হয়। বিভিন্ন উপমা-ৰূপক আদি অলংকাৰৰ প্ৰয়োগেৰে গীতবোৰৰ সাহিত্যিক সৌন্দৰ্য পৰিস্ফুট হয়। *মোৰ মৰমৰ/ৰঙা সেন্দুৰৰ /ৰঙা ফোঁট নলবি, ৰঙা চেনেহৰ/ ৰঙা ইতিহাস/ আচলত আঁকি নলবি।* শীৰ্ষক গীতৰ কলিটিত যমক অলংকাৰৰ প্ৰয়োগ আকৰ্ষণীয়। যেতিয়া ওচৰা ওচৰিকৈ থকা দুটা একে শব্দ বেলেগ বেলেগ অৰ্থত ব্যৱহাৰ হয় তাক যমক অলংকাৰ বোলে। ইয়াত 'ৰঙা' চেনেহে মৰম আৰু 'ৰঙা' ইতিহাসে ইতিহাসৰ বিপদৰ সময়ৰ কথা বুজাইছে।

বিষয়বস্তু আৰু ভাৱবস্তুৰ ক্ষেত্ৰত লীলা গগৈৰ গীতত যিদৰে বৈচিত্ৰ্য দেখা যায় ঠিক তেনেদৰে আঙ্গিক কলা-কৌশলৰ ক্ষেত্ৰতো বৈচিত্ৰ্য পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া কবিতাৰ আঙ্গিকৰ দৰেই লীলা গগৈৰ আধুনিক গীততো বিভিন্ন ভাৱঘন প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ সমাহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। যাৰ ফলত তেখেতৰ গীতবোৰ সাহিত্যিক সৌন্দৰ্যৰে পৰিপূৰ্ণ হৈ সাহিত্যক নতুন আয়তন দান কৰে।

বলাকাই অলকাৰ বাট দেখুৱাই
নীলিম আকাশখনি পৰিছে শুৱাই
ৰাঙ্গনী বেলিৰ ৰেখা কোনেনো আঁকে,
শুকুলা ডাৱৰৰ ফাঁকে ফাঁকে।

গীতফাকিত গীতিকাৰৰ সূক্ষ্ম কল্পনাৰে বেলি ডুবো ডুবো সময়ৰ ছবিখন দাঙি ধৰিছে। প্ৰকৃতিৰ অপৰূপ সৌন্দৰ্য বৰ্ণিত ছবিখনত গীতিকাৰৰ সৌন্দৰ্য প্ৰিয় মন এটাৰ উমান

পাব পাৰি। মানুহৰ সপোনৰ সীমা নাই। এটি সৰু প্ৰজা; সেই প্ৰজাত শান্তিৰে জীৱন-যাপন কৰি সপোন দেখিবলৈ গীতিকাৰে চেষ্টা কৰে। তেনে এখন প্ৰাকৃতিক জীৱনৰ চিত্ৰৰে সৈতে আশা-আকাংক্ষাৰ ছবিখন দাঙি ধৰিছে ।[৩]

জীৱনৰ বিপদ সংকুল মুহূৰ্তক বৰ্ষণ মুখৰ মেঘৰ গৰ্জনৰ ছবিৰে তুলি ধৰিছে - *মেঘে গাজে ঘনে ঘনে / মন নাচে মনে মনে / ভৰ বাৰিষাৰ প্লাৱন নামিছে / উদাসী আকাশী মন / ৰিক্ত সিক্ত ভূমি।* শীৰ্ষক গীত ফাকিৰ জৰিয়তে। ঐতিহাসিক চৰিত্ৰৰ প্ৰতীক আৰু কাহিনীৰে স্বদেশ-প্ৰেম জাগ্ৰত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা গীতিকাৰ লীলা গগৈৰ গীতত প্ৰকৃতিৰ শান্ত-সমাহিত ছবিও দেখিবলৈ পোৱা যায়। জোন আৰু জোনাকীৰ/ কত মধু মিতালি, বিৰহিনী কেতেকীৰ/ স্মৃতিসনা গীতালি, সেই গীতৰ সুৰে সুৰে / গলি গলি গলালি; অ' সৰু জোনাকী তই / জ্বলি জ্বলি জ্বলালি।

মনৰ ভাৱ-অনুভূতিক গীতৰ মাধ্যমত প্ৰকাশ কৰোঁতে কিছুমান ব্যঞ্জনাৰ সহায়ত ভাৱাবেগক নিয়ন্ত্ৰিত কৰি উৎকৃষ্ট শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিব লগীয়া হয়। যিহেতু গীতৰ নিৰ্দিষ্ট সময়-সীমা বা গায়ন কাল থাকে। সেয়ে কিছুমান কথা প্ৰতীকৰ দ্বাৰা মনৰ অনুভৱখিনিক জুখি-মাখি সজাই-পৰাই অৰ্থাৎ ব্যঞ্জনাৰ সহায়ত ক'ব লগা হয়। কবিতা আৰু গীত একে শ্ৰেণীৰ সাহিত্য হিচাপে সংযত প্ৰকাশক গুৰুত্ব দিয়াৰ বাবেই যুগে যুগে কবিতা-গীত ইত্যাদিত প্ৰতীকৰ ব্যৱহাৰ হৈ আহিছে। প্ৰতীক ব্যৱহাৰে গীতক অৰ্থময় কৰি তোলাত সহায় কৰে। সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে সাহিত্যৰ যিদৰে পৰিৱৰ্তন ঘটিছে তেনেদৰে গীতত প্ৰয়োগ হোৱা প্ৰতীকৰো স্বৰূপ সলনি হৈ আহিছে। লীলা গগৈৰ গীতৰ ক্ষেত্ৰতো বিভিন্ন প্ৰতীক প্ৰয়োগৰ ব্যৱহাৰে গীতবোৰক অৰ্থৱহ কৰি তুলি সাহিত্যিক সৌন্দৰ্য প্ৰদান কৰাত সহায় কৰিছে।[৪]

এইপাৰে এজাৰৰ হেজাৰ বেজাৰ/ সেইপাৰে সোণাৰুৰ সোণ-আশা কাৰ/এইখন নদী, যৌৱন যাৰ নাম।।জীৱনটোক 'নদী' প্ৰতীকেৰে নামকৰণ কৰি তাৰ গতিক যৌৱনৰ লগত তুলনা কৰিছে। জীৱনৰ ঘাট-প্ৰতিঘাটৰ সমান্তৰালভাবেই নদীৰ পাৰে পাৰেও আশা-নিৰাশাৰ হেজাৰ-বিজাৰ ঘটনা ঘটি যোৱা বুলি গীতিকাৰে উল্লেখ কৰিছে। গীতিকাৰৰ ভাষাত অমানিশাৰূপী অন্যায় অশান্তিৰ কলীয়া ডাৱৰে সমাজখন খন্তেক সময়ৰ বাবে ছানি ধৰিলেও শান্তিৰ বাৰ্তাবাহক তৰাবোৰ আৰু দ্বিতীয়াৰ কাচিজোন অৰ্থাৎ পোহৰে সমাজখনক অন্যায়-অশান্তিৰপৰা উদ্ধাৰ কৰিবই। অমানিশাক অন্যায়ৰ প্ৰতীক আৰু জোন-তৰাক শান্তিৰ প্ৰতীকৰূপে গীতত অংকন কৰিছে -*অমানিশা আহি /অনিশাৰ বাবে /মাৰে যদি এটি জোন / নমৰে তথাপি অযুত তৰালি /দ্বিতীয়াৰ কাঁচিজোন* এই গীতফাকিৰ জৰিয়তে।

ঐতিহাসিক চৰিত্ৰক গীতিকাৰে শক্তিৰ প্ৰতীক হিচাপে গীতত অংকিত কৰি ঐতিহ্যপ্ৰীতি তথা স্বদেশপ্ৰেমৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰিব বিচাৰিছে এনেদৰে-

সৰগৰ পৰা লাচিত ফুকনে
আকাশী বাণীৰে ক'লে
সেই বাণী শুনি তপত বুকুত
শোণিতৰ সোঁত বলে।

(*লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী*।পৃষ্ঠা-৮০০)

দুৰ্নীতি, অশান্তিময় এই পৃথিৱীখনত শান্তিৰ বাণী প্ৰচাৰ কৰিবৰ বাবে গীতিকাৰে শান্তিৰ প্ৰতীক এজনী কপৌক উৰি উৰি শান্তি বিলাবলৈ আহ্বান জনাইছে *নিমাতী কপৌজনী যা উৰি উৰি যা, আন্ধাৰে আৱৰা এই পৃথিৱীত/ জোনাকৰে গীত গা*-শীৰ্ষক গীতৰ জৰিয়তে। তদুপৰি *চিলমিল টোপনি / জিলমিল আমনি/ আহিলে মলয়া চাটি; নিমাতী জোনাকী / সৰগ সজাবি/ দুবৰি দলিচা পাৰি*-শীৰ্ষক গীতত সৌন্দৰ্যপ্ৰিয় মনৰ উমান পাব পাৰি। লীলা গগৈৰ দ্বাৰা ৰচিত এনে বিভিন্ন গীতত সাহিত্যিক গুণৰাজিৰ আভাস পাব পাৰি।

২.০০ উপসংহাৰ ঃ

বিষয়ৰ বৈচিত্ৰ, লোক-জীৱনৰ আৱেগ অনুভূতি, গীতি-ব্যঞ্জক মধুৰতা আৰু ঐতিহ্য-প্ৰীতিয়ে লীলা গগৈৰ গীতক এনেদৰে সমৃদ্ধ কৰিছে যে তেখেতৰ গীতত অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ এনে এটি দিশ নাই যিটোক গীতেৰে চুই যোৱা নাই। অৰ্থাৎ লীলা গগৈৰ যিকোনো ৰচনাৰ মাজেদি যিদৰে প্ৰতিমুহূৰ্ত্ততে অসমীয়া সমাজ-জীৱনক ধৰি ৰাখিব বিচাৰিছিল তেনেদৰে তেখেতৰ গীতকো এই ক্ষেত্ৰত এনে বৈশিষ্ট্যৰ সহজ অংশীদাৰ কৰি তুলিছিল। লোক-গীতৰ অপূৰ্ব ভংগীমা তথা শব্দৰে সজাই-পৰাই তোলা লোক-জীৱনৰ শব্দ-সুষমা আৰু অলংকাৰপূৰ্ণ মনোহাৰিত্বৰ বাবেই তেখেতৰ গীতসমূহে পাঠক-শ্ৰোতাক বিমুগ্ধ কৰে। লীলা গগৈৰ এনে বহু গীত আছে যিবোৰত দেখা যায় প্ৰকৃতিৰ অনুপম বন্দনা। প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ যোগেদি প্ৰতিফলিত এনে প্ৰাকৃতিক বন্দনাই সমান্তৰালভাৱে লোক-জীৱনকো পোহৰাই তুলিছে। প্ৰকৃতিৰ বৰ্ণাঢ্য শোভাৰ কলাত্মক ৰূপ লীলা গগৈৰ গীতৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য হিচাপে চিনাক্ত কৰিব পাৰি।

১. কান্দে প্ৰভাৱতী / কান্দে পোনা দুটি / কুশলৰ মুখলৈ চাই / ফাঁচীৰে শালতে / হাঁহিলে কুশলে / অহিংসাৰ গীত গাই। (লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. পৃষ্ঠা- ৮৫৪)

২. বগীটিঙৰ বঙলা পকীকৈ নঙলা
বঙলাৰ কি কি নাও; বঙলাৰ চাহাবে
মঙলাক সুধিলে দুবেলা কেনেকৈ খাওঁ।
(*লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী.* পৃষ্ঠা- ৭৯৬)

৩. নিবিড় নিশাৰ তিমিৰে পৰশা
এই এটি সৰু নীড়,
দুটি সৰু পখী নিদ্ৰা বিভোৰ
চকুত স্বপ্ন ভিৰ। - *লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী।* পৃষ্ঠা-৮১৩.

৪.এই খন নদী বয় নিৰবধি যৌৱন যাৰ নাম
এইখন নদী গতি আৰু গতি
যৌৱন অভিসাৰ।
- *লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী।* পৃষ্ঠা- ৭৮৯

অন্য অৰ্থত ক'ব পাৰি দৃশ্যমান প্ৰকৃতিজগতক লীলা গগৈয়ে ভাৱৰ ব্যঞ্জনাৰে তুলি ধৰে। লীলা গগৈয়ে গীতত সৌন্দৰ্যৰ মেলা পাতে। লোক-সমাজ আৰু ঐতিহাসিক ঘটনাৰাজীয়ে লীলা গগৈৰ গীতক পটভূমি প্ৰদান কৰিছে। লোক-জীৱনৰ ভাব-ভাষা আৰু সুৰে তেখেতৰ গীতক অনন্যতা দান কৰি ৰাখিছে। এনে বৈশিষ্ট্যই লীলা গগৈৰ গীতক সমৃদ্ধ কৰিছে আৰু সেয়ে অসমীয়া গীতি-সাহিত্যত লীলা গগৈয়ে স্থান অধিকাৰ কৰি আহিছে। ❑

প্ৰাসঙ্গিক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য সমল ঃ

লীলা গগৈৰ ৰচনাৱলী. ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১২, ছপা.

গৌণ সমল ঃ

আলি, তফজ্জুল. *আধুনিক গীতৰ সংগীতকাৰ সকল.* যোৰহাট ঃ অসম সাহিত্য সভা, ২০০৫. ছপা.

গগৈ,ছবি. *অসমীয়া গীতিসাহিত্যৰ সমাজশাস্ত্ৰীয় মূল্য.* গুৱাহাটী ঃ পৃথিৱী প্ৰকাশন, ২০১১.ছপা

গোস্বামী,সুৰেণ. *আধুনিক গীতত দৃষ্টিপাত.* গুৱাহাটী ঃ জয়া প্ৰেছ, ১৯৯৫. ছপা.

ডেকা হাজৰিকা, কৰবী. সম্পা. *সামাজিক-সাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপটত অসমীয়া গীত আৰু গীতি-কবিতা.*
গুৱাহাটী ঃ সাহিত্য অকাডেমী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১১. ছপা.

দত্ত, বীৰেন্দ্ৰনাথ. *অসমীয়া সংগীতৰ ঐতিহ্য.* যোৰহাট ঃ অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭৭. ছপা.

দাস, শোণিত বিজয়. মুনীন বায়ন, *কথাবৰেণ্য* ১০০ সম্পা. গুৱাহাটী ঃ কথা প্ৰকাশ, ২০০৬. ছপা.

নেওগ, মহেশ্বৰ. *অসমীয়া গীতি সাহিত্য.* গুৱাহাটী ঃ নেওগ প্ৰকাশ ন্যাস, ২০০৮. ছপা.

বৰুৱা, প্ৰহলাদ কুমাৰ. *আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ গতি বৈচিত্ৰ্য.* ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০০০. ছপা.

অসমীয়া লোক সাহিত্য. সম্পা ডিব্ৰুগড় ঃ অসম সাহিত্য সভা, ২০০১. ছপা.

ভূঞা, সৰলা. *অসমীয়া গীতি-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা.* গুৱাহাটী ঃ অসম সাহিত্য সভা, ২০১১. ছপা

মহন্ত, কেশৱ. "অসমীয়া গীতি-সাহিত্য আৰু আকাশবাণী ডিব্ৰুগড়" সম্পা. লুৎফুৰ ৰহমান, 'স্মৰণিকা' আকাশবাণী গুৱাহাটীঃ ১৯৯৮. সোণালী জয়ন্তী বৰ্ষ, ছপা.

.শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত.* গুৱাহাটী ঃ সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০০৬. ছপা.

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

আন্তোন চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু ঃ এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ

(নিৰ্বাচিত চুটিগল্পৰ উল্লেখনসহ)

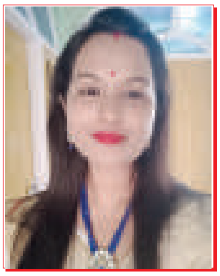

চুইটি বৰা
সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
দুধনৈ মহাবিদ্যালয়, পিন-৭৮৩১২৪
গৱেষক, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
৮৮৭৬৪৭৭৩০১
chuitytez@gmail.com,

ড° বিৰিঞ্চি কুমাৰ দাস
অধ্যক্ষ
বৰপেটা ছোৱালী মহাবিদ্যালয়
৭০০২১৪৩৩২৫

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সাম্প্ৰতিক সাহিত্যৰ গতিশীল বিষয়সমূহৰ ভিতৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয় হৈছে তুলনামূলক সাহিত্য। তুলনামূলক সাহিত্য সৃজনীশীল সাহিত্যৰ অন্যান্য শাখাসমূহৰ দৰে কোনো সৃজনীশীল সাহিত্য নহয়। তুলনামূলক সাহিত্য হৈছে সাহিত্য মূল্যায়নৰ এটি পদ্ধতি। য'ত সাধাৰণতে দুই বা ততোধিক ভাষাৰ সাহিত্য কৰ্মৰ মাজত পৰিলক্ষিত হোৱা বিভিন্ন দিশৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্যসমূহ পদ্ধতিগতভাৱে তুলনা কৰা হয়। তুলনামূলক সাহিত্যত ৰাষ্ট্ৰীয় সাহিত্যৰ পৰিধি অতিক্ৰম কৰি বিশ্ব সাহিত্যৰ আঁওতাত সাহিত্যৰাজিৰ বিশ্লেষণ কৰা হয়। আধুনিক গল্পসাহিত্যৰ এগৰাকী আগশাৰীৰ গল্পকাৰ আন্তোন পাভ্‌লোভিচ চেখভ (১৮৬০-১৯০৪) আৰু অসমীয়া গল্পকাৰ শীলভদ্ৰ (১৯২৪-২০০৮)ৰ গল্পৰ মাজত বিভিন্ন সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়। এই গৱেষণা পত্ৰখনত চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ সম্পৰ্কে এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ তুলনা, চুটিগল্প, বিষয়বস্তু, আংগিক, বাস্তৱতা।

১.০০ অৱতৰণিকা ঃ

মানৱ মনৰ চিন্তন-কৰ্ষণৰ সৈতে জড়িত এটি বৌদ্ধিক প্ৰক্ৰিয়া হৈছে তুলনা। 'তুলনা' শব্দটিৰ সমাৰ্থক শব্দ হ'ল— ৰিজনি বা সদৃশতা। দুটা বা ততোধিক বস্তু একে সমতলত ৰাখি তাৰ মাজত পৰিলক্ষিত সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য বিচাৰ কৰাই হৈছে তুলনা। সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত উনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম ভাগৰ পৰাহে তুলনামূলক প্ৰক্ৰিয়াক উদ্দেশ্যপ্ৰণোদিতভাৱে জড়িত কৰা হয়। ১৮৪৮ চনত মেথিউ আৰ্নল্ডে পোন-প্ৰথমবাৰৰ বাবে ইংৰাজী সাহিত্যত 'Comparative Literature' অভিধাটো ব্যৱহাৰ কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত এটি সুকীয়া বিষয় বিচাপে বিশ্ব সাহিত্যত চৰ্চা লাভ কৰা তুলনামূলক সাহিত্য কিন্তু কোনো সৃজনীশীল সাহিত্য নহয়। ই সাহিত্য মূল্যায়নৰ এটি পদ্ধতিহে, য'ত দুই বা ততোধিক ভাষাৰ সাহিত্যকৰ্মৰ মাজত প্ৰতিফলিত বৈশিষ্ট্যৰাজি প্ৰণালীৱদ্ধভাৱে তুলনা কৰা হয়। সেয়ে তুলনামূলক সাহিত্য সম্পৰ্কে মত আগবঢ়াই নগেন শইকীয়াই কৈছে, "তুলনামূলক সাহিত্য বুলি কোনো সৃষ্টিশীল সাহিত্য নাই। তুলনামূলক সাহিত্য বুলি কোনো সাহিত্য তত্ত্ব নাই, ই হ'ল সাহিত্য বিচাৰৰ এটা পদ্ধতি।"[১] তুলনামূলক সাহিত্যই দেশ-কাল-ভাষা-সংস্কৃতি সকলোৰে পৰিধি অতিক্ৰম কৰি বিশ্বৰ

সকলো সাহিত্য কৰ্মকে সমস্থানত ৰাখি সাহিত্যৰাজিৰ মাজত অন্তৰ্নিহিত বিভিন্ন বৈশিষ্ট্যৰাজিৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য নিৰূপণ কৰে। মনঃস্তাত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা বিশ্লেষণ কৰি চালে,সমগ্ৰ বিশ্বৰে মানৱ জাতিৰ চিৰন্তন মানৱীয় অনুভূতি-অভিব্যক্তিসমূহৰ মাজত এক পাৰস্পৰিক সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়। তৎসত্বেও ভাষিক, আঞ্চলিক, ভৌগোলিক, সাংস্কৃতিক আদি ভিন্নতাৰ বাবেই বিশ্বসাহিত্যত বৈচিত্ৰ্যতাৰ সমাহাৰ ঘটে। আৰু তুলনামূলক সাহিত্য পদ্ধতিত সাহিত্যৰাজিৰ এই সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্যসমূহেই বিজ্ঞানসন্মত আৰু পদ্ধতিগতভাৱে অধ্যয়ন কৰা হয়।

"আন্তোন চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু ঃ এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ" শীৰ্ষক আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত ঊনবিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয়াৰ্দ্ধত তথা শেষৰ দশক দুটাত গল্প ৰচনা কৰি ৰুছ সাহিত্যৰ লগতে সমগ্ৰ বিশ্ব সাহিত্যত এক অন্যান্য স্থান দখল কৰা সাহিত্যিক গল্পকাৰ আন্তোন পাভ্‌লোভিচ চেখভ (১৮৬০-১৯০৪) আৰু অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী আগশাৰীৰ গল্পকাৰ শীলভদ্ৰ (১৯২৪-২০০৮)ৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তুৰ মাজত এক তুলনামূলক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

২.০০ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

"আন্তোন চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু ঃ এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ" শীৰ্ষক আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্যৰাজি হ'ল—

(ক) ৰুছ গল্পকাৰ আন্তোন চেখভ আৰু অসমীয়া গল্পকাৰ শীলভদ্ৰৰ জীৱন আৰু সাহিত্যকৃতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

(খ) চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তুৰ সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰা।

৩.০০ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত ৰুছ গল্পকাৰ আন্তোন চেখভ আৰু অসমীয়া গল্পকাৰ শীলভদ্ৰৰ কিছু নিৰ্বাচিত গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ মাজত পৰিলক্ষিত হোৱা সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য সম্পৰ্কে এক তুলনাত্মক বিশ্লেষণ আগবঢ়াবলৈ চেষ্টা কৰা হ'ব। লগতে চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ সাহিত্যকৃতি সম্পৰ্কেও কিছু আভাস গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত দাঙি ধৰা হ'ব।

৪.০০ পদ্ধতি ঃ

"আন্তোন চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু ঃ এটি তুলনাত্মক বিশ্লেষণ" শীৰ্ষক আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ তুলনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

৫.০০ মূল বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

৫.০১ আন্তোন চেখভৰ পৰিচয় আৰু সাহিত্যকৃতি ঃ

ৰুছ সাহিত্যৰ লগতে আধুনিক বিশ্বসাহিত্যৰ এগৰাকী আগশাৰীৰ গল্পকাৰ হ'ল আন্তোন পাভ্‌লোভিচ চেখভ (১৮৬০-১৯০৪)। তেওঁৰ জন্ম হৈছিল ৰুছ দেশৰ দক্ষিণাঞ্চলৰ এখন সৰু সাগৰীয় বন্দৰ নগৰী তাগানৰগত। দৰিদ্ৰ পৰিয়ালৰ সন্তান চেখভে কম বয়সৰ পৰাই নিজৰ পঢ়া-শুনাৰ খৰচ উলিয়াবৰ বাবেই সাহিত্য চৰ্চা আৰম্ভ কৰিছিল। ২০ বছৰ বয়সতে চেখভে জীৱনৰ প্ৰথমটো গল্প 'পণ্ডিতসম প্ৰতিবেশীলৈ পত্ৰ' (A letter to a learned Neighbor) ৰচনা কৰিছিল। জীৱনৰ প্ৰথম স্তৰত চেখভ এগৰাকী হাস্য-ব্যংগ গল্পকাৰ হিচাপেহে ৰুছ সাহিত্যজগতত পৰিচিত হৈছিল। জীৱনৰ প্ৰথম স্তৰত প্ৰকাশিত তেওঁৰ দুয়োখন গল্পসংকলন ক্ৰমে 'টেলছ অৱ মেলপমিন' (The Tales of Malpomene) আৰু 'মটলি ষ্ট'ৰিছ (Motley Stories)ত অন্তৰ্গত গল্পসমূহে হাস্য-ব্যংগভাৱে সমসাময়িক সমাজৰ বিভিন্ন স্বৰূপ উদঙাই দেখুৱাইছিল। কিন্তু পৰৱৰ্তী সময়ত চেখভে হাস্য-ব্যংগৰ পৰিৱৰ্তে গভীৰ মনোবৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰেহে গল্প লিখিবলৈ লয়। ঊনবিংশ শতিকাৰ ৰুছ দেশৰ ৰাজনৈতিক সামাজিক অস্থিৰ পৰিৱেশৰ মাজতো চেখভে গভীৰ প্ৰত্যয়ৰে গল্পৰ মাজত ৰোপণ কৰিছে আশাবাদৰ বীজ। সমসাময়িক সমাজখনৰ ৰাজনৈতিক অথবা অৰ্থনৈতিক চিন্তাধাৰাৰ পৰিৱৰ্তে মানৱ জীৱনৰ দুৰ্বলতা আৰু নিঃসংগতাৰ বেদনাহে পৰিস্ফুট হৈ উঠে তেওঁৰ গল্পৰাজিৰ মাজেৰে। পাঁচশতাধিক গল্প ৰচনা কৰা গল্পকাৰগৰাকীয়ে অতি সংযমী আৰু পৰিণত শৈলীৰে বাস্তৱ জীৱনৰ সৰু বৰ ঘটনাসমূহ গল্পৰ মাজেৰে সাৰ্থক ৰূপত তুলি ধৰিছিল। এটি নিতান্তই সাধাৰণ ঘটনাকে অসাধাৰণত্ব আৰোপ কৰি গল্পৰ মাজেৰে ফুটাই তোলাও আছিল চেখভৰ গল্পৰ এটি বৈশিষ্ট্য।

৫.০২ শীলভদ্ৰৰ পৰিচয় আৰু সাহিত্যকৃতি ঃ

আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী লেখত ল'বলগীয়া গল্পকাৰ হ'ল— শীলভদ্ৰ (১৯২৪-২০০৮)।

অসমীয়া সাহিত্যত 'Late Starter' গল্পকাৰ হিচাপে খ্যাত শীলভদ্ৰৰ প্ৰকৃত নাম— ৰেৱতী মোহন দত্তচৌধুৰী। প্ৰায় চল্লিশ বছৰ বয়সত 1964 চনত 'অসম বাতৰি'ৰ পূজা সংখ্যাত প্ৰকাশিত 'অভিযোগ' গল্পটিৰ জৰিয়তে শীলভদ্ৰই গল্পকাৰ হিচাপে যাত্ৰা আৰম্ভ কৰে। কিছু পলমকৈ গল্প লিখিবলৈ আৰম্ভ কৰিলেও শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু, উপস্থাপন ৰীতি, আংগিক, ভাষাশৈলী সকলো দিশতে এক অভিনৱত্ব পৰিলক্ষিত হয় আৰু এই অভিনৱত্বই শীলভদ্ৰৰ গল্পক প্ৰদান কৰে এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য। 'বাস্তৱ', 'সমুদ্ৰতীৰ', 'তৰুৱা কদম', 'মধুপুৰ বহুদূৰ' ইত্যাদি তেইশখন গল্পসংকলন ৰচনা কৰা গল্পকাৰ গৰাকীৰ গল্পৰাজি আছিল মূলত বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ দ্বাৰা পুৰিপুষ্ট। প্ৰায় চাৰিশতাধিক গল্প ৰচনা কৰা শীলভদ্ৰৰ গল্পৰাজি আছিল প্ৰৌঢ়ত্বৰ এক বিশেষ জিজ্ঞাসু দৃষ্টিভংগীৰে ৰচিত পৰম্পৰা আৰু আধুনিকতাৰ সংমিশ্ৰণৰ বুদ্ধিদীপ্ত শৈলীৰ গল্প। বাস্তৱ জীৱনৰ প্ৰতিটো সৰু-বৰ ঘটনাকে কলাত্মকৰূপত গল্পৰ মাজেৰে উপস্থাপন কৰা শীলভদ্ৰৰ গল্প কোৰাৰ শৈলীও আছিল অনাড়ম্বৰ, যিয়ে পাঠকক তেওঁ গল্পৰ প্ৰতি সততে আকৰ্ষিত কৰি ৰাখিছিল।

৫.০৩ চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ তুলনা ঃ

সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোণ। মানৱ জীৱনৰ চিৰন্তন আৱেগ-অনুভূতিৰাজি কলাত্মক ৰূপত প্ৰতিফলিত হয় সাহিত্যৰ মাজেৰে। সেয়ে স্থান-কাল-ভাষা-সংস্কৃতি ইত্যাদি বিভিন্ন বৈচিত্ৰ্যতাৰ মাজতো সমগ্ৰ বিশ্বসাহিত্যৰ মাজত অনুভূত হয় এক ৰহস্যময় ঐক্যতা। সেইবাবেই হয়তো ভিন্ন দেশৰ, ভিন্ন পটভূমি, ভিন্ন ভাষাত ৰচিত হ'লেও ৰুছ গল্পকাৰ চেখভ আৰু অসমীয়া গল্পকাৰ শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু চৰিত্ৰ, আংগিক আদিৰ ক্ষেত্ৰত বহুখিনি সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়। গল্প ৰচনা কালৰ দিশৰ পৰা দুয়োজন গল্পকাৰৰ মাজত যথেষ্ট ব্যৱধান থকা সত্বেও দুয়োগৰাকীৰ গল্পৰ মিল-অমিলসমূহ অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

চেখভৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু আছিল বাস্তৱধৰ্মী। বাস্তৱ জীৱনত সংঘটিত সৰু-বৰ প্ৰতিটো ঘটনাৰ পৰাই চেখভে গল্পৰ বিষয়বস্তু সংগ্ৰহ কৰিছিল। এইক্ষেত্ৰত শীলভদ্ৰও ব্যতিক্ৰম নাছিল। নিজৰ জীৱনৰ বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰাজিকে তেওঁ গল্পত কলাত্মক ৰূপ প্ৰদান কৰা দৃষ্টিগোচৰ হয়। নিজৰ গল্পৰ পটভূমি সম্পৰ্কে শীলভদ্ৰই কৈছিল,

"শক্তিমানৰ নিৰংকুশ শক্তিৰ আস্ফালন দেখিছোঁ, বিত্তবানৰ দম্ভ দেখি আছোঁ। নিষ্পেষিত জনগণৰ হাঁহাকাৰো শুনি আছোঁ আৰু আশাহত যৌৱনৰ ক্ষোভ আৰু ক্ৰোধৰ বিচিত্ৰ প্ৰকাশ। মনত বিপৰীতমুখী অনুভূতিৰ উদয় হৈ থাকে, তাকেই প্ৰকাশ কৰাৰ অক্ষম চেষ্টা কৰি আছোঁ। এই হ'ল মোৰ গল্প লিখাৰ পটভূমি। প্ৰতিজন গল্প লেখকে বোধহয় ইয়াকেই কৰি থাকে। যিজন লেখকৰ গল্পত এই অনুভূতিবোৰৰ যিমান নিৰ্ভুলভাৱে প্ৰতিফলিত হয় তেওঁ সিমান সাৰ্থক গল্পকাৰ।"[2]

শীলভদ্ৰৰ 'মধুপুৰৰূপ বহুদূৰ', 'আকৌ মধুপুৰ', 'চিঠি', 'জিতেনক বিচাৰি' ইত্যাদি গল্পৰ মাজেৰে বাস্তৱ জীৱনৰ এক স্পষ্ট চিত্ৰ যথাযথভাৱে পৰিস্ফুট হয়। তেনেদৰে 'বহুৰূপী' (Clemeleon), 'কেৰাণীৰ মৃত্যু' (Death of a Clerk), 'বক্তা' (The Orator), 'মুখা' (The Mask), ইত্যাদি গল্পৰ জৰিয়তেও চেখভে তদানীন্তন সমাজৰ বাস্তৱ দিশটো স্পষ্ট ৰূপত গল্পৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত কৰা পৰিলক্ষিত হৈছিল। এক নিজস্ব শৈলীৰে চেখভে বাস্তৱ জীৱনৰ সাধাৰণ মূহুৰ্ত এটাক কলাত্মকৰূপত গল্পত উপস্থাপন কৰিছিল। ৰুছ সাহিত্যিক মাক্সিম গৰ্কী (১৮৬৪-১৯৩৬)য়ে চেখভৰ সম্পৰ্কে লিখা এটি সমালোচনাত কৈছিল—

"..........জীৱনৰ সামান্য, তুচ্ছ ঘটনাবিলাকৰ মাজত লুকাই থকা কাৰুণ্যক ইমান স্পষ্ট ৰূপত সহজাত প্ৰজ্ঞাৰে চেখভৰ দৰে আন কোনেও উপলব্ধি কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা নাছিল। ইয়াৰ আগেয়ে কোনো এজন লেখকেই মলিন, বিশৃংখল, মধ্যবিত্ত জীৱনৰ লজ্জাজনক আৰু পুতৌজনক, কথাবোৰৰ ইমান নিৰ্মম আৰু সঁচা প্ৰতিচ্ছবি মানুহৰ আগত দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হোৱা নাছিল।"[3]

চেখভৰ সাহিত্যিক জীৱনৰ প্ৰথম স্তৰৰ গল্পৰাজি আছিল হাস্য-ব্যংগাত্মক। তদানীন্তন ৰুছ সমাজখনৰ আভিজাত্য, মেৰুদণ্ডহীন আমোলা-বিষয়াসকলৰ ফোপোলা স্বৰূপ হাস্য-ব্যংগ শৈলীৰে তেওঁ গল্পৰ মাজেৰে উন্মোচন কৰিছিল। ঠিক সেইদৰে সমাজৰ মুখা পিন্ধা ভণ্ড লোকসকলৰ বিষয়বস্তুৰে শীলভদ্ৰৰো বহুকেইটা গল্পত স্থান লাভ কৰিছিল। চেখভৰ 'বহুৰূপী', 'মুখা', 'বক্তা' ইত্যাদি হাস্য-ব্যংগ গল্পৰ সৈতে শীলভদ্ৰৰ 'সহপাঠী', 'হিচাপ', 'ক্ষোভ', 'শোকসভা' ইত্যাদি গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ স্পষ্ট সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়। য'ত দুয়োগৰাকী গল্পকাৰে বুদ্ধিদীপ্ত শৈলীৰে হাস্য-ব্যঙ্গাত্মকভাৱে সমাজৰ ভণ্ডামিৰ স্বৰূপ প্ৰকাশ কৰিছে।

চেখভ আৰু শীলভদ্ৰ দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰ বহুকেইটা গল্পৰ বিষয়বস্তুতে সমাজৰ সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ লোকসকলৰ

করুণ গাথা অতি মৰ্মান্তিক ৰূপত প্ৰকাশিত হৈছে। সামাজিক, অৰ্থনৈতিকভাৱে পীড়িত সমাজৰ নিম্ন স্তৰৰ লোকসকলৰ বিভিন্ন দুৰ্যোগ, বিপদৰ চিত্ৰ চেখভ আৰু শীলভদ্ৰই গল্পৰ বিষয়বস্তুৰূপে উপস্থাপন কৰিছে। চেখভৰ 'বেদনা' (Misery), 'দি কোৰাছ গাৰ্ল' (The Chorus Girl), 'এজন কেৰাণীৰ মৃত্যু' (Death of a Clerk)ৰ দৰে শীলভদ্ৰৰ 'হিচাপ', 'বৌৰৰ', 'অপৰাজেয়' ইত্যাদি গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ মাজেৰে অভাৱ-অনাটনক্লিষ্ট সমাজখনৰ চিত্ৰ বাস্তৱসন্মতভাৱে ফুটি উঠিছে।

চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ মাজত যথেষ্ট পৰিমাণে আত্মজীৱনীমূলক উপাদান নিহিত হৈ থকাও পৰিলক্ষিত হয়। শীলভদ্ৰৰ বহুকেইটা গল্পৰ মাজেৰে তেওঁৰ জন্মস্থান মধুপুৰৰ সমাজ ব্যৱস্থা, বিভিন্ন অঞ্চল-ব্যক্তিৰ কথা পৌণপৌণিকভাৱে অংকন কৰিছে। শীলভদ্ৰৰ কাহিনী উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত ঘটনাৰ কোনো উচ্চ-তুচ্ছতাৰো ব্যৱধান পৰিলক্ষিত নহয়। উচ্চ বা তুচ্ছ যিকোনো বিষয়বস্তুৰ জৰিয়তে আত্মপ্ৰসংগৰ অৱতাৰণা তেওঁৰ গল্পত দৃষ্টিগোচৰ হয়। এই প্ৰসংগত শীলভদ্ৰই নিজেই গল্পৰ মাজেৰে ব্যক্ত কৰিছে এইদৰে-

"মোৰ ৰচনা মানে মোৰেই কথা। মই যি দেখিছো, যি শুনিছো, যিবোৰ ঘটনাই মোক সাময়িকভাৱে সচেতন কৰি তুলিছে মই তাকেই কওঁ আৰু এটা মন কৰিবলগীয়া কথা এই যে এটা ডাঙৰ ঘটনাই মনটোক যিমান অস্থিৰ কৰি তোলে, একোটা তুচ্ছ ঘটনাই কেতিয়াবা মনত তাতোকৈ বেছি আলোড়নৰ সৃষ্টি কৰে।"[৪]

শীলভদ্ৰৰ দৰেই চেখভৰ গল্পৰাজিৰ মাজেৰেও আত্মপ্ৰসংগৰ অনুষংগ উপস্থাপিত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। পেচাত এগৰাকী চিকিৎসক হোৱাৰ বাবেই চেখভৰ বহুকেইটা গল্পত ৰোগ আৰু ৰোগীৰ প্ৰসঙ্গই পৌণ-পৌণিকভাৱে ভূমুকি মাৰিছে। চেখভৰ 'বিস্তীৰ্ণ পথাৰ' (The Steppe), 'লেটাৰ ভিতৰৰ মানুহ' (Man in a Cocoon), 'ফৰিং' (Grasshopper), ইত্যাদি গল্পৰ মাজেৰে বাস্তৱ জীৱনৰ বিভিন্ন বিষয়বস্তু চৰিত্ৰই স্থান লাভ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

প্ৰেমেও দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰ গল্পত এক বিশিষ্ট স্থান অধিকাৰ কৰিছে। প্ৰেমৰ ভিন্ন ৰূপ চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু হিচাপে অংকিত হৈছে। কোনো গল্পত নাৰী-পুৰুষৰ উচ্ছাসময় প্ৰেম, ক'ৰবাত আকৌ ব্যৰ্থ প্ৰেমৰ চিত্ৰ, ক'ৰবাত পৰকীয় প্ৰেমৰ মধুৰতা ইত্যাদি প্ৰেমৰ বিভিন্ন অভিব্যক্তিয়ে দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু হিচাপে উপস্থাপিত হৈছে। চেখভৰ 'কুকুৰ লৈ ফুৰা মহিলাগৰাকী' (Lady with a dog), 'ফৰিং' (Grasshopper), 'ডাৰ্লিং' (Darling), ইত্যাদি গল্পৰ দৰে শীলভদ্ৰৰ 'বেহাগ', 'ছবি', 'মা-দেউতা আৰু অঞ্জু', 'ছায়া সঙ্গীনি' ইত্যাদি গল্পৰ মাজেৰে প্ৰেমৰ বহুধা বিভক্ত ৰূপ চিত্ৰিত হৈছে।

চেখভ আৰু শীলভদ্ৰ দুয়োজন গল্পকাৰৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুৰূপে শিশু মনস্তত্বৰ বিভিন্ন দিশো ৰূপায়িত হোৱা দৃষ্টিগোচৰ হৈছে। শিশুৰ অবোধ-সৰল মানসিক জগতখনৰ বহুৰঙী ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়াৰ সাৰ্থক প্ৰকাশ দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰ গল্পৰ মাজত পৰিলক্ষিত হয়। চেখভৰ 'ভাংকা' (Vanka), 'তাইৰ টোপনি আহিছে' (Sleepy), 'বিস্তীৰ্ণ পথাৰ' (The Steppe), 'শিশু' (Children), ইত্যাদি গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ লগত 'মা-দেউতা আৰু অঞ্জু', 'আৰক্ষৰ', 'ককাদেউতা আৰু নাতি ল'ৰা', 'অপৰাজেয়' ইত্যাদি গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ সাদৃশ্য মন কৰিবলগীয়া।

গল্পৰ বিষয়বস্তু উপস্থাপন বা নিৰ্বাচনৰ ক্ষেত্ৰত চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ যিদৰে সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়, ঠিক সেইদৰে কিছু কিছু দিশত বৈসাদৃশ্য ফুটি উঠাও দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিশেষকৈ ভিন্ন দেশৰ ভিন্ন সামাজিক-ভাষিক-সংস্কৃতিক পৰিমণ্ডলৰ বাবেই দুয়োজন গল্পকাৰৰ গল্পৰ মাজত এনে পাৰ্থক্য দৃষ্টিগোচৰ হয়। শীলভদ্ৰৰ গল্পৰ বহুখিনি বিষয়বস্তুতে মধুপুৰ অঞ্চল বা সেই অঞ্চলৰ সমাজ ব্যৱস্থা, বিভিন্ন ব্যক্তি অৰ্থাৎ এখন বিশেষ স্থানৰ (Locus) উল্লেখ পোৱা যায়। কিন্তু চেখভৰ গল্পত তেনে কোনো বিশেষ ঠায়ে বা অঞ্চলে স্থান লোৱা পৰিলক্ষিত নহয়। সেইদৰে দুয়োজন গল্পকাৰৰ ৰচনাকালৰ মাজতো যথেষ্ট পাৰ্থক্য থকাৰ বাবেও বহু সময়ত বিষয়বস্তুৰ মাজতো পাৰ্থক্য দৃষ্টিগোচৰ হয়।

৬.০০ সামৰণি আৰু সিদ্ধান্ত ঃ

তুলনামূলক অধ্যয়ন পদ্ধতিত বিশ্বৰ সকলো সাহিত্যৰাজিকে ভৌগোলিক-ভাষিক-সাংস্কৃতিক পৰিসৰৰ উৰ্দ্ধত ৰাখি একক সাহিত্যৰূপে একে সমতলত বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰা হয়। সেই অনুসৰি ভিন্ন দেশৰ, ভিন্ন ভাষাৰ, ভিন্ন সময়ৰ দুগৰাকী গল্পকাৰ আন্তোন পাভ্‌লোভিচ চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰাজিৰ বিষয়বস্তুৰ তুলনামূলক পদ্ধতিৰে বিশ্লেষণ কৰি চাওঁতে যথেষ্ট সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হৈছে। দেশ-কাল-ভাষা-সংস্কৃতি ভিন্ন হ'লেও মানৱ মনৰ চিৰন্তন

অনুভূতিৰাজিৰ সাদৃশ্যৰ বাবেই দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰ গল্পৰ মাজতো অনুভূত হৈছে এক ৰহস্যময় ঐক্যতাৰ। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত চেখভ আৰু শীলভদ্ৰ দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰে গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ তুলনাত অন্তত এই সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰি যে—

(ক) চেখভ আৰু শীলভদ্ৰৰ গল্পৰাজিৰ বিষয়বস্তুৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষকৈ দুয়োগৰাকী গল্পকাৰেই আছিল বাস্তৱবাদী গল্পকাৰ। দৈনন্দিন জীৱনৰ উচ্চ-তুচ্ছ যিকোনো বিষয়েই দুয়োজনে কলাত্মকভাৱে গল্পত উপস্থাপন কৰিছিল।

(খ) চেখভ আৰু শীলভদ্ৰ দুয়োজনেই মূলতঃ মানৱতাবাদী গল্পকাৰ। সমাজৰ ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক বিভিন্ন দিশ অথবা সাহিত্যৰ বিভিন্ন তত্ত্ব, দৰ্শন আদি উপস্থাপন কৰাতকৈ মানৱীয় চিৰন্তন অনুভূতিৰাজিহে দুয়োজনে গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ মাজেৰে ফুটাই তুলিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল।

(গ) দুয়োগৰাকী গল্পকাৰেই সমাজৰ উচ্চ স্তৰৰ অভিজাত লোকসকলৰ ভণ্ডামি, মেৰুদণ্ডহীন আচৰণসমূহ হাস্য-ব্যংগভাৱে গল্পৰ বিষয়বস্তুৰূপে উপস্থাপন কৰিছিল। ইয়াৰোপৰি সমাজৰ সাধাৰণ লোকসকলৰ জীৱনৰ কৰুণ গাথা, আত্মজীৱনীমূলক উপাদান, প্ৰেমৰ ভিন্ন অভিব্যক্তি, শিশু মনস্তত্বৰ প্ৰকাশ ইত্যাদি দুয়োগৰাকী গল্পকাৰৰে গল্পৰ বিষয়বস্তু আছিল। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

(১) শইকীয়া, নগেন ঃ তুলনামূলক সাহিত্য পটভূমিকাত অসম, সম্পা. ড° ধ্ৰুৱজ্যোতি নাথ, ২০১৭, পৃ. ১৮

(২) শীলভদ্ৰ ঃ শতাব্দীৰ পোহৰত অসমীয়া চুটিগল্প, সম্পা. পংকজ ঠাকুৰ, ২০১৩, পৃ. ৬২

(৩) শৰ্মা, ৰাজেন্দ্ৰ ঃ চেখভৰ গল্প, ২০০০, পৃ. ৯

(৪) শীলভদ্ৰ ঃ গল্পসমগ্ৰ (দ্বিতীয় খণ্ড), ২০০৯, পৃ. ৩৮৩

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য সমল ঃ

(১) শীলভদ্ৰৰ গল্প সমগ্ৰ (প্ৰথম খণ্ড)। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, ২০০৭। মুদ্ৰিত।

(২) শীলভদ্ৰৰ গল্প সমগ্ৰ (দ্বিতীয় খণ্ড)। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, ২০০৯। মুদ্ৰিত।

(৩) কুমাৰ, প্ৰদীপ। (অনু.)। চেখভৰ গল্প। গুৱাহাটী ঃ ষ্টুডেণ্টচ ষ্ট'ৰচ, ২০১৬। মুদ্ৰিত।

(৪) ভূঞা, সত্যজিৎ। (অনু.)। ছয় নম্বৰ ৱাৰ্ড আৰু আন গল্প। গুৱাহাটী ঃ শৰাইঘাট প্ৰকাশন, ২০০৪। মুদ্ৰিত।

(৫) শৰ্মা, ৰবীন্দ্ৰনাথ। (অনু)। এণ্টন চেখভৰ একুৰি গল্প। গুৱাহাটী ঃ কাজিৰঙা প্ৰিণ্টিং হাউচ, ২০১৪। মুদ্ৰিত।

(৬) শৰ্মা, ৰাজেন্দ্ৰ। (অনু.)। চেখভৰ গল্প। নলবাৰী ঃ জাৰ্ণাল এম্পৰিয়াম, ২০০০। মুদ্ৰিত।

গৌণ সমল ঃ

(১) গোস্বামী, ত্ৰৈলোক্য নাথ। আধুনিক গল্প সাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ বাণী প্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড, ২০১৩। মুদ্ৰিত।

(২) ঠাকুৰ, পংকজ। (সম্পা.)। শতাব্দীৰ পোহৰত অসমীয়া চুটিগল্প। নতুন দিল্লী ঃ সাহিত্য অকাডেমি, ২০১৩। মুদ্ৰিত।

(৩) দত্ত, উদয়। চুটিগল্প। গুৱাহাটী ঃ ষ্টুডেণ্টচ ষ্ট'ৰচ, ২০১৮। মুদ্ৰিত।

(৪) দাস, দুলাল চন্দ্ৰ। তুলনামূলক সাহিত্য আৰু ভাৰতীয় প্ৰেক্ষাপট। গুৱাহাটী ঃ অশোক বুক ষ্টল, ২০২২। মুদ্ৰিত।

(৫) বৰা, অপূৰ্ব। (সম্পা.)। অসমীয়া চুটিগল্প অধ্যয়ন। বনলতা ঃ ডিব্ৰুগড়, ২০১৭। মুদ্ৰিত।

(৬) বৰা, দিলীপ। তুলনামূলক সাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০২২। মুদ্ৰিত।

(৭) বৰা, প্ৰাণজিৎ। তুলনামূলক সাহিত্য তত্ত্ব আৰু বিচাৰ। গুৱাহাটী ঃ পাঞ্চজন্য, ২০১৮। মুদ্ৰিত।

(৮) বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। অসমীয়া চুটিগল্প অধ্যয়ন। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১৩। মুদ্ৰিত।

(৯) বুজৰ বৰুৱা, পল্লৱী ডেকা। তুলনামূলক সাহিত্য তত্ত্ব। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১৩। মুদ্ৰিত।

(১০) নাথ, প্ৰফুল্ল কুমাৰ। তুলনামূলক ভাৰতীয় সাহিত্য। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, ২০১৫। মুদ্ৰিত।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষা ঃ এক সমাজ-ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন

ৰাহুল কুলি

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
সুৰেন দাস মহাবিদ্যালয়
হাজো-৭৮১১০২
৭০৮৬৫২৯৬৬০
kuli.rahul2016@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সময়ৰ পৰিৱৰ্তন লগে লগে একোখন সমাজৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক তথা ভাষিক ক্ষেত্ৰখনতো পৰিৱৰ্তন ঘটে।পৰিৱৰ্তিত সমাজৰ লগত খাপ-খুৱাই ভাষাৰ ভাষিক উপাদানবোৰো গঢ় লৈ উঠে। সেয়েহে ভাষা পৰিৱৰ্তনশীল। ভাষাৰ পৰিৱৰ্তিত উপাদানবোৰ প্ৰথমে কথিত ৰূপত পৰিলক্ষিত হৈ ক্ৰমান্বয়ে লিখিত ৰূপটো প্ৰৱেশ ঘটে। অসমীয়া ভাষাও পৰিৱৰ্তনৰ কবলৰ পৰা মুক্ত নহয়। উদ্ভৱ কালৰে পৰা বিভিন্ন ৰূপত পৰিগ্ৰহণ কৰি অসমীয়া ভাষাই সাম্প্ৰতিক অৱস্থা পাইছেহি। কিন্তু সম্প্ৰতি বিজ্ঞান প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ দ্ৰুত উন্নয়ন আৰু নিতৌ নতুন নতুন উদ্ভাৱনে এফালে যেনেদৰে অৰ্থনৈতিক ক্ষেত্ৰত উন্নতি ঘটাইছে ঠিক তেনেদৰে ভাষা-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰতো কিছু ক্ষতি নকৰাও নহয়। সম্প্ৰতি নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত অসমীয়া ভাষা আৰু নব্য মাধ্যমসমূহত ব্যৱহৃত অসমীয়া ভাষাই অসমীয়া জাতিৰ পৰিচয়জ্ঞাপক তথা প্ৰাণস্বৰূপ অসমীয়া ভাষাটোলৈ যথেষ্ট সংকট কঢ়িয়াই আনিছে। সেয়েহে এই গৱেষণা পত্ৰখনত সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষালৈ ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত ক্ষেত্ৰত অহা পৰিৱৰ্তনৰ বিভিন্ন দিশসমূহৰ সম্পৰ্কে বিচাৰ কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ ভাষা, ৰূপগত, শব্দগত, বাক্যগত আদি।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

এখন মানৱ সমাজ বা এটা জাতিৰ ভাষা সাহিত্য-সংস্কৃতি আদিয়ে বহন কৰে সেই জাতি বা সম্প্ৰদায়ৰ স্বকীয় পৰিচয়। অসমীয়া ভাষা সম্প্ৰদায়কে ধৰি অসমৰ বিভিন্ন থলুৱা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ক্ষেত্ৰতো এই কথাই প্ৰযোজ্য। বিভিন্ন ভাষা-ভাষী আৰু নানা জাতি-উপজাতি মিলি গঢ়ি উঠিছে প্ৰাচীন অসমৰ অসমীয়া সম্প্ৰদায়, অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতি তথা অসমীয়া ভাষা। ভাবৰ বাহন ভাষা হৈছে যোগাযোগৰ এক মুখ্য সাধন। গনসংযোগৰ ক্ষেত্ৰতো ভাষাই গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। অসমৰ প্ৰধান ভাষা অসমীয়া হৈছে অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সংযোগৰ মাধ্যম; সাধাৰণতে ই এক সংযোগী ভাষা।

ভাষা সমাজ কেন্দ্ৰীক আৰু ই গতিশীল। সময়ৰ লগে লগে ভাষা এটায়ো গতি কৰি থাকে। সময়, সমাজ আৰু ভাষিক গোষ্ঠীৰ প্ৰয়োজনত গতিশীল ভাষাই পৰিৱৰ্তনৰ মাজেৰে আগবাঢ়ে। সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, প্ৰব্ৰজন, সাংস্কৃতিক ইত্যাদি বিভিন্ন দিশসমূহে ভাষা পৰিৱৰ্তন হোৱাত বিশেষভাৱে অৰিহণা যোগায়। কিন্তু সম্প্ৰতি

ভাষাৰ পৰিৱৰ্তনত আটাইতকৈ বেছি প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা দিশটোৱে হৈছে 'বিশ্বায়ন'। বিশ্বায়ন বা গোলকীয় বাণিজ্য নীতিয়ে গোটেই বিশ্বকে এখন ক্ষুদ্ৰ গাঁৱলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে। বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত সমগ্ৰ বিশ্বৰে সামাজিক ৰীতি-নীতি শিক্ষা-ব্যৱস্থা, ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিলৈ আমূল পৰিৱৰ্তন আহিছে। অসমীয়া ভাষাও ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। ১৯৭০ চনৰ পৰা পোন প্ৰথমে আমেৰিকাত ভাষাৰ বিভ্ৰাট ঘটা দেখা যায়। সেই সময়ৰ পৰাই আমেৰিকাত ভাষাৰ বানান আৰু ব্যাকৰণ আদিৰ ক্ষেত্ৰত থকা নিয়মসমূহ কিছু দিশত শিথিলতা অহা দেখা গৈছিল। আমেৰিকাত ঘটা ভাষা বিভ্ৰাটে লাহে লাহে সকলোকে গ্ৰাস কৰিলে। তেতিয়াৰ পৰাই ভাৰতৰ আন আন প্ৰান্তীয় ভাষাসমূহতো ইয়াৰ প্ৰভাৱ পৰে। বিশেষকৈ বিজ্ঞানৰ চমকপ্ৰদ উদ্ভাৱন—এফ.এম.ৰেডিঅ', টেলিভিছন, মোবাইল ফোন, ইণ্টাৰনেট, বাতৰি কাকত লগতে সম্প্ৰতি নৱপ্ৰজন্মৰ মাজত বহুল প্ৰচলিত ফেচবুক, টুইটাৰ, ইনষ্টাগ্ৰাম, ইউটিউব ইত্যাদি সামাজিক মাধ্যমসমূহে ভাষাৰ বিভ্ৰান্তৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ অৰিহণা যোগাই আহিছে। উল্লেখনীয় যে, এই পৰিৱৰ্তনত নৱপ্ৰজন্মৰ ভূমিকা অধিক। বজাৰ অৰ্থনীতিৰ প্ৰসাৰতাৰ লগে লগে বিশ্বায়নে ভাষাকো অৰ্থনৈতিক সামগ্ৰী হিচাপে চাবলৈ বাধ্য কৰাইছে। বৰ্তমান সময়ত সমগ্ৰ পৃথিৱীতে ব্যৱসায় বাণিজ্য, অৰ্থনৈতিক আৰু ৰাজনৈতিক কাম-কাজত ইংৰাজী ভাষাৰ ব্যাপক প্ৰচাৰৰ ফলত এই ভাষাটোৱে বিশেষ মূল্য আহৰণ কৰিছে। ইয়াৰ ফলত কিছুমান কম সংখ্যক মানুহে ব্যৱহাৰ কৰা অনেক ভাষাগোষ্ঠীৰ ভাষাই সামাজিক মৰ্যাদা হেৰুৱাই পেলাইছে।

সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষাতো বিশ্বায়নৰ বিশেষ প্ৰভাৱ পৰা পৰিলক্ষিত হয়। বিশেষকৈ বৰ্তমান সময়ৰ বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ দ্ৰুত উন্নয়নে ভাষাটোত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলাইছে। নৱপ্ৰজন্মৰ মাজত বহুলভাৱে প্ৰচলিত নব্য-সামাজিক মাধ্যমসমূহে অসমীয়া ভাষালৈ গুৰু প্ৰত্যাহবান নমাই আনিছে। এই ক্ষেত্ৰত দূৰদৰ্শনৰ প্ৰাইভেট চেনেলসমূহ, মোবাইল ফোন, ফেচবুক, টুইটাৰ, ইনষ্টাগ্ৰাম ইত্যাদিত ব্যৱহৃত এছ.এম.এছ. দুই এখন বাতৰি কাকতেও বিশেষ অগ্ৰণী ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। নৱ প্ৰজন্মই সঘনাই ইংৰাজী, বাংলা, হিন্দী আদি মিশ্ৰিত ভাষাৰ ব্যৱহাৰে অসমীয়া ভাষাৰ ভাষাতাত্বিক দিশটো প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছে। গতিকে ক'ব পাৰি যে, বিশ্বায়ন তথা নব্য-সামাজিক মাধ্যমসমূহে সমাজখনৰ লগতে সমাজৰ প্ৰধান অংগ ভাষাটোকো জোকাৰি গৈছে। বৰ্তমান নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত ব্যৱহৃত অসমীয়া ভাষাৰ বিশেষকৈ কথিত ভাষাৰ যি স্বৰূপ সেয়া সচেতন সমাজৰ বাবে সঁচাই এক চিন্তনীয় বিষয়। যিবোৰ ভাষাটোৰ ব্যাকৰণৰ নিয়মেৰে বান্ধিব নোৱাৰি। এওঁলোকৰ মুখত নিভাঁজ অসমীয়া ভাষাৰ উচ্চাৰণ প্ৰায়ে নুশুনা হৈ পৰিছে। ফলত অসমীয়া ভাষাৰ স্বকীয় বৈশিষ্ট্য নোহোৱা হৈ পৰিছে। বিশেষকৈ ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যগত আৰু শব্দগত দিশত ইয়াৰ প্ৰভাৱ লক্ষণীয়। সেয়েহে আমাৰ প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখনত অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত দিশত সম্প্ৰতি কেনে পৰিৱৰ্তন ঘটিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

- অসমীয়া ভাষাৰ সাম্প্ৰতিক স্থিতিৰ ৰূপৰেখা প্ৰস্তুত কৰা।
- সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষাৰ বিশেষকৈ ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত দিশত কেনে পৰিৱৰ্তন আহিছে সেইবোৰ দিশ ফঁহিয়াই চোৱা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে তথ্য আহৰণৰ আৰু তথ্য বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্ৰত বেলেগ বেলেগ পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত সমাজ ভাষাবৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে পৰ্যবেক্ষণ (Observation) আৰু যাদৃচ্ছিক নমুনা চয়নৰ দ্বাৰা (Random Sampling) অসংৰচিত প্ৰশ্নসূচীৰে (Unstructured Questionnaire Scheduled) সাক্ষাৎকাৰ গ্ৰহণ কৰি সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। সংগৃহীত তথ্যসমূহ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

০.৪ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষা ঃ এক সমাজ-ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন— শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে প্ৰয়োজনীয় তথ্যসমূহ মুখ্য আৰু গৌণ এই দুটা উৎসৰ পৰা সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে ১৫-৬০ বছৰ বয়সৰ বিভিন্ন বৃত্তি (ছাত্ৰ, শিক্ষক, ব্যৱসায়ী, কৃষিখণ্ডৰ লগত জড়িত শিক্ষিত ব্যক্তি, আৰক্ষী ইত্যাদি) ১০০ জনৰো অধিক বিভিন্ন ব্যক্তিৰ লগত অসংৰচিত প্ৰশ্নসূচীৰ জৰিয়তে সাক্ষাৎকাৰ গ্ৰহণ কৰি সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন দৃশ্য-শ্ৰব্য মাধ্যম ৰেডিঅ', টেলিভিছন চেনেল, মোবাইল ফোন, এছ. এম.এছ., ফেচবুক প'ষ্ট (Post), টুইটাৰ, ইনষ্টাগ্ৰাম, বাতৰি কাকত, বিভিন্ন গ্ৰন্থ, আলোচনী, প্ৰবন্ধ আদিৰ পৰা সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই গৱেষণা পত্ৰখনত সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তনবোৰৰ সম্পৰ্কে আলোচনাতে সীমাবদ্ধ হৈছে।

১.০ মূল আলোচনা ঃ

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষাৰ কথিত ৰূপৰ ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত দিশত বিভিন্ন পৰিৱৰ্তন হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। তলত সেইবোৰৰ সম্পৰ্কে আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ল—

১.১ ৰূপগত দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তন ঃ

সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষাৰ ৰূপগত ক্ষেত্ৰখনলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখিবলৈ পোৱা যায় যে, কাৰক-বিভক্তি, প্ৰত্যয় আদিৰ যথাযথ প্ৰয়োগ খুব কম হয়। অৱশ্যে এই ক্ষেত্ৰত লিখিত ৰূপতকৈ কথিত ৰূপত পৰিৱৰ্তন বেছি। এই পৰিৱৰ্তনবোৰ যে, লাহে লাহে এদিন লিখিত ৰূপলৈও প্ৰসাৰিত হ'ব সেয়াও নিশ্চিত। যি কি নহওক ৰূপতাত্ত্বিক ক্ষেত্ৰখনলৈ অহা পৰিৱৰ্তনবোৰ হৈছে —

• অসমীয়া ভাষাৰ নিৰ্দিষ্টতাবাচক প্ৰত্যয় {-টো}ৰ যথাস্থানত প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত কিছু বিসংগতি দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ—

শুদ্ধ ৰূপ	**নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত ৰূপ**
বহীখন	বহীটো
চাইকেলখন	চাইকেলটো
ছাৰজন	ছাৰটো

• কাৰক-বিভক্তিৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া নিমিত্ত কাৰক {লৈ}-ৰ ঠাইত সপ্তমী বিভক্তি {-ত}-ৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখিবলৈ যায়। উদাহৰণ—

শুদ্ধ ৰূপ	**নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত ৰূপ**
হোষ্টেললৈ যাওঁ	হোষ্টেলত যাওঁ
বজাৰলৈ যাওঁ	বজাৰত যাওঁ
কেণ্টিনলৈ যাওঁ	কেণ্টিনত যাওঁ

• সম্প্ৰতি নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত অসমীয়া ভাষাৰ সম্বন্ধবাচক বিশেষ্যৰ পুৰুষবাচক বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ প্ৰায়ে দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। উদাহৰণ—

শুদ্ধ ৰূপ	**নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত ৰূপ**
তোমাৰ মাৰা	তোমাৰ মা
তোমাৰ দেউতাৰা	তোমাৰ দেউতা
তাৰ শহুৰেক	তাৰ শহুৰ

• অসমীয়া ভাষাত দুটাৰ মাজত তুলনা বুজাবলৈ হ'লে যাৰ লগত তুলনা কৰা হয়, সেই প্ৰাণীবাচক বা অপ্ৰাণীবাচক শব্দটোৰ অধিকৰণ কাৰকসূচক ৰূপ{-ত} আৰু অপাদান কাৰকসূচক ৰূপ {-ৰ}পিছত কৈ যোগ দি তাৰ পিছত বিশেষণ ৰূপটো ব্যৱহাৰ হয়। কিন্তু বৰ্তমান কথিত অসমীয়া ভাষাত {-কৈ}ৰূপৰ ঠাইত হিন্দীৰ 'সে' (से) ৰূপৰ প্ৰয়োগ সঘনাই হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ—

শুদ্ধ ৰূপ	**নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত ৰূপ**
সকলোতকৈ	চবতসে
ডাঙৰকৈ	ডাঙৰসে
জোৰকৈ	জোৰসে
বগাতকৈ	বগাতসে

• বিদেশী শব্দৰ লগত অসমীয়া পৰপ্ৰত্যয় প্ৰয়োগ কৰি অসমীয়াকৰণ কৰা পূৰ্বতেও বা লিখিত ৰূপতো দেখিবলৈ পোৱা যায়। অসমীয়া ভাষাৰ স্ত্ৰীলিংগ নিৰ্ণয়ৰ অনুকৰণত বিদেশী শব্দবোৰৰ ক্ষেত্ৰতো স্ত্ৰীবাচক কৰিবৰ বাবে 'নী' প্ৰত্যয় সংযোগ কৰা হয়। যেনে— মাষ্টৰণী, ডাক্তৰণী ইত্যাদি। কিন্তু বৰ্তমান এনে কিছুমান শব্দ পোৱা যায় যে, যিবোৰ অসমীয়া ভাষাত পূৰ্বে পোৱা নাই। সম্প্ৰতি একোটা বিদেশী শব্দৰ সৈতে অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰত্যয় যোগ কৰি কিছু অসমীয়াকৰণ কৰি লোৱা দৃষ্টিগোচৰ হয়। উদাহৰণ—

শুদ্ধ ৰূপ	**নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত ৰূপ**
(হিন্দী)	বিলায়ত বিলাতী (ঈ)
(ইংৰাজী)	প্ৰাউদ প্ৰাউদী (ঈ)
(ইংৰাজী)	মাদ্ৰাছা মাদ্ৰাছী (ঈ)
(ইংৰাজী)	জেলাচ জেলাচী (ঈ)

• অসমীয়া ভাষাৰ পৰম্পৰাগত বিশেষণৰ উপৰিও নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত বিভিন্ন নতুন নতুন বিশেষণৰ ব্যৱহাৰ দেখিবলৈ পোৱা যায়। সেইসমূহ হৈছে—

তামাম—তাই তামাম পঢ়িছে বে।

ব'ম—ব'ম লেভেল দিয়ে বে।

ম'স্ত—ম'স্ত ভাগৰ লাগিছে।

১.২ শব্দগত দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তন ঃ

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষাৰ শব্দগত ক্ষেত্ৰখনলৈও ব্যাপক পৰিৱৰ্তন আহিছে। বিশেষকৈ কম্পিউটাৰ, ইণ্টাৰনেট, মুক্ত অৰ্থনীতি, বিজ্ঞান, কাৰিকৰী-বিজ্ঞান, ব্যৱসায়-বাণিজ্যই অসমীয়া ভাষালৈও নতুনত্ব কঢ়িয়াই আনিছে বুলি ক'ব পাৰি। ফলত বিভিন্ন দিশত অসমীয়া ভাষা শব্দ সম্ভাৰলৈ নতুন নতুন

শব্দ সোমাই পৰিছে। যিবোৰ শব্দৰ অৰ্থ পুৰণিচাম মানুহে সহজে আয়ত্ত কৰিব নোৱাৰিলেও নতুনচামৰ মাজত সেইবোৰ শব্দই অতি জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিছে। শিক্ষিত-অৰ্ধশিক্ষিত নতুনচামে চাকৰিসূত্ৰে বা শিক্ষা-দীক্ষাৰ কাৰণে নগৰীয়া অঞ্চলত বসবাস কৰাৰ ফলত এনেকুৱা শব্দবোৰ প্ৰথমে সিহঁতৰ মাজতে ব্যৱহাৰ হৈছিল যদিও এই শব্দসমূহে ক্ৰমান্বয়ে গাঁৱে-ভূঁয়ে সকলোতে ইচ্ছাকৃতভাৱেই হওক বা অনিচ্ছাকৃতভাৱেই হওক সোমাই পৰিছে আৰু বহুলভাৱে ব্যৱহাৰ হৈ আছে। বিশেষকৈ ইংৰাজী, হিন্দী, বাংলা, আৰবী-ফাৰ্চী ভাষাবোৰৰ শব্দ অসমীয়া ভাষাৰ শব্দৰ সৈতে মিহলি হৈ পৰিছে। তদুপৰি কিছুমান এনেকুৱা শব্দ আছে যাক ইংৰাজী ভাষাতে ব্যৱহাৰ কৰাৰ ফলত সেই শব্দবোৰৰ মূল অসমীয়া ভাষাত সহজে বিচাৰিয়ে পোৱা নাযায়। অসমীয়া ভাষাত সঘনে নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত শব্দবোৰ হ'ল–

মাফ (Maph) ঃ মোক মাফ (ক্ষমা) কৰি দিবি।

মাল (Maal) ঃ সাধাৰণতে ধুনীয়া ছোৱালী বা ভাল বস্তু দেখিলে ব্যৱহাৰ কৰে। যেনে–

কি মাল বে, আগতে দেখাই নাছিলোঁ।

বা ফ্ৰেছ মাল।

মাল এটা পতালোঁ।

মালটো বনাই পেলালোঁ

খুছ (Khush) ঃ সন্তুষ্টিৰ অৰ্থত ব্যৱহাৰ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে–

আজি ছাৰ তামাম খুছ হৈ আছে।

তই আজি বিৰাট খুছ।

পুৰাণা ঃ সি কি পুৰাণা জামানাৰ মানুহ একোকে নাজানে।

জোছ (উত্ৰাৱল)ঃ মোৰ কি জোছ উঠিল নাজানো, গোটেই কাপোৰ ধুই থৈ আহিলোঁ।

তামাম (বহুত) ঃ তামাম বে, তামাম মস্তি কৰিলোঁ।

ব'ম (বেছি) ঃ ব'ম পঢ়ন দিছ, মাল ফালিবি এইবাৰ।

বাৰ্‌বাৰ্ (বাৰে বাৰে) ঃ বাৰ্‌বাৰ্ একেটা কথাকে সুধি ব'ৰ নকৰিবি।

ছালিয়া (ধুনীয়া) ঃ মালটো ছালিয়া লাগিছে বে।

এইবোৰৰ উপৰিও নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত সঘনাই প্ৰয়োগ হোৱা শব্দ কিছুমান হ'ল– বিন্দাচ, বেহুদা, মস্তি, ধামাকা, হেং, চিপকো, মালা-মাল, ফালা-ফালি, আচ্চ, মামুলী, গাদ্দাৰী আদি। অৱশ্যে এই শব্দবোৰৰ ব্যৱহাৰ বিশেষকৈ নতুন প্ৰজন্মৰ মাজতে প্ৰায় সীমাবদ্ধ।

তদুপৰি কিছুমান ইংৰাজী শব্দ অসমীয়া ঠাঁচত সলনি নোহোৱাকৈ ব্যৱহাৰ কৰাও দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে— টেঞ্চন (Tension), চেলেঞ্জ (Challenge), ম'ৰনিং ওৱাক (Morning Walk), কেৰিয়াৰ (Career), পিকনিক (Picnic), টাইম পাছ (Time Pass), চাৰ্ভিছ (Service), ষ্টাফ (Staff), ব্লাড (Blood), চৰ্ট টেম্পাৰ (Short Temper), ট্ৰেফিক যাম (Traffic Jam), চেলাৰী (Salary), চালাদ (Salad), চেলুন (Saloon), লাইট (Light), ফেন (Fan), চিকেন (Chicken), হাই-ফাই (Hi-Fi), টিপ্-টপ্ (Tip-Top), এৱচেন্ট (Absent), হেবিট (Habit), টাইত-ফিট (Tight Fit) ইত্যাদি। এইবোৰৰ উপৰিও কিছুমান ইংৰাজী শব্দ সংক্ষিপ্ত কৰি সঘনাই ব্যৱহাৰ কৰা হয়। যেনে— বি.পি বা প্ৰেছাৰ (Blood Pressure), লেব (Laboratory), ফ্ৰিজ (Refrigerator), ফোন (Telephone), টি.ভি (Television), ব্ৰাছ (Tooth Brush), পেষ্ট (Tooth Paste), কংগ্ৰেছ (Congratulation) ইত্যাদি। অৱশ্যে এই শব্দবোৰৰ ব্যৱহাৰ নৱ প্ৰজন্মৰ উপৰিও অন্যান্য লোকসকলেও দৈনন্দিন জীৱনত সঘনাই ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত স্বাভাৱিক অসমীয়া শব্দৰ দৰে হৈ পৰিছে।

সেইদৰে আৰু বহুতো ইংৰাজী, বাংলা, হিন্দী, আৰবী, ফাৰ্চী আদি ভাষাৰ শব্দও বৰ্তমান অসমীয়া ভাষাত ব্যাপকভাৱে ব্যৱহাৰ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ–

ইংৰাজী ভাষাৰ পৰা অহা শব্দ ঃ

Level (নিজকে জহাই ফুৰা) ঃ তাৰ কি Level চাবি।

Bore (আমনি লগা) ঃ তামাম Bore বে।

Apply (দৰ্খাস্তûপ্ৰয়োগ) ঃ তই তাত Apply কৰচোন।

Relation (সম্পৰ্ক) ঃ তাৰ লগত মোৰ ভাল Relation আছে।

Wish (শুভেচ্ছা জনোৱা) ঃ তাইৰ Birthday Wish কৰিলিনে?

উল্লিখিত শব্দবোৰৰ উপৰিও Paper পঢ়া, Cut খাই যোৱা, Accept কৰ, Request কৰ, Jumping হোৱা, Risk লোৱা, Idea দিয়াûলোৱা, Fresh হোৱা, Rest লোৱা, Feel কৰা, Planning কৰা, Manage কৰা, Message দিয়া, Mood নোহোৱা ইত্যাদি শব্দবোৰ অসমীয়া ভাষাত সম্প্ৰতি সঘনাই ব্যৱহাৰ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

হিন্দী, ফাৰ্চী ভাষাৰ পৰা অহা শব্দ ঃ

খাছ ঃ একদম খাছ মানুহ, খাছ মনৰ।

ইজ্জত ঃ মোৰ ইজ্জতত লাগিছে।

বৰবাদ ঃ লাইফ বৰবাদ হৈছে।

বাংচা/বাচ্চা (নাবালক) ঃ বাচ্চাটো চাবা হাহু

মামুলী (সাধাৰণ) ঃ এইটো মোৰ কাৰণে মামুলী কথা।

সেইদৰে মেহনত (কষ্ট), হাচিল (আদায় কৰা), ঘাতিয়া (ফাঁকিবাজ), দোস্ত (বন্ধু), চূৰ্ণী (চাদৰ বিশেষ), তাজা (সতেজ), ধান্দা (ব্যৱসায়), বকবাছ (যা-তা কথা), হাড্ডী (বিয়া), জোছ (উত্ৰাৱল), মালদাৰ/মালামাল (কোটিপতি), পাংগা লোৱা, খতম কৰা, মস্তী মাৰা, নাপাত্তা হোৱা, তালি মাৰা আদি শব্দবোৰৰ বহুল ব্যৱহাৰ দৃষ্টিগোচৰ হৈছে।

বাংলা ভাষাৰ পৰা অহা শব্দ ঃ

শ্বশুৰ বাড়ী (শহুৰৰ ঘৰ) ঃ শ্বশুৰ বাড়ী যাওঁ।

পাল্লা (সংগ) ঃ তাৰ পাল্লাত পৰি মোৰ চব শেষ।

মাথা-মুণ্ড (আও-বাও বুজি নোপোৱা) ঃ তাৰ একো মাথা-মুণ্ড নাই।

খাৰা (থিয়) ঃ সি অফিচত খাৰা হৈ আছিল।

এইবোৰৰ উপৰিও অসমীয়া ভাষাত এনেকুৱা কিছুমান শব্দৰ ব্যৱহাৰ পোৱা যায়, যিবিলাক শব্দৰ মূল বিচাৰি পোৱা নাযায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

চিপকো (আধা লাগি থকা), চালিয়া (বিৰাট চাল দিয়া), লাফ্ৰা (জঞ্জাল), বিন্দাচ (নিশ্চিত মনৰ), চকাচক (চকচকীয়া), মাৰালী (হাই-কাজীয়া কৰা মানুহ), গুণ্ডাৰাজ, নখৰানি ইত্যাদি।

১.৩ বাক্যগত দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তন ঃ

সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষাৰ বাক্যতাত্ত্বিক দিশলৈও আমূল পৰিৱৰ্তন আহিছে। ৰূপগত আৰু শব্দগত দিশৰ দৰে বাক্যৰ গাঁথনিক দিশলৈ যথেষ্ট পৰিৱৰ্তন আহিছে। অসমীয়া ভাষাৰ বাক্য গঠনৰ প্ৰণালীটো হৈছে—'কৰ্তা + কৰ্ম + ক্ৰিয়া'। তদুপৰি অসমীয়া ভাষাৰ কিছুমান বাক্যত ক্ৰিয়াপদটো উহ্য হৈ থাকে। কিন্তু বৰ্তমান সেই উহ্য হৈ থকা দিশটোহে বেছি প্ৰয়োগ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

মোৰ নাম ৰীতা হয়।

মোৰ ঘৰ গুৱাহাটীত হয়।

সাধাৰণতে গণ মাধ্যমৰ ফেচবুক, টুইটাৰ, ই-মেইল, এছ. এম. এছ., ইনষ্টাগ্ৰাম ইত্যাদি মাধ্যমসমূহ যেনেদৰে নব্য ৰূপ; ঠিক তেনেদৰে ইয়াত প্ৰয়োগ হোৱা অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতো কিছু নতুনত্ব দেখিবলৈ পোৱা যায়। নব প্ৰজন্মৰ মাজত সম্প্ৰতি মিশ্ৰিত ভাষাৰ প্ৰয়োগে বিশেষ প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। ইংৰাজী, হিন্দী, অসমীয়া আদি বিভিন্ন ভাষাৰ মিশ্ৰিত ৰূপৰ ব্যৱহাৰ সঘনে দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

আজি ৰাতি সি Night Super ত আহিব।

কি চালিয়া বে, মস্তি লাগিছে।

By the way আৰু এটা কথা ক'বলৈ আছে।

তদুপৰি পুৰণি জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য আদিৰ প্ৰয়োগৰ ঠাইত নতুন নতুন ইংৰাজী, বাংলা, হিন্দী, আদি ভাষাৰ শব্দৰ লগত অসমীয়া ধাতু যোগ কৰি জতুৱাঠাঁচ-খণ্ডবাক্য হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ ধৰিছে। উদাহৰণ—

লাফ্ৰা লাগ ঃ মোৰ লগত লাফ্ৰা নকৰিবি কিন্তু।

কাট মাৰ্ ঃ কাটমাৰি কথা নক'ব।

লাঠ মাৰ্ ঃ লাঠ মাৰি দিম দেই।

নৱপ্ৰজন্মৰ মাজত সমাৰ্থক ইংৰাজী শব্দৰ অতিৰিক্ত প্ৰয়োগ হোৱা দৃষ্টিগোচৰ হয়। উদাহৰণস্বৰূপে—

So, সেইকাৰণে

O really, সঁচাকৈই

নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত সঘনে আবেûবে, বেই, আৰে বাবা, ওৰে বাবা, ছালা/ছাল্লা, য়াৰûইয়াৰ আদি হিন্দী, বাংলা ভাষাৰ অব্যয়বাচক শব্দাংশৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহাৰণস্বৰূপে—

আবে, কি কৰিবি তই মোক?

ছাল্লা, মোক চিনি পোৱা নাই।

আৰে য়াৰ, যাব দেনা তাক।

আৰে বাবা, কৰিমটো মই।

অসমীয়া ভাষাত প্ৰশ্নবোধক বাক্যত 'কি' সৰ্বনামৰ প্ৰয়োগ কৰা হয়। কিন্তু সম্প্ৰতি নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰশ্নবোধক বাক্য নোহোৱাকৈও 'কি' সৰ্বনামৰ ব্যৱহাৰ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণ—

কি বে, ইমান ফাল্ট।

কি যে, লেভেল তাৰ।

কি, ছাল্লিয়া বে।

তেনেদৰে 'পেলা' স্বাৰ্থিক প্ৰত্যয়ৰ পৰিৱৰ্তে অসমাপিকা ক্ৰিয়াৰ ধাতু ৰূপ 'দি'ৰ প্ৰয়োগেৰে বাক্য সজা হয়। যেনে—

সি মানুহ মাৰি দিব বে (পেলাব)।

জিন্দেগী বৰবাদ কৰি দিম (পেলাম)।

সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষাত ক্ৰিয়াৰে বাক্যৰ আৰম্ভণি আৰু কৰ্মৰ দ্বাৰা বাক্য শেষ হোৱাও দৃষ্টিগোচৰ হয়। উদাহৰণ—

বাদ দে না তাৰ কথা।

পাবি নহয় শিক্ষাটো।

তেনেদৰে ক্ৰিয়াৰূপ ব্যৱহাৰ নকৰাকৈও বাক্য গঠন

কৰাও দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ—

তাইৰ মিটাৰ/ টেমা গৰম হৈছে।

বৰ্তমান অসমীয়া ভাষাত নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত নঞৰ্থক ক্ৰিয়াৰূপ {ন, না}ৰ প্ৰয়োগ অধিক হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণ—

নোৱাৰো ন ইমান গালি খায় থাকিব।

মই ন কৈছিলোঁ তোক।

মই আছো না; তই কিয় টেনশ্যন লৈছ।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

সাধাৰণতে 'স্থিতিশীল সমাজ মৃত্যুমুখী'। কিন্তু দ্ৰুত গতিৰ পৰিৱৰ্তনে একোখন সমাজৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক আৰু ভাষিক ক্ষেত্ৰত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলাব পাৰে সেই কথাও আমি লক্ষ্য কৰিব লাগিব। অৱশ্যে এটা কথা অপ্ৰিয় হ'লেও সত্য যে, ভাষা পৰিৱৰ্তনশীল। সময়ৰ লগে লগে ই নিৰবিচিছন্নভাৱে গতি কৰিয়ে থাকে। কিন্তু সাম্প্ৰতিক বিশ্বায়নৰ দ্ৰুত সম্প্ৰসাৰণ আৰু প্ৰভাৱত কিছুমান সৰু সৰু প্ৰান্তীয় ভাষাবোৰলৈ ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিছে। এই ক্ষেত্ৰত সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষা এক জ্বলন্ত উদাহৰণ। বিজ্ঞান প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ দ্ৰুত উন্নয়ন আৰু নিতৌ নতুন নতুন উদ্ভাৱনে এফালে যেনেদৰে অৰ্থনৈতিক ক্ষেত্ৰত উন্নতি সাধন কৰিছে, ঠিক তেনেদনে আনফালে সাংস্কৃতিক-ভাষিক ক্ষেত্ৰত কিছু ক্ষতি নকৰাও নহয়।

সাম্প্ৰতিক নৱ প্ৰজন্মৰ মাজত প্ৰচলিত অসমীয়া ভাষা আৰু নব্য মাধ্যমসমূহত ব্যৱহৃত অসমীয়া ভাষাই অসমীয়া জাতিৰ পৰিচয়জ্ঞাপক তথা প্ৰাণস্বৰূপ অসমীয়া ভাষাটোলৈ যথেষ্ট সংকট কঢ়িয়াই আনিছে। প্ৰমাণ স্বৰূপে ওপৰত আলোচিত অসমীয়া ভাষাৰ সাম্প্ৰতিক পৰিৱৰ্তনৰ ছবিখনেই তাৰ উদাহৰণ। এটা কথা ঠিক যে, ওপৰৰ আলোচনা কৰা দিশসমূহ কথিত ৰূপতহে অধিক দেখিবলৈ পোৱা যায়। কিন্তু এনে গতিত চলি থাকিলে আৰু ৫০ বছৰ পাছত অসমত অসমীয়া ভাষাৰ কি অৱস্থা হ'ব সেয়া অৱৰ্ণনীয় হ'ব। যি কি নহওক সাম্প্ৰতিক অসমীয়া ভাষাৰ যি ৰূপ সেয়া সঁচাই চিন্তনীয় আৰু অসমীয়া ভাষীৰ কাৰণে প্ৰত্যাহ্বান স্বৰূপ। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অধিকাৰী, শুকদেৱ (সম্পা.). *বিশ্বায়ন আৰু অসমীয়া সংস্কৃতি.* প্ৰথম প্ৰকাশ, জাগৰণ সাহিত্য প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০১২

কোঁৱৰ, অৰ্পণা (সম্পা). *অভিধানতত্ত্ব.* দ্বিতীয় প্ৰকাশ, অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ২০০৩

গোস্বামী, গোলোকচন্দ্ৰ. *অসমীয়া ব্যাকৰণৰ মৌলিক বিচাৰ.* তৃতীয় সংস্কৰণ, বাণী লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ১৯৯৩

দত্ত, অখিল ৰঞ্জন. *বিশ্বায়নৰ আলিদোমোজাত সমাজ-সভ্যতা.* প্ৰথম সংস্কৰণ, পদাতিক প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০০৯

দত্তবৰুৱা, ফণীন্দ্ৰনাৰায়ণ. *আধুনিক ভাষাবিজ্ঞানৰ পৰিচয়.* দ্বিতীয় পৰিৱৰ্ধিত প্ৰকাশ, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, ২০০৬

ৰাজবংশী, পৰমানন্দ আৰু ৰামনন্দন বৰা(সম্পা.). *অসমীয়া ভাষা ঃ সংৰক্ষণ, সংবৰ্ধন আৰু সম্প্ৰচাৰ.* প্ৰথম প্ৰকাশ, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, ২০১৩

ৰাভা, উপেন হাকাচাম. *অসমীয়া ৰূপতত্ত্বৰ মৌলিক বিচাৰ.* প্ৰথম প্ৰকাশ, অসম পাবলিচিং কোম্পানী, গুৱাহাটী, ২০১৫

- -. *অসমীয়া আৰু অসমৰ তিব্বত-বৰ্মীয় ভাষা.* চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ভৱানী প্ৰিন্ট এণ্ড পাব্লিকেশ্যনচ্, গুৱাহাটী, ২০১১

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশেষণাত্মক অধ্যয়ন

ৰাখী ৰাজকুমাৰী

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ,
মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ
বিশ্ববিদ্যালয়, নগাঁও, অসম।
৯৪১৫৮৭২৫৬৩
saikiahimanta86@gmail.com

ড° ববিতা বৰুৱা

সহকাৰী অধ্যাপক, বেজেৰা
আঞ্চলিক মহাবিদ্যালয়, অসম।
৮৭২০৯৮৫৪৩২
babitabaruahbezera@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সমাজ ভাষা বিজ্ঞানৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ আলোচ্য বিষয় হৈছে সমাজত লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য। অৰ্থাৎ পুৰুষৰ আৰু নাৰীৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য। এই পাৰ্থক্যৰ মূল কাৰণ হৈছে সামাজিক। নাৰী লিংগগতভাৱে হীন এই ধাৰণা ভাষাৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণে প্ৰদৰ্শন কৰা হয়। সমাজ ভাষা সম্পৰ্কীয় গৱেষণাত নাৰীক পুৰুষৰ পৰা পৃথক কৰি ভাষা ব্যৱহাৰৰ কেতবোৰ বৈশিষ্ট্য আঙুলিয়াই দিয়া হৈছে। যাৰ বাবে স্ত্ৰীভাষা বা Women language পৰিভাষা ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। বহুক্ষেত্ৰত ভাষাত এনে কিছুমান শব্দৰ নিৰ্মাণ কৰা হৈছে বা অৰ্থ আৰোপিত কৰা হৈছে যিয়ে সমাজত নাৰীৰ প্ৰতি হীনাত্মক ধাৰণা পোষণ কৰাত সহায় কৰে। এক কথাত ক'বলৈ গ'লে ভাষাৰ মাধ্যমেৰে সাহিত্য পাঠকৰ কাষ চাপে। সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোণ স্বৰূপ। সাহিত্যত এজন লেখকে প্ৰায়ে সমাজত ব্যৱহৃত ভাষাই প্ৰয়োগ কৰে। গতিকে সমাজত প্ৰচলিত হৈ থকা লিংগকেন্দ্ৰিক বা লিংগ নিৰূপিত ভাষাটো সাহিত্যত প্ৰতিফলিত হোৱাটো স্বাভাৱিক। অসমীয়া ভাষা সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰটো ই ব্যতিক্ৰম নহয়। অসমীয়া সাহিত্যৰ সত্তৰ দশকৰ পৰাই সাম্প্ৰতিকৰলৈকে সাহিত্য চৰ্চা কৰা এগৰাকী সাহিত্যিক হ'ল— অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা। অসমীয়া সাহিত্য জগতত তেওঁৰ ৰচনাৰাজিৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। তেওঁ গল্প সাহিত্য সমূহত সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ বাস্তৱ ৰূপটো প্ৰতিফলন হোৱা দেখা যায়। তেওঁ সামাজিক সমস্যাসমূহৰ সৃষ্টিৰ কাৰণ আৰু সমাধানৰ উপায় সুন্দৰ ব্যাখ্যা গল্প সমূহৰ জৰিয়তে আগবঢ়াইছে। বিশেষকৈ নাৰী জীৱনৰ বিভিন্ন সমস্যা, কাৰণ, সমাজত নাৰীৰ স্থান, মৰ্যদা সকলোবিলাক তেওঁ গল্পত প্ৰতিফলন ঘটা দেখা যায়। প্ৰস্তাৱিত বিষয়ৰ আলোচনাত অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত সমাজত প্ৰচলিত হৈ থকা লিংগ নিৰূপিত ভাষাটো কিদৰে ব্যৱহৃত হৈছে তাৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ লিংগকেন্দ্ৰিক ভাষা, লিংগ বৈষম্য পুৰুষতান্ত্ৰিকতা, সমাজ-ভাষা-বিজ্ঞান।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

সমাজ ভাষা বিজ্ঞানৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ আলোচ্য বিষয় হৈছে সমাজত লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য। অৰ্থাৎ সমাজত পুৰুষ আৰু নাৰীৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য আছে। এই পাৰ্থক্যৰ মূল কাৰণ হৈছে সামাজিক। পুৰুষ প্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাত অতীতৰে পৰা বৰ্তমানলৈকে বৰ্তি থকা এক জটিল বিষয় হৈছে লিংগ বৈষম্য। জন্মগত ভাৱে পুৰুষ নাৰীৰ যি জৈৱিক পাৰ্থক্য (Sex) সেইয়া প্ৰাকৃতিগত। কিন্তু পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ

ব্যৱস্থাত সমাজিক সাংস্কৃতিকভাৱে পৃথক অৱস্থানত নাৰীৰ বৰ্গ নিৰ্মাণ (Gender) কৰা হয়। আমাৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক চিন্তাধাৰাত নাৰী পুৰুষতকৈ লিংগগতভাৱে হীন এই বৈষম্যমূলক সামাজিক সাংস্কৃতিক মানসিকতা জড়িত। ভাষা হৈছে সামাজিক মূল্যবহনকাৰী এক প্ৰক্ৰিয়া। তদুপৰি ভাষা যিহেতু সমাজিক ব্যৱস্থাই বৰ্তাই ৰখাৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ মাধ্যম গতিকে ভাষাত এই চিন্তাধাৰা পূৰ্ণ প্ৰতিফলন ঘটাটো স্বাভাবিক। নাৰী লিংগগতভাৱে হীন এই ধাৰণা ভাষাৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণে প্ৰদৰ্শন কৰা হয়।সমাজ ভাষা সম্পৰ্কীয় গৱেষণাত নাৰীক পুৰুষৰ পৰা পৃথক কৰি ভাষা ব্যৱহাৰ কেতবোৰবৈশিষ্ট আঙুলিয়াই দিয়া হয়। যাৰ বাবে “স্ত্ৰী ভাষা” বা (women language) পৰিভাষা ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। বহু ক্ষেত্ৰত ভাষাত এনে কিছুমান শব্দ নিৰ্মাণ কৰা হৈছে বা অৰ্থ আৰোপিত কৰা হৈছে যিয়ে সমাজত নাৰীৰ প্ৰতি হীনাত্মক ধাৰণা পোষণ কৰাত সহায় কৰে। এক কথাত কবলৈ গলে ভাষাৰ মাধ্যমৰে সাহিত্য পাঠকৰ কাষ চাপে। সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোন স্বৰূপ। সাহিত্যত এজন লেখকে প্ৰায় সমাজত ব্যবহৃত ভাষাই প্ৰয়োগ কৰে। গতিকে সমাজত প্ৰচলিত হৈ থকা লিংগকেন্দ্ৰক বা লিংগধৰ্মী ভাষাটো সাহিত্যত প্ৰতিফলিত হোৱাটোস্বাভাবিক। অসমীয়া ভাষা সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰতো ই ব্যতিক্ৰম নহয়।

অসমীয়া সাহিত্যৰ সত্তৰ দশকৰ পৰা সাম্প্ৰতিক সময়ৰলৈকে সাহিত্য চৰ্চা কৰা এগৰাকী সাহিত্যিক হ’ল অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা। অসমীয়া সাহিত্য জগতত তেওঁৰ ৰচনাৰাজিৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। প্ৰস্তাবিত আলোচনা পত্ৰত অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

বিষয় একোটাৰ গৱেষণামূলক অধ্যয়নৰ আঁৰত নিৰ্দিষ্ট কিছুমান উদ্দেশ্য জড়িত হৈ থাকে। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীৰ্ষক বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰো কিছুমান নিৰ্দিষ্ট উদ্দেশ্য আছে। উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে—

ক) অসমীয়া সাহিত্যত লিঙ্গ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

খ) নব্য আধুনিক দৃষ্টিভঙ্গীৰ সাহিত্য চৰ্চা কৰা অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ সাহিত্যৰাজিত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ কিদৰে হৈছে তাক নিৰ্ণিত কৰা।

গ) সমাজ ভাষা বিজ্ঞানৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে সমাজত ব্যৱহৃত হৈ থকা নাৰী পুৰুষৰ ভাষাৰ পৃথক বৈশিষ্ট্য আৰু ইয়াৰ অন্তৰ্নিৰ্হিত কাৰণ আদি নিৰূপন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

“অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মাক অধ্যয়ন (অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যৰ বিশেষ উল্লেখেৰে) শীৰ্ষক বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। ইয়াৰ কাৰণ সমূহ হৈছে —

(ক) বিষয়টোৰ সম্পৰ্কত পুংখানুপুংখ গৱেষণামূলক অধ্যয়ন হোৱা নাই।

(খ) ভাষাৰ আৰু লিংগৰ ক্ষেত্ৰত নাৰীয়ে কেনেকৈ কথা কয় তাতকৈ নাৰীক কেনেকৈ কথা কওৱা হয় সেইটো গুৰুত্বপূৰ্ণ। লিংগ আৰু ভাষাৰ ব্যৱহাৰ সমাজতাত্ত্বিক প্ৰেক্ষাপটত বিচাৰ কৰিবৰ বাবে এই বিষয়ে অধ্যয়নৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

(গ) অসমীয়া সাহিত্যক নব্য দৃষ্টি ভংগীৰে সাহিত্য চৰ্চা কৰি সমৃদ্ধ কৰা লেখক অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাই কিদৰে তেওঁৰ গল্প সাহিত্যত নাৰী আৰু পুৰুষ সূচক ভাষা প্ৰয়োগ কৰিছে তাক জ্ঞাত হবৰ বাবে বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

“অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশ্লেষণত্মক অধ্যয়ন” শীৰ্ষক বিষয়েআলোচনা কৰোঁতে আলোচনাৰ পৰিসৰত অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যসমূহক সামৰি লোৱা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাবিত আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে তিনিতা পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। সেইয়া হৈছে—

ক) বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি।

খ) বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি।

গ) সমাজতাত্ত্বিক পদ্ধতি।

১.০ মূল আলোচনা ঃ

১.১ অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যৰ চমু পৰিচয় ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ সাম্প্ৰতিক সময়ৰ এগৰাকী গল্পকাৰ হ’ল অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা। তেওঁ সত্তৰ দশকৰ পৰাই সামাজিক দায়বদ্ধতাৰে সাম্প্ৰতিক সময়ৰলকৈ গল্প ৰচনা কৰি আহিছে। তেওঁৰ প্ৰকাশিত গল্প সংকলন “সোণলী ঈগলে

কণী পাৰিলে বেলিয়ে উমনি দিলে" শীৰ্ষক গল্প সংকলনৰ পাতনিত নিজৰ সাহিত্য চৰ্চাৰ আৰম্ভণি কথাত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে—

'১৯৬৭ চনত দৈনিক অসমৰ মইনা মেলত মোৰ প্ৰথম গল্পটো প্ৰকাশ পাইছিল। তেতিয়া মই গোলাঘাট মিছন গাৰ্লছ হাইস্কুলৰ সপ্তমমান শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰী আছিলোঁ। তাৰ পিছত মই ভালেমান গল্প লিখিলো। কেইবাটাও সংকলন প্ৰকাশ হ'ল। প্ৰতিটো সংকলনৰ দুই তিনিটাকৈ নতুন নতুন সংস্কৰণো প্ৰকাশ হ'ল। পাঠকে মোক আপোন কৰি লৈছে বাবে এয়া সম্ভৱ হৈছে।'[১]

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ প্ৰকাশিত গল্প সম্ভাৰলৈ লক্ষ্য কৰিলে অসমীয়া চুটি গল্প সাহিত্যলৈ বহু সংখ্যাক বৰঙণি আগবঢ়োৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ প্ৰথম প্ৰকাশিত গল্প সংকলন হৈছে — 'মৰুযাত্ৰা আৰু অন্যান্য'। এই গল্প সংকলনখনত সন্নিবিষ্ট গল্প সমূহ প্ৰথম স্তৰৰ ৰচনা আছিল। প্ৰথম স্তৰৰ ৰচনা সমূহত মাসাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক সমস্যা, নাৰী মনৰ উপলব্ধি আদিক গল্পৰ বিষয় বস্তু হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। তেওঁৰ প্ৰকাশিত অন্যান্য গল্পসংকলনসমূহ হৈছে মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য (১৯৯৫), দেও পাহৰৰ ভগ্নস্তূপত (১৯৯৯), পাছ চোতালৰ কথকতা (২০০০), মিলেনিয়ামৰ সপোন (২০০২), আলেক জান বানুৰ জান (২০০৫), কুৰুশ্বোৱাৰ সপোন, মোৰ সপোন সিহঁতৰ সপোন (২০০৭), সোণালী ঈগলে কণী পাৰিলে বেলিয়ে উমনি দিলে (২০১০), মৰিয়ম আষ্টিন অথবা হীৰা বৰুৱা (২০১২), জলতৰঙ্গৰ সুৰ (২০১৬), পানী গাভিনী আছিল আৰু অন্যান্য (২০২৯) ইত্যাদি।

সত্তৰ দশকৰ পৰাই সামাজিক দায়বদ্ধতাৰে গল্প ৰচনা কৰা অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত সমাজৰ শোষিত নিপীড়িতজনৰ প্ৰতি বিশেষ দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰা দেখা যায়। তৃতীয় বিশ্বৰ লেখক হিচাপে তেওঁৰ সাহিত্যত সমাজৰ শেষিত আৰ্তজনৰ ছবি প্ৰতিফলিত হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। তদুপৰি সত্তৰ দশকৰ পৰা বৰ্তমানলকৈ মানুহে ভোগ কৰা যেনে সন্ত্ৰাসবাদ, সাম্প্ৰদায়িকতাবাদ, সামন্তবাদৰ পশ্চাদগামিতা অথবা নতুন সমাজখনক গ্ৰাস কৰা পুজিঁবাদৰ সৰ্বগ্ৰাসী প্ৰভাৱ আদি সকলো সমস্যাক গল্পৰ বিষয়বস্তু হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছে। তেওঁৰ গল্পত গভীৰ মানৱীয় মূল্যবোধৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি, সমাজনীতি, গোষ্ঠি-বৰ্ণ-সম্প্ৰদায় অথবা লিংগ ভিত্তিক বৈষম্য, শ্ৰেণীগত শোষণ ব্যৱস্থা আদিৰ কথা প্ৰকাশ কৰোতে মানৱীয় প্ৰমূল্যবোধক তাৰ লগত সংপৃক্ত কৰি ৰাখিছে। তেওঁ এগৰাকী সমাজসচেতন আৰু সংবেদনশীল গল্পকাৰ আছিল।

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ প্ৰায়বোৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু সমাজকেন্দ্ৰিক। বৰ্তমান সমাজত ঘটা মূল্যবোধৰ দ্ৰুত অৱক্ষয়, পুঁজিবাদ বা ভোগবাদৰ সৰ্বগ্ৰাহী প্ৰভাৱৰ কথা তেওঁৰ গল্পত পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে মৰীচিকা, নিমন্ত্ৰণ, দেৱী মেদনা, বগামাটি থানৰ ভোগী আদিৰ কথা কব পাৰি। তেওঁৰ গল্পত সমাজত প্ৰচলিত হৈ অহা কু-সংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বসে আচ্ছন্ন কৰি ৰখা সমাজৰ প্ৰতি বিদ্ৰূপ মনোভাৱ পোষন কৰা দেখা যায়। এই ক্ষেত্ৰত "পাছ চোতালৰ কথাকতা" গল্পটোলৈ আঙুলিয়াব পাৰি। সাম্প্ৰদায়িকতাবাদ, সন্ত্ৰাসবাদ আদিও তেওঁৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু আছিল। তেওঁৰ ব'হাগ, বৰষুণ, কাৰ্তিকৰ কাহিনী, ভূমিপুত্ৰত আদিত সাম্প্ৰদায়িকতাৰ স্পষ্ট প্ৰতিফলন দেখা যায়। অসমত জনগোষ্ঠীয়, ভাতৃঘাতী, সংঘাট, সন্ত্ৰাসবাদ উত্থানক কেন্দ্ৰ কৰি মৰুযাত্ৰা, নদীৰ মান নায়িকা, বীৰ দৈমালুৰ সাধু, কুনুৰ মাৰ ঘৰ, শ্ৰৱন কুমাৰ মাতৃ আদি কৰি ভালেমান গল্প ৰচনা কৰিছে। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত আন্তৰ্জাতিকতাবাদৰ প্ৰসংগও উত্থিত হৈছে। 'ঘৃণাৰ ইপাৰ সিপাৰ' গল্পটোৰ জৰিয়তে আমেৰিকাৰ বৰ্ণ বৈষম্যবাদ আৰু জৰ্মানীৰ নাজীবাদি উদ্ভুদৰ অতিশয্যক আলোচনাৰ প্ৰসংগলৈ আনি ভাৰতৰ স্বাধীনোত্তৰ কালৰ জনগোষ্ঠীগত সংঘাতৰ লগত একাত্ম কৰি বিচাৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে।

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ ভালেমান গল্পত সমাজত নিপীড়িত নাৰীৰ দুৰ্বিসহ জীৱনৰ ছবি প্ৰতিফলিত হৈছে। তেঁওৰ গল্পত নাৰীবাদৰ প্ৰসংগও মন কৰিবলগীয়া। পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত নাৰীৰ স্থান নিৰ্দ্ধাৰণ কৰোতে শ্ৰেণীদ্বন্দ্বৰ কথাও উল্লেখ কৰিছে। লগতে আমাৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত যুগ যুগ ধৰি চলি অহা লিংগভিত্তিক বৈষম্যৰ সমস্যাটোক আলোচনাৰ আওতালৈ আনিছে। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত নাৰীবাদৰ ক্ষেত্ৰত নাৰীত্বৰ প্ৰতি সমাজৰ যথাযথ মৰ্যদা, সামাজিক ক্ষেত্ৰত নাৰীক স্বীকৃতি প্ৰদান আৰু সমাজৰ শোষন বঞ্চনাৰ বিৰুদ্ধে নাৰীৰ প্ৰতিবাদী সত্ত্বাৰ প্ৰকাশ আদিবোৰ দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে পাছ চোতালৰ কথকতা, নিমন্ত্ৰণ, আপোনজন প্ৰস্তাৱনা, ডাঙৰ নবৌ, পণবন্দী আদি গল্পৰ কথা কব পাৰি।

লোককাহিনী বা লোককথাৰ কলাত্মক প্ৰয়োগেৰেও অৰূপা পতঙ্গীয়া কলিতাই কেইবাটাও গল্প ৰচনা কৰিছে।

বিশেষকৈ জনগোষ্ঠীয় লোক কাহিনী তেওঁৰ কেইবাটাও গল্পত প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়। উদাহৰণ স্বৰূপে তেওঁৰ মোৱাধৰা পথাৰৰ মাণিকী মাধুৰী গল্পৰ মূল উপজীব্য লোক কথা আৰু লোকগীত তাৰ উপৰিও বীৰ দৈমালুৰ সাধু গল্পত বড়ো জনজীৱনত প্ৰচলিত লোক কথা আৰু লোকগীতৰ প্ৰতিফলন ঘটা দেখা যায়।

শেষত কবলৈ গলে সংখ্যাৰ পিনৰ পৰাই নহয়, গল্পৰ বিষয়বস্তুত থকা গভীৰ অৰ্ন্তদৃষ্টি, সমাজ সচেতন মনোভাৱ, ৰচনাৰীতি, আদি সামগ্ৰিক দিশৰ পৰা তেওঁ গল্প যথেষ্ট চহকী। অসমীয়া গল্প সাহিত্যৰ বিষয় বস্তুৰ ক্ষেত্ৰত নব্য দৃষ্টিভংগীৰে আলোকিত কৰাত তেওঁৰ যথেষ্ট অৱদান আছে বুলি কব পাৰি।

১.২ লিংগভেদ আৰু ভাষা এক চমু আলোকপাত ঃ

সমাজ ভাষা বিজ্ঞানৰ এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ আলোচনাৰ বিষয় হৈছে লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য। অৰ্থাৎ সমাজত নাৰী পুৰুষৰ ভাষা ব্যৱহাৰত যি পাৰ্থক্য সেয়াই লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য বুলি কোৱা হয়। সমাজত প্ৰচলিত লিংগ সম্পৰ্কীয় ধাৰণাক দুটা দিশৰে আলোচনা কৰা হয়। এক হৈছে (Sex) প্ৰাকৃতিক ধাৰণা আৰু আনটো হৈছে সামাজিক ধাৰণা (Gender)। প্ৰথমটো হৈছে প্ৰাকৃতিক বা জৈৱিক। অৰ্থ্যৎ পুৰুষ আৰু মহিলাৰ শাৰিৰীক গঠন, প্ৰকৃতি বেলেগ ধৰণৰ হয়। আনহাতে সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক দিশৰ পৰা নাৰী আৰু পুৰুষ মাজত যি পাৰ্থক্য গঢ় লৈ উঠে বা পুৰুষ নাৰীৰ পৃথক সামাজিক ভুমিকা নিৰ্দ্ধাৰণ কৰে সেইয়া হৈছে সমাজিক লিংগ। ভাষাৰ উৎপত্তি হয় সমাজত। আনহাতে ভাষাৰ বিকাশো সমাজতে হয়। গতিকে সামাজিক ধ্যান ধাৰণা, ৰীতি নীতি আচাৰ ব্যৱহাৰ, সামাজিক সংস্কাৰ, বিশ্বাস আদিসকলোবোৰ ভাষাৰ জড়িয়তে প্ৰকাশ হয়। যিহেতু আমাৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত নাৰী পুৰুষৰ পৃথক সামাজিক অৱস্থান পৰিলক্ষিত হয়। গতিকে পুৰুষকেন্দ্ৰিক ৰাজনীতিৰ ক্ষমতাশীল গোটটোৰ স্বাৰ্থপুৰণৰ অভিপ্ৰায় ভাষাৰ মাজত প্ৰতিফলিত হয়। তদুপৰি নাৰী পুৰুষৰ পাৰ্থক্যৰ পৰম্পাৰাগত সমাজ ব্যৱস্থা আৰু অৰ্থনীতিত যি প্ৰভাৱ সেই প্ৰভাৱৰ নানা উপাদান ভাষাৰ মাজতো নিহিত হৈ থাকে। অৰ্থনৈতিক ভাৱে মহিলাৰ কৰ্মক্ষেত্ৰ প্ৰজনন আৰু শিশু প্ৰতিপালনৰ লগত জড়িত ঘৰখন। আনহাতে পুৰুষৰ কৃষিকৰ্ম, বাণিজ্য, ব্যৱসায়, চাকৰি, ধৰ্ম, ৰাষ্ট্ৰ গঠন আদিৰ লগত জড়িত। সমাজত সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ, উৎপাদনৰ লগত জড়িত হৈ পুৰুষ সমাজত নিজৰ আধিপত্য স্থাপন কৰে। যিহেতু নাৰী পুৰুষৰ সামাজিক অৱস্থানৰ প্ৰভাৱ বিবিধ উপাদান ভাষাৰ মাজত নিহিত হৈ থাকে গতিকে ভাষা ব্যৱহাৰতো পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। সমাজ ভাষা বিজ্ঞানীসকলে ভাষা ব্যৱহাৰত সাধৰণতে পুৰুষতকৈ নাৰীৰভাষা সাধু বা মান্য বুলি মত প্ৰকাশ কৰে।

সমাজ ভাষাবিজ্ঞানীসকলে সমাজত ব্যৱহৃত ভাষা একোটাক সমাজতত্ত্বৰ আধাৰত পৰ্যবেক্ষন কৰাৰ দৰে লিংগ অনুসৰি ভাষা ব্যৱহাৰ পাৰ্থক্যৰ কথাও আলোচনা কৰে। পুৰুষ মহিলাৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্য সমাজ অনুযায়ী বেলেগ বেলেগ হয়।

কোনো কোনো সমাজত পাৰ্থক্য তেনেই নগন্য। আনহাতে কোনো কোনো সমাজত পাৰ্থক্য অধিক আৰু স্পষ্ট। সমাজ ভাষা বিজ্ঞানী Peter Trudgillৰ মতে-

‘লিংগ ভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ পাৰ্থক্যৰ কাৰণ সমাজিক পাৰ্থক্যহে’[২]

ভাষা হৈছে সামাজিক মূল্য বহনকাৰী এক প্ৰক্ৰিয়া। লিংগভেদে ব্যৱহৃত ভাষাৰ প্ৰয়োগৰ পাৰ্থক্য সমূহৰ আলোচনাৰ যোগেদি সমাজত নাৰী আৰু পুৰুষৰ মৰ্যদা সমান হয় নে নহয় তাক নিৰ্ণয় কৰিব পাৰি। অট’ জেছপাৰচনে তেওঁৰ Language : Its Nature Development and Origin নামৰ গ্ৰন্থত ‘The women’ নামৰ অধ্যায়ত নাৰী পুৰুষৰ ভাষাৰ মাজত থকা পাৰ্থক্যৰ কথা উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে—

‘সমাজত এনে কিছুমান জনজাতি আছে য’ত পুৰুষ আৰু মহিলাসকলে সম্পূৰ্ণ বেলেগ বাষা বা পৃথক উপভাষা কয়।’[3]

সমাজ ভাষা বিজ্ঞানীসকলে নাৰীৰ ভাষাৰ মাজত নাৰীৰ কথা কোৱা কেতবোৰ বৈশিষ্টৰ বিষয়েও অধ্যয়ন কৰিছে। ১৯৭৫ চনত প্ৰকাশিত ৰবিন লেকফৰ (Robin Lakoff) ‘Language and Womens Place’ নামৰ গ্ৰন্থত ভাষাত লিংগভেদৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। তেওঁৰ মতে—

‘নাৰীৰ ভাষা পুৰুষতকৈ বেছি নম্ৰ, কুণ্ঠাপুৰ্ণ তথা আপেক্ষিকভাৱে কম আত্মপ্ৰত্যয়ী, more polite, more hesitant and less confident তদুপৰি লেকফৰ মতে মহিলাসকলে কোমল (soft) অনুৰোধসূচক শব্দ বা বাক্য বেছিকৈ ব্যৱহাৰ কৰে।’[৪]

ৰবীন লেকফৰ Language and Womens place শীৰ্ষক গ্ৰন্থত আগবঢ়োৱা ধাৰণাসমূহৰ তাত্ত্বিক আৰু প্ৰয়োগিগ বাখ্যা হৈ পৰিছিল সমাজভাষা বিজ্ঞানৰ লিংগভেদে ভাষা ব্যৱহাৰৰ আলোচনাৰ প্ৰধান বিষয়। তেওঁৰ মতে—

“নাৰীৰ ভাষাগত পাৰ্থক্যৰ কাৰণ দুটা। প্ৰথমটো হৈছে

তেওঁলোক তেনেদৰে শিকোৱা হয় আৰু আনটো সাধৰণ ভাষা ব্যৱহাৰ যিটো তেওলোকৰ বাবে নিৰ্দিষ্ট কৰা থাকে।'[৫]

লেকফে ইংৰাজী ভাষাত লক্ষ্য কৰা মহিলাৰ ভাষিক বৈশিষ্টৰ কেতবোৰ দিশ 'Language and Womens place' গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। সেইয়া হৈছে মহিলাৰ বাক্‌ভঙ্গীত অনুৰোধৰ বিস্তৃতি বেছি, ইংৰাজী tag question আৰ্হিৰ বাক্য ব্যৱহাৰ, শূন্য বিশেষণৰ বাক্য, ৰঙৰ বৰ্ণনাত সিদ্ধহস্ত, উদাত্ত সুৰৰ প্ৰয়োগৰে বাখ্যামূলক বৰ্ণনা, মানকৃত ৰূপৰ প্ৰয়োগ, নমনীয় ৰূপৰ ব্যৱহাৰ, অতি আমাৰ্জিত শব্দৰ ব্যৱহাৰৰ পৰা আতৰত থাকে, শ্বাসাঘাতৰ প্ৰবল প্ৰয়োগৰে কোনো বিশেষ অভিব্যক্তিৰ প্ৰকাশ আদি। উল্লেখ যোগ্য যে সমাজ ভাষা সম্পৰ্কীয় গৱেষণাত নৰীক এইদৰে পুৰুষৰ পৰা পৃথক কৰি ভাষা ব্যৱহাৰৰ বৈশিষ্টসমূহ আঙুলিয়াই দিয়াৰ চেষ্টা কৰা হৈছে। যাৰ বাবে স্ত্ৰী ভাষা বা Womens language পৰিভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। কিন্তু সমাজ ভাষা বা স্ত্ৰী ভাষাৰ ধাৰণা দিছে যদিও পৰৱৰ্তী আলোচক সকলে এই ধাৰণা উপেক্ষা কৰা দেখা যায়। প্ৰকৃতাৰ্থত মহিলাৰ অৰ্থনৈতিক স্বাৱলম্বিতা, ৰাজনৈতিক আৰু সামাজিক জীৱনত অধিকাৰ, সচেতনতা বাঢ়ি অহাৰ লগে লগে মহিলাৰ পৃথক ভাষা প্ৰয়োগৰ ধাৰণাটো ভিত্তীহীন হৈ পৰে। ব্যক্তিৰ সামাজিক অৱস্থানৰ পৰাই বহুসময়ত ভাষা বা বাক্‌ভংগী নিৰূপিত হয়। যিহেতু পুৰুষ প্ৰধান সমাজত নাৰী উপেক্ষিত শ্ৰেণী আছিল। গতিকে নাৰীৰ ভাষাত সুকীয়া বাক্‌ভংগী লক্ষ্য কৰা গৈছিল আৰু পুৰুষপ্ৰধানসমাজত যিটো স্ত্ৰী ভাষা প্ৰচলিত আছিল সেয়া ক্ষমতাহীন ভাষা।

১.৩ অসমীয়া ভাষাত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ

পৃথিৱীৰ অন্যান্য ভাষাৰ দৰে অসমীয়া ভাষাটো লিংগভেদৰ কিছু পাৰ্থক্য নিৰূপিত হয়। অসমীয়া ভাষাৰ জতুৱা ঠাচসমূহৰ যোগেদি সমাজত নাৰীৰ সমাজিক স্থিতি বিষয়ে অনুধাৱন কৰিব পাৰি। জতুৱা ঠাঁচসমূহত মাতৃৰ মমতাময়ী ৰূপ, শাহুৰ কৰ্তৃত্ব, বোৱাৰীৰ প্ৰতি নিন্দাসুচক মন্তব্য, পত্নীৰ মৰ্যদা, শাহু বোৱাৰীৰ সম্পৰ্ক, ছোৱালী সম্বন্ধীয় ধাৰণা, নাৰীৰ সৌন্দৰ্য, গুণ গৰিমা আদিৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়। ইয়াৰ যোগেদি অসমীয়ান সমাজত নাৰীৰ অৱস্থান সম্পৰ্কে জ্ঞাত হ'ব পাৰি। উদাহৰণস্বৰূপে "আইৰ সমান হ'ব কোন নৈৰ সমান ব'ব কোন", "কচু হলে খজুৱায়,শাহু হলে নচুৱাই", ননদ হলে খোৰা, জেশাহু হ'লে বাৰীৰ পাছৰ পৰা গুচা, কটাৰী ভাল কৰে শিলে তিৰোতা ভাল কৰে কিলে, কুকুৰ চাকৰ তিৰিক নিদিবা লাই লাই পালে তিনিও কান্ধত উঠিবলৈ যায়, ল'ৰা ধান, ছোৱালী পতান, ৰূপে কি কৰে গুণেহে সংসাৰ তৰে ইত্যাদি।

সমাজ ভাষা বিজ্ঞানী লেকফে ইংৰাজী ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত কোৱাৰ দৰে অসমীয়া ভাষাটো মহিলাৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰ কিছুমান ভাষিক বৈশিষ্ট পৰিলক্ষিত হয়। সেয়া হৈছে —

ক) ৰঙৰ বৰ্ণনা ক্ষেত্ৰত সিদ্ধহস্ত।

খ) মহিলাৰ বাক্‌ভঙ্গীত অনুৰোধৰ বিস্তৃতি বেছি।

গ) ইংৰাজী ৰ আৰ্হিৰে ভাষা ব্যৱহাৰ।

ঘ) পৰোক্ষ বাক্‌ভঙ্গীৰ ব্যৱহাৰ।

ঙ) মাৰ্জিত বা সাধুভাষাৰ ব্যৱহাৰ ইত্যাদি।

এইক্ষেত্ৰত ড° ৰমেশ পাঠকে অসম সাহিত্য সভাৰ প্ৰত্ৰিকা (২০০৯, জুন) প্ৰকাশিত প্ৰবন্ধ 'সমাজত নাৰীভাষা স্বকীয়তা বিচাৰ'ত অসমীয়া সমাজৰ নাৰীৰ ভাষা কেনে আছিল সেই সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে—

ক) উচ্চ স্বৰত কথা কোৱা নিষেধ।

খ) অশ্লীল, অশ্ৰাব্য, অমাৰ্জিত শব্দ নাৰীয়ে ব্যৱহাৰ কৰা অনুচিত।

গ) কথা-বতৰা মাৰ্জিত, ৰুচিশীল হ'ব লাগে।

ঘ) মহিলাই ডাঙৰকৈ বা বেছিকৈ হাঁহিব নালাগে। বেছিকৈ হঁহা বেয়া। ইত্যাদি।

অসমীয়া ভাষাত মহিলাৰ নামৰ ক্ষেত্ৰত লিংগকেন্দ্ৰিক ৰূপ কিছুমান দেখিবলৈ পোৱা যায়। মহিলাৰ নামৰ লগত বৈবাহিক স্থিতি সাঙোৰ খাই থাকে। যেনে মহিলাৰ নামৰ আগত ব্যৱহৃত Mrs অথবা Miss য়ে মহিলাৰ বৈবাহিক স্থিতি তথা নাৰী পিতৃ নে স্বামীৰ অধীনত আছে সেই কথা নিৰূপন কৰে। আনহাতে আকৌ বিবাহৰ পাছত বহু মহলাই নিজৰ নামৰ লগত স্বামীৰ নাম আৰু উপাধি আদি সংযুক্ত কৰে।

যেনে — মিতালী গগৈ — মিতালী শইকীয়া,
— মিতালী গগৈ শইকীয়া,
— মিতালী প্ৰণৱ শইকীয়া।

আনহাতে আমাৰ গ্ৰাম্য সমাজত বহু ক্ষেত্ৰত মহিলাৰ নাম বা পৰিচয় লুপ্ত হৈ যায়। এই ক্ষেত্ৰত মহিলা গৰাকী সন্তান মাতৃ হিচাপে, কাৰোবাৰ ঘৈণীয়েক, জীয়েক আদি হিচাপেহে পৰিচয় লাভ কৰে। যেনে — ৰামৰ মাক, ৰামৰ ঘৈণিয়েক, ৰামৰ জীয়েক ইত্যাদি।

মন কৰিবলগীয়া যে আমাৰ অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজত

মাতৃগৰাকীক পুত্ৰৰ নামৰ সৈতে সংযুক্ত কৰিহে নামকৰণ কৰা হয়, কন্যা সন্তানৰ নামৰ সৈতে সংযুক্ত প্ৰায়ে কৰা নহয়। তদুপৰি কেতিয়াবা মহিলা এগৰাকীয়ে বিয়া হোৱা ঠাইখনত জন্মৰ স্থান অনুসৰিও নামাংকিত হয়। যেনে— গোৱালপৰীয়ীনী, শিৱসাগৰীয়ানী ইত্যাদি।

ব্যকৰণগত দিশত মন কৰিলে অসমীয়া ভাষাটোক একে আষাৰেই লিংগকেন্দ্ৰিক বুলি কব নোৱাৰি। কাৰণ হিন্দী আৰু সংস্কৃত ভাষাৰ দৰে অসমীয়া ভাষাত লিংগ অনুযায়ী ক্ৰিয়া পৰিবৰ্তন নহয়। উদাহৰণ স্বৰূপে—

লৰাটো আহিছে। ছোৱালীজনী আহিছে।

কিন্তু অসমীয়া ভাষাত বিশেষণ প্ৰয়োগত ৰূপটো সলনি হোৱা দেখা যায়। যেনে —

বগা ল'ৰা / বগী ছোৱালী

সুন্দৰ ল'ৰা / সুন্দৰী ছোৱালী

অসমীয়া আৰু ইংৰাজী দুয়োটা ভাষাতে স্ত্ৰীবাচক শব্দবোৰ পুৰুষবাচক ৰূপটোৰ লগত সংগীকৰণৰ জড়িয়তে গঠন কৰা হয়। বিশেষকৈ বৃত্তিকেন্দ্ৰিক স্ত্ৰী বাচক শব্দবোৰ মূলত পুৰুষবাচক ৰূপৰ পৰাই গঠন হয়। যেনে—

manager — manageress

actor — actress

নায়ক — নায়িকা

লেখক—লেখিকা

ইংৰাজী ভাষাৰ দৰে অসমীয়া লিংগসূচক যুৰীয়া শব্দবোৰ ব্যৱহাৰ ক্ষেত্ৰত বেচিসংখ্যকে পুৰুষ বুজোৱা ৰূপটো সদায় আগত ব্যৱহাৰ হয়। যেনে — ল'ৰা-ছোৱালী

লেখক-লেখিকা

ছাত্ৰ-ছাত্ৰী

নাৰী পুৰুষতকৈ হীন বা লিংগগতভাৱে দ্বিতীয় স্থানৰ এই ধাৰণাক ভাষাৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণে প্ৰদৰ্শিত হয়। অসমীয়া ভাষাটো কেতবোৰ শব্দ প্ৰচলিত আছে যিবোৰে মহিলাৰ সামাজিক অৱস্থান নিৰূপিত কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে "সতী" শব্দটো নাৰীক বুজোৱা হয় কিন্তু পুৰুষক বুজাবলৈ তেনে কোনো শব্দ অসমীয়াত নাই। ঠিক সেইদৰে "পতিব্ৰতা" শব্দৰ সমাৰ্থক ৰূপত পুৰুষক বুজাবলৈ আমাৰ ভাষাত শব্দ নাই। আনহাতে নৱ বিবাহিত মহিলাক "পুত্ৰৱতী" হোৱা বুলি আশীৰ্বাদ দিয়া হয়, "পুত্ৰীৱতী" হোৱা বুলি আৰ্শবাদ দিয়া নহয়। ইয়াৰ জৰিয়তে সমাজৰ বাবে পুত্ৰহে বাঞ্চিত, পুত্ৰী নহয় সেই কথা অৱগত।

অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত নিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্গ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত নাৰীৰ প্ৰতিহীনাত্মক দৃষ্টি পোষণ কৰা দেখা যায়। উদাহৰস্বৰূপে 'জনী' স্ত্ৰীসুচক নিৰ্দিষ্টতাবাচক সৰ্গ মানুহ জন/মানুহজনী এই হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰাৰ উপৰিও ইতৰ প্ৰাণীৰ ক্ষেত্ৰতো 'জনী' ৰূপটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। যেনে—

কুকুৰ / কুকুৰজনী,

গৰু / গৰুজনী।

এনেদৰে অসমীয়া ভাষাত লিংগভেদে ভাষাৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়।

১.৪ অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ

ভাষাত সমাজত নাৰীৰ প্ৰতি হানাত্মক ধাৰণা পোষণ কৰি কিছুমান শব্দ নিৰ্মাণ কৰা হৈছে। সমাজভাষা সম্পৰ্কীয় গৱেষণাত নাৰীক পুৰুষৰ পৰা পৃথক কৰি কেতবোৰ বৈশিষ্ট আঙুলিয়াই দিয়া। যাৰ পৰিভাষা হিচাপে 'স্ত্ৰীভাষা' বা women language শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। সহিত্য আৰু ভাষাৰ সম্বন্ধে কবলৈ গলে ভাষাৰ মাধ্যমৰে সাহিত্য পাঠকৰ কাষ চাপে। সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোন স্বৰূপ। সাহিত্য সমাজৰ যিহেতু অংগাগী সম্পৰ্ক গতিকে সমাজত ব্যৱহৃত ভাষাই সাহিত্যত প্ৰয়োগ হয়। গতিকে সমাজত প্ৰচলিত হৈ থকা লিংগকেন্দ্ৰিক বা লিংগভেদ ভাষা সহিত্যত প্ৰতিফলিত হোৱাটো স্বাভাৱিক। বিশ্ব সাহিত্যৰ দৰে অসমীয়া সাহিত্যও এই ক্ষেত্ৰত ব্যতিক্ৰম নহয়। অসমীয়া সাহিত্যতো সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক বিভিন্ন দিশত পুৰুষ নাৰী নিৰ্বিশেষে ভাষা প্ৰয়োগত পাৰ্থক্য দেখা যায়। অসমীয়া সাহিত্যৰ সত্তৰ দশকৰ পৰা নব্য দৃষ্টিভংগীৰে সাহিত্য চৰ্চা কৰা এগৰাকী সাহিত্যিক হল অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা। অসমীয়া গল্প সাহিত্যত তেওঁৰ অৱদান যথেষ্ট। তেওঁৰ গল্পত সমাজত নাৰী পুৰুষ অৱস্থান সম্পৰ্কীয় বহুতো দিশ প্ৰতি ফলিত হৈছে। নাৰীৰ সামাজিক অৱস্থান, পুৰুষ প্ৰধান সমাজত নাৰীৰ শোষণ, বঞ্চনা বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদ, পুৰুষৰ মানসিকতা, সমাজিক ক্ষেত্ৰত নাৰীৰ স্বীকৃতি আদিবোৰ দিশ তেওঁৰ গল্পত প্ৰতিফলিত হৈছে। অৰ্থাৎ তেওৰ গল্পত পুৰুষ প্ৰধান সমাজত বৰ্তী থকা লিংগ বৈষম্যৰ ছবিখন স্পষ্ট। গতিকে তেওঁৰ গল্প সাহিত্যত পুৰুষ নাৰীৰ নিৰ্বিশেষে লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ হোৱাটো স্বাভাৱিক। তলত তেওঁৰ গল্প সাহিত্যত পুৰুষসুচক আৰু নাৰীসুচক ভাষাৰে প্ৰয়োগ এই দুটা দিশত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ সম্পৰ্কে

আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

১.৪.১ পুৰুষসূচক ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ

সমাজিক সাংস্কৃতিক অৱস্থানে পুৰুষ নাৰীতকৈ উৰ্দ্ধৰ বুলি নিৰ্দেশ কৰে। সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰৰ দৰে ভাষিক প্ৰয়োগতো পুৰুষ নাৰীৰ মাজত পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। সমাজিক ধাৰণা অনুসৰি পুৰুষৰ বাক্ ব্যৱহাৰত কৰ্তৃত্বশীল মনোভাৱ লক্ষ্য কৰা দেখা যায়। পৰিয়ালৰ অৰ্থনৈতিক দিশটো যিহেতু পুৰুষে পৰিচালনা কৰে গতিকে নিয়ন্ত্ৰণ ভাৱো পুৰুষৰ ব্যৱহৃত ভাষাত পৰিলক্ষিত হয়।অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ “সম্ৰাজ্ঞী” গল্পত বৰুণা চলিহা তেওঁৰ সৰু পুত্ৰ ৰূপমৰ ৰুমলৈ গৈ দুৱাৰত টুকুৰিয়াত ৰূপমে মাকক কৰা ব্যৱহাৰত পুৰুষৰ কৰ্তৃত্বশীল মনোভাৱটো প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে এনেদৰে—

‘পিছত খাম, পুৱাতে মোক দিগদাৰি নকৰিব।’ (মৰুযাত্ৰা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং-৭৮)

আকৌ মাক বৰুণা চলিহাই ৰূপমৰ লেতেৰা কাপোৰ খিনি ধুবৰ বাবে উলিয়াই নিবলৈ খোজোতে ৰূপমে মাকক কোৱা কথাটো পুৰুষৰ কৰ্তৃত্বশীল আৰু নিয়ন্ত্ৰণ মনোভাৱ প্ৰতিফলিত হৈছে—

‘মা মোৰ কামত তুমি লাগি নাথাকিবা। দৰমহা লৈ ইমান সোপা মানুহ কিয় ৰাখিছো? ৰূপমে দেৰামকৈ দৰ্জাখন বন্ধ কৰি দিলে।’ (মৰুযাত্ৰা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং-৭৮)

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ ‘প্ৰস্তাৱনা’ গল্পটোত অৰুণৰ কথনভঙ্গীতো কৰ্তৃত্বশীল আৰু নিয়ন্ত্ৰণ মনোভাৱ ফুটি উঠিছে।

‘বিয়া দিয়া ছোৱালীয়ে ইমান ঘৰ ঘৰ কৰি থকাটো ভাল নহয়’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং-১৩৩)

প্ৰস্তাৱনা গল্পটোত পুৰুষৰ অৰ্থনৈতিক নিয়ন্ত্ৰণ তথা কৰ্তৃত্বশীল মনোভাৱটো ৰীমাই ভায়েকে মেট্ৰিক পাছ কৰাৰ পাছত এডমিছনৰ বাবে টকা পাঁচশ পঠিয়াওঁতে আৰু পঢ়াৰ খৰচৰ কথা তাইৰ গিৰিয়েক অৰুণক কওতে অৰুণে দিয়া প্ৰত্যুত্তৰতো ফুটি উঠিছে—

‘এনেকৈ খৰচ কৰিলে ঘৰ আধা হৈ থাকিব।’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং-১৩৩)

সাধু বা মান্য ভাষাৰ বিপৰীতে আনুষ্ঠানিক কথ্য ৰূপটোৱে হৈছে অমাৰ্জিত বা অশিষ্ট ভাষা। এই অশ্লীল ৰূপবোৰৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত সমাজিক অৱস্থানৰ কথাটো গুৰুত্বপূৰ্ণ। আমাৰ গ্ৰাম্য বা লোক সমাজত নাৰীতকৈ পুৰুষৰ কথা বতৰাত অমাৰ্জিত বা গালি গালাজ পাৰোতে অশিষ্ট শব্দ প্ৰয়োগ কৰে বুলি সমাজ ভাষাবিজ্ঞানৰ অধ্যয়নৰ পৰা জ্ঞাত হ’ব পাৰি। এনে পুৰুষসূচক ভাষাৰ প্ৰয়োগ অৰূপা পটঙ্গীয়া গল্প সাহিত্যত ৰক্ষিত হৈছে। ‘কেমিলিয়ন’ গল্পৰ কেন্দ্ৰিয় চৰিত্ৰ লেতেকুজান গাঁৱৰ হোজা খেতিয়ক কৃষ্ণ ডেকাৰ পুতেকক পাৰ্টিৰ প্ৰভাৱশালী সদস্য ৰমেন শৰ্মাই দিয়া গালি শপনিৰ জৰিয়তে—

‘চালা চোৰবৰ বাচ্ছা কি ভাবিছা? সিহতে কি ইলেকচন খেলিব। ভৰি চেলেকা কুকুৰ।’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং-১০৪)

আকৌ ‘ব্ৰাত্য’ গল্পত বাপ গোসাই জীয়েক জোনাকী চুটীয়া সম্প্ৰদায়ৰ ল’ৰা কানাইৰ সৈতে মিলামিছি হৈ জোনাকী কানাইৰ সন্তানৰ মাতৃ হবলৈ ওলোৱাত দেউতাকে যি অবাইছ গালি শপনি পাৰিছে তাৰ জড়িয়তেও পুৰুষসূচক ভাষাৰ প্ৰতিফলন ঘটাৰ উপৰিও নাৰীক তুচ্ছাৰ্থ ভাৱত ব্যৱহাৰ কৰা ভালেকেইটা শব্দ গালিৰ মাজত প্ৰতিফলিত হৈছে।

‘হৰিনাম আৰু আৰ্শীবাদ জোলোকাৰ বাদে অন্য শব্দ নোলোৱা বাপ গোঁসাইৰ মুখৰ পৰা অবাইছ গালি বৰষিবলৈ ধৰিলে। চালি নৰ্টী, মোৰ ছোৱালী হৈ তই পেটত কুকুৰৰ পোৱালী ধৰিলি। বেঞ্চিৰ জাত, তই জন্মিয়ে নমৰিলি কিয়?’ (আলেকজান বানুৰ জান, পৃ. নং.-৩৩)

উল্লেখযোগ্য যে উদ্ধৃত বক্তব্যত ‘বেঞ্চী’ শব্দটো নাৰীৰ চাৰিত্ৰিক পতনৰ সমাৰ্থক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়।কিন্তু পুৰুষৰ ক্ষেত্ৰত আমাৰ অসমীয়া ভাষাত তেনে কোনো পুৰুষসুচিত শব্দৰ প্ৰয়োগ দেখা নাযায়।

অসমীয়া ভাষাত জতুৱা ঠাচ সমূহৰ যোগেদি নাৰী পুৰুষৰ সামাজিক স্থিতিৰ বিষয়ে সহজে অনুধাৱন কৰিব পাৰি। আমাৰ সমাজত পুৰুষক শক্তিশালী, চতুৰ, বুদ্ধিয়ক, নাৰীতকৈ অধিক দুস্থালী, ছোৱালীতকৈ লৰাক আদৰৰ স্থানত ৰখা হৈছিল। অৰূপা পতঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত প্ৰতিফলিত জতুৱা ঠাঁচৰ যোগেদি পুৰুষৰ এই সামাজিক স্থিতি প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে।

‘বোপাই হু তই দেখোন ক্ষীণাইচহু মোৰ সৰিয়হ ফুল হেন ল’ৰাটো কেনেকৈ এই অৱস্থা হ’ল?’ (দেওপাহাৰ ভগ্নাস্তূপত, পৃ. নং.-৪০)

আকৌ

‘মোৰ সোণৰ ছোৱালী বৰ শান্ত, তাইৰ একো ওজৰ আপত্তি নাই, কিন্তু বাঘৰ আগতেল খোৱা ল’ৰাজাকে তাইক সিহঁতৰ ভাগৰ মাছ দেখুৱাই জোকাই স্বৰ্ণৰ থালত মাছ নাই।’

(পাছ চোতালৰ কথকতা, পৃ. নং.-১০)

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত পুৰুষসূচক ভাষাৰ প্ৰয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়।

১.৪.২ নাৰীসূচক ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ

ভাষা হৈছে সমাজিক মূল্য বহনকাৰী এক প্ৰক্ৰিয়া। ইয়াৰ ব্যৱহৃত ৰূপৰ যোগেদি প্ৰতিবিম্বিত হয় সমাজিক, সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক আৰু বয়সানুযায়ী সমাজ এখনৰ ভিতৰত নিৰূপিত হোৱা সম্বন্ধ। পুৰুষ প্ৰধান সমাজত নাৰী পুৰুষৰ ভাষাৰ ব্যৱহাৰে সম্প্ৰদায়টো সমাজিক গঠন দাঙি ধৰে। ভাষা বিজ্ঞানী সকলৰ মতে, নাৰী নিজৰ মৰ্যাদাৰ প্ৰতি অধিক সচেতন। গতিকে তেওঁলোকক আনে যাতে গ্ৰাম্য (low status) বুলি নকয় সেয়ে তেওঁলোকে বাক্‌ভঙ্গীত সাধু বা মান্যৰূপটোৰে ব্যৱহাৰ কৰে। আনহাতে আমাৰ সমাজত অভিভাৱকে ল'ৰাৰ বাক্ ব্যৱহাৰৰ প্ৰতি বেছি গুৰুত্ব নিদিয়ে কিন্তু ছোৱালীৰ বাক্ ব্যৱহাৰৰ প্ৰতি অধিক সচেতন। অমাৰ্জিত বা অসাধু বাক্‌ভঙ্গী ছোৱালীয়ে গ্ৰহণ কৰিলে শুধৰাই দিয়া হয়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত নাৰীৰ বাক্ ব্যৱহাৰ সাধু বা শিষ্ট ভাষাটোৰ ৰক্ষিত হোৱা দেখা যায়। মহিলাৰ বাক্ ব্যৱহাৰত অনুৰোধৰ বিস্তৃতি বেছি। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ "হালধীয়া হাৰাই চেঙেযোৰ" গল্পত ৰেৱতীৰ চেঙেযোৰ বৰজনাকৰ ঘৰত বিয়াত হেৰাই যোৱাত বিচাৰি ফুৰোতে তাইক ককৰ্থনা কৰিছে যদিও ৰেৱতীৰ বাক্‌ভঙ্গীত অনুচ্চ বা অনুৰোধৰ সুৰেই ফুটি উঠা দেখা যায়।—

'ৰেৱতী ওচৰ চাপি গ'ল, বোৱাৰীহঁ মোৰ চেঙেযোৰ দেখিছিলা নে? হালধীয়া হাৰাই চেঙেযোৰ তাতে ৰঙা ৰঙা......।' (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং. ৪৩)

আকৌ 'বাহিৰলৈ গৈয়ে তাই মুখামুখি হ'ল ডাক্তৰ ভটিজাক ৰঞ্জনৰ লগত বোপাই মোৰ চেঙেযোৰ দেখিছিলা নে ? হালধীয়া ৰঙৰ, তাত ৰঙা ৰঙা ফুট ফুট....।' (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং. ৪৫)

তেওঁৰ 'দেৱকীৰ দিন' গল্পটোত দেৱকীক নীচ কুলৰ নাৰী বুলি ৰাতি বতাহ বৰষুণৰ পৰা বাচিবলৈ নামঘৰত আশ্ৰয় লোৱাৰ বাবে উচ্চস্তৰীয় সমাজখনে তাইক অশ্লীল গালি গালাজ আৰু মাৰধৰ কৰোতে দেৱকীয়ে কোৱা কথনভংগী এগৰাকী নাৰীৰ মমত্ববোধ আৰু অনুৰোধৰ সুৰ ফুটি উঠিছে।

'মোক মাৰি নেপালিবি ঐ... কাণী বুঢ়ীৰ সৈতে মোৰ ল'ছালিকেইটা...।' (দেওপাহাৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং. ১৯-২০)

আমাৰ সমাজত মহিলাৰ ভাষাত আই ঐ, আয়ৈ দেহি আদি ৰূপ ব্যৱহাৰ হোৱা দেখা যায় আই ঐ আৰু আয়ে দেহি অতি মমত্ববোধক অৰ্থত ব্যৱহাৰ হয়। সাধৰণতে নাৰীৰ ওপৰত সমাজে মাতৃ স্নেহ, মমতা আদি ধাৰণাক বিলাক আৰোপ কৰে। নাৰীয়ে তাৰ নিৰ্দশন স্বৰূপে আয়ৈ দেহী বাক্যংশ ব্যৱহাৰ কৰে। অৰূপা পতঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটোত সেই অৰ্থতে এই বাক্যংশ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। "সমাজ্ঞী" গল্পত বৰুণা চলিহা সদায় তেওঁৰ স্বামী আনন্দ চলিহাৰ দ্বাৰা উপেক্ষিত হৈ আহিছে যদিও আনন্দ চলিহা আৰু মাংৰাৰ মাজত সংঘটিত হোৱা ঘটনাৰ পাছত আনন্দ চলিহা মূৰ ঘূৰই ঢলি পৰাত বৰুণা চলিহাৰ মুখৰ পৰা মমত্ববোধক "আহ ঐ" শব্দটো নিৰ্গত হৈছে।

'আই ঐ বুলি চিঞৰ এটা মাৰি তললৈ নামি যাব খুজি বৰুণা চলিহা চিৰিৰ ওপৰতে ৰৈ গ'ল। আনন্দ চলিহা তল নাপালেগৈ, বাটতে মূৰ ঘূৰাই ঢলি পৰিল।' (মৰুযাত্ৰা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং. ৭৯)

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'কেতিয়াবা নুমলী এদিন' গল্পত নুমলীক মাকে মাছ বাছিবলৈ দিওঁতে আধা বছা মাছ চালনীতে থৈ ভেচেলি মাছটো পানী এবাটিত এৰি দি আঠুকাঢ়ি চাই থাকোতে মাকক কোৱা বাক্ ভঙ্গীত নাৰীৰ মমত্ববোধ ফুটি উঠিছে—

'আঐ দেহি কেনেনো ধুনীয়াহু বৌটি অ।' (দেওপাহাৰৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং.-৫২)

নাৰীৰ বাক্‌ভঙ্গীত প্ৰতিফলিত অনুৰোধৰ সুৰ তেওঁৰ কেইবাটাও গল্পত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়।

উদাহৰণস্বৰূপে — "ছাৰৰ ঘৰলৈ মোকো নিব পাৰিবনে ?" (দেওপাহাৰৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং.-১৩৭)

"তেওঁ যদি আকৌ বিয়া কৰাই মোৰ ল'ৰাটো মোক দি দিবনে ?" (দেওপাহাৰৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং.-৭৪)

নাৰীৰ ভাষা ব্যৱহাৰ অন্যতম বৈশিষ্ট হৈছে পৰোক্ষ বাক্‌ভঙ্গীৰ ব্যৱহাৰ। কাৰণ আমাৰ সমাজত নাৰীক পুৰুষতকৈ অধিক আবেগিক আৰু লজ্জাবোধসম্পন্ন বুলি ধৰা হয়। অসমীয়া ভাষাত তিৰোতা এগৰাকী গৰ্ভৱতী হ'লে পৰোক্ষভাৱে গাত লেঠা, গা ধোৱা নাই আদি খণ্ড বাক্য ব্যৱহাৰ কৰা হয়। অৰূপা পতঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটো এন খণ্ড বাক্যৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়।উদাহৰস্বৰূপে—

'শৰ্মাৰ মাজু ল'ৰাটোৰে কালি ছোৱালী এজনী ঘৰ সুমুৱালেহি, আগৰে হাট-বাট আছিল, লেঠা হ'লত ঘৰত সুমুৱাই থলেহি।' (দেওপাহাৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং. ১৪৭)

আকৌ

‘সি এইবাৰ ঘৰটোৰ আৰু একোঠালি বঢ়োৱাৰ কথা ভাবিছে, ইলেকট্ৰিকৰ ব্যৱস্থাও কৰাৰ কথা ভাবি আছে, বোৱাৰীজনী গা-ভাৰি আইতাকে ছোৱালী এজনী আশা কৰিছে, মনোহৰে কিন্তু এটা লৰা আশা কৰিছে।’ (দেওপাহাৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং. ১৫২)

আকৌ

‘নৱনীতা বৰুৱা আৰু গৌৰৱ বৰুৱা ঘৰলৈ যেতিয়া আউচি আহিছিল তেতিয়া নৱনীতা বৰুৱাৰগা গধুৰ আছিল।’ (পানী গাভিনী আছিল আৰু অন্যান্য, পৃ. নং. ১১৬)

আনহাতে ছোৱালী কন্যাকাল প্ৰাপ্তি বা পুষ্পিতা হলে আমাৰ সমাজত পৰোক্ষভাৱে ডাঙৰ হোৱা বা হ'ল বুলি কোৱা হয়। অৰূপা পতঙ্গীয়া কলিতাৰগল্পত এই ভাষিক বৈশিষ্টও প্ৰতি ফলিত হৈছে।

‘সৌৰভ শৰ্মাৰ এটা ফোনকলে মাজনীৰ মাকক মৃত সময়ৰ মাজৰ পৰা টানি উলিয়াই আনিলে। এটা চুটি বাক্য, মাজনী ডাঙৰ হ'ল।’ (পাছ চোতালৰ কথকতা, পৃ. নং. ১৯)

আকৌ

‘শৰ্মানীয়ে মোৰ লগতে চাহকাপ খাইছে ঃ বাইদেউহু ছোৱালীজনী ডাঙৰ হ'ল, মই অকলেই নাম এযাৰ গাই তাইক গা-ধুৱাই থলো।’ (দেওপাহাৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং. ১৪২)

মহিলাসকলৰ নামৰ ক্ষেত্ৰত লিংগভিত্তিক এক সচেতনতা পৰিলক্ষিত হয়। মহিলাৰ নামৰ আগত ব্যৱহৃত Mrs অথবা Miss য়ে তেওঁৰ বৈবাহিক স্থিতি, তথা তেওঁ কাৰ অধীনত আছে সেই কথা সূচায়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটো এই Mrs বা Miss প্ৰয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়। ‘জলতৰঙ্গৰ সুৰ’ গল্পটোত কলেজৰ শিক্ষকসকলৰ কথোপ কথনত ‘মিছেছ’ৰ প্ৰয়োগ দেখা গৈছে। কলেজৰ অধ্যাপক ৰূপলেখা ডাঃ গৌতম বৰুৱাৰ পত্নী হিচাপে তেওঁক মিছেছ বৰুৱা বুলি সম্বোধন কৰা হৈছে—

‘বগা কোটটো পিন্ধা সুস্বাস্থ্যৰ ওখ-পাখৰ সুঠাম মানুহজনে ৰূপলেখাৰ ফালে চাই হাঁহি উঠিল, মিছেছ বৰুৱা, এইটো কোট ল'ৰাই দিয়া বুজিছে। তাৰ প্ৰথম দৰমহাৰ পইচাৰে দিছে।’ (জলতৰঙ্গৰ সুৰ, পৃ. নং.- ১৭)

তদুপৰি বিবাহৰ পাছত বহু মহিলাই নিজৰ সুকীয়া পৰিচয় ধৰি ৰখাৰ বিপৰীতে নিজৰ নামৰ লগত স্বামীৰ নাম, উপাধি সংযুক্ত কৰি পুৰুষপ্ৰধান সমাজত নিজৰ সামাজিক স্থিতি শক্তিশালী কৰি তুলবি খোজে। ‘জলতৰঙ্গৰ সুৰ’ গল্পটোতে ৰূপলেখাৰ কলেজৰ ইংৰাজী বিভাগৰ অধ্যাপক হিচাপে অৰ্থনৈতিকভাৱে সৱল পৰিচয় থকাৰ স্বত্তেও তেওঁৰ নামৰ পাছত স্বামী ডাঃ গৌতম বৰুৱাৰ উপাধি গ্ৰহণ কৰি ড^{0} ৰূপলেখা বৰুৱা লিখিছে।

আমাৰ গ্ৰাম্য সমাজত মহিলাৰ নাম বহু সময়ত লুপ্ত হৈ যায়। মানুহৰ কথোপকথনত নাৰী গৰাকী, দেউতাক, স্বামী আৰু সন্তানৰ নামেৰে পৰিচয় লাভ কৰে। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা গল্পত নাৰীৰ লিংগভিত্তিক এই ৰূপটো স্পষ্টকৈ প্ৰতিফলিত হৈছে। ‘হালধীয়া হাৰাই চেণ্ডেলযোৰ’ গল্পত ৰেৱতীক উপহাৰ উলিয়াই থকা মানুহ কেইগৰাকীয়ে পৰিচিতি দিয়া কথাযাৰত এই ৰূপটো স্পষ্ট হৈ উঠিছে।

‘এইজনী হৰি মোহনৰ ঘৈণীয়েক?’ হয় নেকি? (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ৪২)। তদুপৰি অন্যান্য গল্পত সন্তানৰ মাতৃ হিচাপেও নাৰীক পৰিচয় প্ৰদান কৰা দেখা যায়। যেনে—

‘ৰমেনৰ মাক যোৱা নিশা স্বামীৰ মৃত্যু তিথি উপলক্ষে উপবাস আছিল।’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ৭০)

ভাষাত সাধৰণতে স্ত্ৰীবাচক শব্দবোৰ পুৰুষবাচক ৰূপটোৰ পৰা সৰ্গীকৰণৰ জৰিয়তে গঠন কৰা ৰীতি আছে। অসমীয়া ভাষাতো সমপদাধিকাৰী বা একে বৃত্তিকেন্দ্ৰিক স্ত্ৰীবাচক শব্দটো মূল পুৰুষবাচক শব্দৰ পৰাই গঠন হয়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটো এই ৰূপ প্ৰতিফলিত হৈছে। যেনে—

ডাক্তৰ-ডাক্তৰণী

উকীল-উকীলনী

অধ্যাপক-অধ্যাপিকা

বিশেষজ্ঞ-বিশেষজ্ঞা

উল্লেখযোগ্য যে নাৰীবাদৰ প্ৰসাৰণ আৰু নাৰী পুৰুষৰ সমতা স্থাপন ধাৰণাই বৃত্তিবাচক বা কৰ্মসূচক শব্দবোৰ লিংগ নিৰপেক্ষ হ'ব লাগে বুলি মত প্ৰকাশ কৰিছে। বহুতে সেই ৰীতি গ্ৰহণ কৰাও দেখা যায়। কিন্তু অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত নাৰীৰ পুৰুষৰ সমমৰ্যাদা, লিংগভিত্তিক বৈষম্যৰ সম্পৰ্কে প্ৰশ্ন উত্থাপিত হৈছে যদিও ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত পৰম্পৰাবাদী দৃষ্টিভংগীৰে এই লিংগভিত্তিক শব্দবোৰৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে।

‘কৃতী স্ত্ৰীৰোগ বিশেষজ্ঞা মানুহজনীৰ কোনো সাংসাৰিক বন্ধন নাই, তেওঁৰ পৃথিৱীৰ নোযোৱা ঠাই বোধহয় নাই, স্ত্ৰীৰোগ, ফুৰাৰ বাদেও তেওঁৰ আৰু এটা কাম হ'ল কেকটাছ সংগ্ৰহ।’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ১৭)

আকৌ ‘ডাইনিং টেবুল দুখন উকীলনী আৰু ডাক্তৰণীয়ে লগত অনা, এইৰং এৰোৱা, চাকচিক্য নোহোৱা চকীখন ডাঙৰ নবৌৱে লগত অনা।’ (দেওপাহাৰৰ ভগ্নস্তূপত, পৃ. নং.- ২১)

নাৰী পুৰষতকৈ লিংগগতভাৱে হীন বা দ্বিতীয় স্থানৰ এই কথা ভাষাৰ মাজত বিভিন্ন ধৰণে প্ৰদৰ্শিত হয়। অসমীয়া ভাষাতো ই ব্যতিক্ৰম নহয়। সামাজিক সাংস্কৃতিকভাৱে আমাৰ ভাষাত এনে কিছুমান শব্দ আছে যিয়ে নাৰীৰ সামাজিক অৱস্থান স্পষ্ট কৰি তোলে। সেই শব্দবোৰে পুৰুষপ্ৰধান সমাজে নাৰীৰ ওপৰত পোষণ কৰা ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, সংস্কাৰ, দৃষ্টিভংগী সকলো বহন কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে ‘সতী’ শব্দৰ কোনো পুলিংগবাচক শব্দ নাই। ‘সতী’ শব্দৰ অৰ্থ হৈছে ‘পতিব্ৰতা নাৰী’। কিন্তু অসমীয়া ভাষাত একে অৰ্থত পুৰুষক বুজাবলৈ ‘পত্নীব্ৰত’ শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা নহয়। ঠিক একেদৰে পতিহিতা, পতিহীনা, বেশ্যা, কাকবন্ধ্যা আদি শব্দবোৰ নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতহে প্ৰয়োগ হয়। এইবিলাকৰ কোনো পুৰুষসূচক শব্দ নাই। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটো নাৰীৰ সামাজিক অৱস্থানৰ বৰ্ণনাত এই শব্দবোৰ প্ৰয়োগ ঘটা দেখা যায়।

‘মাজনীৰ মাকে ভিতৰৰ পৰাই স্পষ্টকৈ শুনিলে শাহুৱেকে নিজৰ ছোৱালীৰ লক্ষণীয় কন্যা কালৰ কথা কৈ আছে। ‘মোৰ প্ৰথমজনী পতিহিতা, দ্বিতীয়জনীৰ সুভগা, তৃতীয়জনীৰ কান্তা।’....

‘কান্তা নাৰী পতিপ্ৰাণা ধন পুত্ৰৱতী।

সুশীলা ৰমণী তাই জ্ঞানী বুদ্ধিমতী।

সুভগা ৰমণী হয় সৰ্ব সুলক্ষণা।

ধন পুত্ৰ ধৰ্মযুক্ত সদা পতিপ্ৰাণা।’ (পাছ চোতালৰ কথকতা পৃ. নং.- ১৯)

নাৰীৰ প্ৰতি হীনাত্মক দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰা আমাৰ সমাজত প্ৰচলিত শব্দ যেনে— অসতী, বেশ্যা আদিৰ প্ৰয়োগো অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত প্ৰতিফলিত হৈছে।

‘এই যোগবোৰত পুৰুষে তিৰোতা মানুহক যেনেকৈ থকাটো বিচাৰে তেনেকৈয়ে ৰাখিছে। এটা যোগত যদি পুত্ৰৱতী, আনটো যোগত অসতী, বেশ্যা।’ (পাছ চোতালৰ কথকতা, পৃ. নং.- ৩৪)

আনহাতে অসমীয়া ভাষাত ‘পত্নীব্ৰত’ৰ সলনি ‘তিৰোতা সেৰুৱা’ শব্দ এটা আছে। কিন্তু এই শব্দটো নেতিবাচক অৰ্থতহে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। ‘তিৰোতা সেৰুৱা’ শব্দই পুৰুষক হীন দৃষ্টিৰে চোৱা হয়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পত ভাষাৰ এই দিশটোও প্ৰতিফলিত হৈছে। ‘পাছ চোতালৰ কথকতা’ গল্পত মাজনীৰ দেউতাকে মাজনীয়ে শান্তি বিয়াৰ নামত মানি থাকিবলগীয়া কঠোৰ নীতি নিয়মৰ বিৰোধিতা কৰিবলৈ যাওঁতে মাজনীৰ দেউতাকে কোৱা কথাত এই দৃষ্টিভংগী প্ৰতিফলিত হৈছে।

‘চবেই কি কয় জানা, মই হেনো তিৰোতা সেৰুৱা মানুহ, সিংহপুৰুষ দেউতাৰ ল’ৰা হৈ...।’ (পাছ চোতালৰ কথকতা, পৃ. নং.- ২৫)

আমাৰ পুৰুষপ্ৰধান সমাজত পুত্ৰ হে কাম্য পুত্ৰী নহয়। সেয়ে নাৰী এগৰাকীক ‘পুত্ৰৱতী’ হোৱা বুলি আশীৰ্বাদ দিয়া হয়। ‘পুত্ৰীৱতী’ হোৱা বুলি আশীৰ্বাদ দিয়া নহয়। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পৰ ভাষাটো এই দৃষ্টিভংগী প্ৰতিফলিত হৈছে। ‘পাছ চোতালৰ কথকতা’ গল্পটোত মাজনী শান্তি বিয়া হোৱাৰ পাছত পতিহীনা যোগৰ ফলাফল কথা কওঁতে পতিহীনা যুগত বিধবা, পতিহিতা, কান্তা, সুভগা নাৰীয়ে ৰাজপুত্ৰ লাভ কৰা কথা গাঁৱৰ মানুহখিনিয়ে উল্লেখ কৰিছে।

‘কান্তা নাৰী পতিপ্ৰাণা ধন পুত্ৰৱতী।

সুশীলা ৰমণী তাই জ্ঞানী বুদ্ধিমতী।’ (পাছ চোতালৰ কথকতা, পৃ. নং.- ১৯)

অসমীয়া ভাষাত সন্তানহীনা নাৰী বুজাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা ‘বাঁজী’ শব্দৰ পুৰুষবাচক ৰূপ ‘বঁজা’ আছে যদিও সেয়া মানুহৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰ কৰা নহয়। গছ-গছনি আদিৰ ক্ষেত্ৰতহে ব্যৱহাৰ হয়। কেৱল নাৰীৰ প্ৰতি পোষণ কৰা সামাজিক বদনাম সূচিত এই শব্দ অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্পটো ব্যৱহাৰ হৈছে। ‘মিচ হাবিচামৰ আবেলি’ গল্পটোত অঞ্জুৰ বৰমাক সন্তানহীনা হোৱাৰ বাবে বৰদেউতাকক আইতাকে কোৱা কথাষাৰত এই দৃষ্টিভংগী প্ৰতিফলিত হৈছে।

‘আইতাই তামোল খুন্দি খুন্দি বৰদেউতাকো গালি পাৰিছিল, ‘তাৰ গাতে দোষ, বৰ মানুহৰ ঘৰৰ বগী ছোৱালী হ’ল বুলিয়েই বাঁজীজনীক এনে পুতলা ৰখাদি ৰাখিব নালাগে, অলপ মাটিতো বুলিবলৈ দিব লাগে।’ (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ৫১)

অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত জতুৱা খণ্ড বাক্য আদিয়ে সমাজত নাৰীৰ অৱস্থান নিৰ্দ্ধাৰণ কৰিছিল। এই বিলাকত নাৰীৰ বিভিন্ন দিশ যেনে— নাৰীৰ মমতাময়ী ৰূপ, নাৰীৰ সামাজিক মৰ্যাদা, শাহু-বোৱাৰীৰ সম্পৰ্ক, নাৰীৰ সৌন্দৰ্য, গুণাগুণ আদি প্ৰতিফলিত হৈছিল। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যতো এনে কিছুমান জতুৱা খণ্ডবাক্যৰ ব্যৱহাৰে নাৰীৰ সামাজিক

অৱস্থান নিৰ্দ্ধাৰণ কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। যেনে—

'মোৰ তলৰ অফিচাৰবোৰ ঘৈণীয়েকবোৰেও যেনেকৈ চটাই, পাখৰী হৈ ফুৰে।' (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ৫০)

'বোলো পণ্ডিত। মনত ৰাখিবা ছোৱালী জিৰণীয়া মৌ, বিয়া দিলেই লেঠা ছিগিল।' (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.- ১২৮)

'তামোলখন মুখত ভৰাই ৰম্ভাৰ আইতাকে ধীৰে ধীৰে কৈছে— 'মাজনী, লাও যিমানেই ডাঙৰ সি সদায় পাতৰ তল' ইত্যাদি। (মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, পৃ. নং.-১২৯)

এনেদৰে অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত নাৰীসূচক লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে।

২.০ উপসংহাৰ ঃ

অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ গল্প সাহিত্যত লিংগ নিৰূপিত ভাষাৰ প্ৰয়োগ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীৰ্ষক বিষয়ে অধ্যয়ন কৰি দেখা গ'ল যে আলোচিত গল্পসমূহত গল্পকাৰে পুৰুষসুচিত আৰু নাৰীসূচিত লিংগনিৰূপিত ভাষাটো বিভিন্ন বৈশিষ্ট্যৰাজিৰে প্ৰয়োগ কৰিছে। গল্পসমূহৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে পোহৰলৈ অহা দিশসমূহ হৈছে—

ক) পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীক দ্বিতীয় স্থানত ৰখাৰ বাবে ভাষা প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰতো নাৰী পুৰুষৰ মাজত পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয়। এই কথা অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা গল্পসমূহৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তেও পোহৰলৈ আহিছে।

খ) লিংগধৰ্মী ভাষাৰ ব্যৱহাৰ বা ভাষাত লিংগ বৈষম্য ধাৰণা বৰ্তি থকাটোৱে ভাষাগত কাৰকতকৈ সামাজিক কাৰকে অধিক প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। প্ৰস্তাৱিত আলোচনা পত্ৰৰ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে এই কথা পোহাৰলৈ আহিছে।

গ) সাহিত্যত ভাষা প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত লেখকৰ দৃষ্টিভংগীৰ ওপৰতো যথেষ্ট নিৰ্ভৰ কৰে। অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতৰা গল্পত নাৰীবাদী দৃষ্টিভংগী প্ৰতিফলিত হৈছে যদিও ভাষা প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত পৰম্পৰাবাদী দৃষ্টিভংগীকে গ্ৰহণ কৰা দেখা গৈছে।

শেষত ক'ব পাৰি যে প্ৰস্তাৱিত বিষয়ে অধ্যয়ন কৰি এনেবোৰ দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে যদিও ভৱিষ্যতে গভীৰ অধ্যয়নৰ থল আছে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ

1. অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতা ঃ সোণালী ঈগলে কণী পাৰিলে বেলিয়ে উমনি দিলে, আগকথা।
2. Peter Trudgill : Sociolinguistics : An Introduction, page no. 95
3. Otto Jesperson : Language : Its Nature Development and Origin, page no. 237
4. ড^{0} অনুৰাধা শৰ্মা ঃ সমাজ আৰু ভাষা, সমাজভাষাবিজ্ঞানৰ পৰিচয়, পৃষ্ঠ নং ৫৫-৫৬
5. Robin Lakoff : Language and Women's Place, page no. 39

গ্ৰন্থপঞ্জী

মূল গ্ৰন্থ ঃ

কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া ঃ মৰুযাত্ৰা আৰু অন্যান্য, লয়াৰ্ছ বুকষ্টল, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯২

ঃ দেও পাহাৰৰ ভগ্নস্তূপত, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৯ চন, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০০৯ চন।

ঃ পাছ চোতালৰ কথকতা, জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০০ চন।

ঃ মিলেনিয়মাৰ সপোন, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২ চন, প্ৰথম কেঁচাবন্ধা প্ৰকাশ, ২০১৯ চন।

ঃ মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৫ চন, প্ৰথম কেঁচাবন্ধা প্ৰকাশ, ২০১৯ চন।

ঃ আলেকজান বানুৰ জান, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২ চন, প্ৰথম কেঁচাবন্ধা প্ৰকাশ, ২০১৯ চন।

ঃ কুৰোশ্বোৱাৰ সপোন, মোৰ সপোন, সিহঁতৰ সপোন, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২ চন।

ঃ সোণালী ঈগলে কণী পাৰিলে, বেলিয়ে উমনি দিলে, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১ চন।

: মৰিয়ম আষ্টিন অথবা হীৰা বৰুৱা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১২ চন।

: জলতৰঙ্গৰ সুৰ, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৬ চন।

: পানী গাভিনী আছিল আৰু অন্যান্য, জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৯ চন, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০২১ চন।

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ

দত্ত, ৰত্না : নাৰীবাদ তত্ত্বকথা আৰু সাহিত্য প্ৰসংগ, অসমীয়া অন লাইন ডট্‌কম, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৩

দাস, ড^0 বিশ্বজিৎ বৰা : সমাজ ভাষাবিজ্ঞান, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, বনলতা নতুন সংস্কৰণ, ২০১ ৭

ড^0 বিৰিঞ্চি কুমাৰ আৰু হেমন্ত বৰা : সামাজিক লিংগৰ সমাজতত্ত্ব, সৰস্বতী প্ৰকাশন, ভাগৰতী প্ৰসাদ লডিয়া পথ, গোলাঘাট-1, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২০

মহন্ত, ড^0 অৰ্পণা : নাৰীবাদ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যাল, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৮

শৰ্মা, ড^0 অনুৰাধা : সমাজ আৰু ভাষা, সমাজ ভাষাবিজ্ঞানৰ পৰিচয়, বান্ধৱ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৬ দ্বিতীয় সংশোধিত সংস্কৰণ, ২০২০

ইংৰাজী গ্ৰন্থ ঃ

Hudson, R. A. : Sociolinguistics; Cambridge University Press, Newyork 1st published-1980

Trudgill, Peter : Sociolinguistics : An Introduction to Language and Society Penguin Books Ltd. Harmondwart, England, Re-print, 1987

কবিতা

মন্বন্তৰ

বীৰেন্দ্ৰনাথ বৰকটকী

স্মৃতিৰ গুহাত কত আদিম মানৱে কান্দে
জীৱনৰ মন্বন্তৰ ভাবি
যাযাবৰী বুৰঞ্জীত সিহঁত হেৰাই যায়
ৰচি সাধু হেজাৰ যুগৰ।
হেজাৰ যুগৰ সাধু -
সিন্ধুৰ মোহনা ভাগে,
গঙ্গাত জোৱাৰ উঠে,
নীলত বাৰিষা নামে পৃথিৱী টোৱাই!
শিলৰ বুকুৰপৰা শিলাকুটি নামি আহে
মানুহৰ মৰম বিচাৰি,
ভয় খাই ইভে কান্দে আৰু কত উলঙ্গ নাৰীয়ে
সভ্যতাৰ ডাঠ হাবি মুখৰিত কৰি।
জীৱনৰ কুম্ভমেলা
সংস্কৃতিৰ সঙ্গম-ক্ষেত্ৰত
মন আৰু কল্পনাৰ অঘৰী সন্ন্যাসীবোৰে
স্নান কৰে পূত সলিলত
(ওঁ মধু ৱাতা ঋতায়তে)।
দুষ্কৃতিৰ কুৰুক্ষেত্ৰ জিনি
সুকুমাৰ কৃষ্ণ জন্ম হয়
বুদ্ধই সপোন দেখে অনাদি যুগৰ।
হিমালয় উচ্চ শিখৰত
তুষাৰ মানৱে শুনে
পৃথিৱীৰ উৰ্ব্বৰ ভূমিক
মুখৰিত কৰি গোৱা
মানুহৰ সমদল গান।
নদীৰ মৰম যাচে
মানুহক জয়ৰ বীজাণু
দুহাতে ধৰি থকা ঋক্ বেদ খহি পৰে,
তীখাৰ পৰীক্ষা হয়
মানুহৰ মৰমী বুকুত
মন আৰু বাস্তৱৰ শৰাইঘাটত। ❑

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होग।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : ....

पदनाम : ....

पूरा पता : ....

: ....

ई-मेल : .... मोबाइल : ....

RTGS का विवरण : ....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary	: Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No.	: 0853010182614
Name of Bank & Branch	: Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code	: PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 28th February, 2024 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

एक हृदय हो भारत जननी

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी–781032

arpsguwahati.com rastrasewak51@gmail.com 9101541395/9101541380